महाकवि सूर
और सूर
डॉ. किशोरी लाल गुप्त

सूर और सूर नवीन

डॉ० किशोरीलाल गुप्त

प्रथम संस्करण : १९९१

मूल्य : रु० ८५/-

प्रकाशक : हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद

मुद्रक : माधो प्रिन्टर्स, २४२, पुराना बैरहना, इलाहाबाद-३

प्रकाशकीय

नवीनता की खोज शोध में भी अभीष्ट होती है, विशेषतः तब-जब संदेह और जटिलता का निराकरण करते हुए उसे प्रामाणिकता के साथ प्रतिष्ठित किया जाय। प्राचीन एवं मध्यकालीन साहित्य की बारीकियों तथा मूल पाठ की कठिनाइयों में पैठ रखने वालों में उत्तरोत्तर कमी आ रही है, अतः जो लोग इस क्षेत्र में निष्णात हैं, उनका योगदान निश्चय ही महत्त्वपूर्ण माना जायेगा। जिस क्षेत्र में उन्होंने निरन्तर कार्य किया है और जिसकी प्रेरणा उन्होंने बहुतों को दी है, उसका आकलन भी आवश्यक है। डॉ० किशोरीलाल गुप्त ऐसे सम्मान्य विद्वान् हैं जिनके अभिनंदन समारोह में जाने का अवसर गत वर्ष मुझे मिला था। आचार्य सीताराम चतुर्वेदी तथा डॉ० जगन्नाथप्रसाद शर्मा ने उन्हें अभिनंदित किया। स्वर्गीय चन्द्रबली पाण्डेय, आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र एवं पद्मनारायण आचार्य आदि से उन्होंने साहित्यान्वेषण की बनारसी परम्परा पायी। पं० रामचन्द्र शुक्ल, आचार्य केशवप्रसाद मिश्र तथा बाबू श्यामसुन्दर दास के सम्पर्क में आकर जिनकी इतिहास-वृत्ति जागरित हुई, उनकी लिखी किसी भी कृति का प्रकाशन हिन्दुस्तानी एकेडेमी के लिए गौरव की बात है।

'सूर और सूर नवीन' की विज्ञप्ति उनके शोध-ग्रंथों में पहले ही कर दी गयी थी। उसमें 'महाकवि' शब्द भी सूर के नाम के आगे जुड़ा था। इस पुस्तक में वह अन्तर्निहित हो गया है। यह ग्रंथ उनके सूर-सम्बन्धी व्यापक अध्ययन एवं अन्वेषण का प्रतिफल है। डॉ० प्रभुदयाल मीतल, आचार्य मुंशीराम शर्मा तथा डॉ० व्रजेश्वर वर्मा आदि के विवादास्पद निष्कर्षों को एक बार फिर नयी भूमिका मिली है जिससे उनका नया आकलन किया जा सके।

'सूर नामक कवियों की तीन सूचियाँ' देखकर ही सुधी जन समझ लेंगे कि कितने परिश्रम और अध्यवसाय के साथ इस ग्रंथ का आरंभ किया गया। 'साहित्य लहरी' के प्रसिद्ध पद में प्रयुक्त 'सूर नवीन' ही गुप्त जी का मूल आधार है (द्रष्टव्य पृ० ११३)। उन्होंने सूर नवीन के जीवन-चरित के स्रोतों की खोज भी की तथा उनके ग्रंथों का प्रामाणिक परिचय भी दिया।

हिन्दी साहित्य का अतीत—भाग १ में पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने लिखा था—'जिन सूर ने साहित्यलहरी का निर्माण किया, वे कोई 'नवीन सूर' हैं। इसी सूत्र का पल्लवन डॉ० किशोरीलाल गुप्त ने इस शोध-ग्रंथ में किया है और पृ० १४७ पर सूर नवीन का जीवन-परिचय भी दिया है। इनका जीवन-काल सं० १५९० से १६९० के बीच स्वीकार किया गया है। 'नवीन' शब्द का उनके नाम के साथ अन्यत्र कहाँ-कहाँ प्रयोग हुआ है, इसकी जिज्ञासा लोगों के मन में बनी रहेगी क्योंकि यह मुझे नाम का अंश नहीं लगता। मैंने इस ग्रंथ का ध्यानपूर्वक अवलोकन किया है और मुझे विश्वास है कि सूर-साहित्य के मनीषी विद्वान् भी इसे उपादेय पायेंगे। सामान्य पाठकों की ज्ञान-वृद्धि तो इससे होगी ही, इसमें कोई संदेह नहीं। मैं लेखक को साधुवाद देता हूं कि उन्होंने इसे मनोयोगपूर्वक सम्पन्न करके हिन्दुस्तानी एकेडेमी को इसके प्रकाशन का अवसर दिया।

जगदीश गुप्त
सचिव तथा कोषाध्यक्ष

अनुक्रम

(१) भूमिका

(२) महाकवि सूरदास

(३) सूर नवीन

८. महादेव लीला
९. प्राणप्यारी/ब्याहलो/राधा-मंगल
१०. बिसातिन लीला
११. कबीर (राधा नखशिख)
१२. गोपाल गारी
१३. वंशी लीला
१४. नाग लीला
१५. पांडव यज्ञ
१६. अर्जुन गीत
१७. सहस्र नामावली
१८. सूर गीता
१९. चरण चिह्न
२०. दोहावली
२१. सूर साठी
२२. अष्टपदी वनयात्रा
२३. सेवा फल
२४. पहलाद की बारहखड़ी
२५. कृष्ण की बारहखड़ी
२६. सुदामा की बारहखड़ी
२७. बेनीमाधो जी की बारहमासी
२८. बारहमासा १
२९. बारहमासा २
३०. रामजी का बारहमासा

प्राक्कथन

सं० १८९९ में सूर सारावली का एवं सं० ९१ में सूरसागर का प्रथम प्रकाशन कलकत्ता से हुआ, जो प्राय: उसी समय एक जिल्द के रूप में सुलभ हुआ। सं० १९२० में यही सारी सामग्री लखनऊ के नवल किशोर प्रेस से प्रकाशित हुई। सं० १९२६ में लाइट प्रेस बनारस से साहित्य लहरी का सरदार कवि की टीका के साथ 'सूरदास के दृष्टिकूट' नाम से प्रकाशन हुआ। सूर के ग्रंथ जन साधारण के लिए सुलभ हो गए और लोग उनका रसास्वाद लेने लगे। सूर के अध्ययन का द्वार खुल गया।

आधुनिक ढंग से सूर के अध्ययन का श्री गणेश आधुनिक हिंदी के जनक भारतेंदु हरिश्चंद्र के द्वारा हुआ। उन्होंने सूरदास का एक जीवन चरित्र लिखा जो पहली बार कवि वचन सुधा के अंक ६ में संवत १९२६ में प्रकाशित हुआ। इसमें उन्होंने सूरदास के दृष्टिकूट में दिए गए कवि के वंश-परिचय वाले पद के आधार पर उन्हें चंद बरदाई का वंशज ब्रह्मभट्ट स्वीकार किया। इसी लेख के आधार पर सर जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन एवं राधाकृष्णदास ने भी सूर को सारस्वत ब्राह्मण न मानकर ब्रह्म भट्ट माना। सूर के अध्ययन में परंपरा से हटकर, एक नवीन मान्यता स्थापित करने का, यह प्रथम मोड़ था।

इस प्रथम मोड़ के उपरांत चालीस वर्षों बाद १९०९ ई० में मिश्रबंधुओं ने सूर के अध्ययन में दूसरा मोड़ स्थापित किया। मिश्रबंधुओं ने स्वीकार किया कि सूरदास सारस्वत ब्राह्मण थे; ब्रह्मभट्ट नहीं। उन्होंने कहा कि वंश-परिचय वाला पद क्षेपक है। तब से वंश-परिचय वाला पद क्षेपक ही समझा जाता रहा है। आचार्य शुक्ल ने भी इसे क्षेपक ही मान लिया था।

सूर के अध्ययन में तीसरा मोड़ देने का प्रयास डा० मुंशीराम शर्मा 'सोम' ने किया। अभी तक साहित्यलहरी का रचनाकाल सं० १६०७ माना जाता रहा था। उन्होंने इसे सं० १६२७ स्वीकार किया और सूर के वंश-परिचय वाले पद को क्षेपक नहीं माना तथा ब्रह्मभट्ट और सारस्वत में समन्वय स्थापित करना चाहा। पर सोम जी की बात सूर के अध्येताओं को ग्राह्य नहीं हो सकी।

तदनंतर डा० दीनदयालु गुप्त ने 'अष्टछाप और वल्लभ-संप्रदाय' में साहित्य लहरी का रचनाकाल सं० १६१७ स्थापित किया। इन्होंने वंश-परिचय वाले पद को क्षेपक ही माना और इनके द्वारा सूर के अध्ययन को वल्लभ संप्रदाय की आँख से देखने की दृष्टि मिली। इसी दृष्टि वाले लोग द्वारिकादास परीख थे और अब डा० प्रभुदयाल मीतल हैं। यह सूर के अध्ययन का तीसरा मोड़ था।

सूर के अध्ययन का चौथा अत्यंत क्रांतिकारी मोड़ डा० व्रजेश्वर वर्मा ने अपने शोध प्रबंध 'सूरदास' द्वारा प्रस्तुत किया। इसमें इन्होंने डिंडिम स्वर से निर्घोष किया कि साहित्य लहरी और सूर सारावली महाकवि सूरदास की रचनाएँ नहीं हैं। ये उनसे पर्याप्त परवर्ती कृतियाँ हैं। तभी से दोनों ग्रंथों को लेकर सूर के अध्येताओं में परस्पर संवादी-विवादी स्वर सुनाई देते रहे हैं। महाकवि सूर का साहित्य-लहरी और सूर-सारावली के स्वामित्व से वंचित किया जाना लोगों को असह्य सा लगता है। ऐसा नहीं है कि जो इन दोनों ग्रंथों को महाकवि सूर की रचना मानते हैं, वे ही सूर के परम प्रशंसक हैं। वे लोग भी सूर के उतने ही श्रद्धालु हैं, जो इन दोनों ग्रंथों को महाकवि सूर की रचना नहीं मानते।

मेरे इस ग्रंथ के द्वारा सूर के अध्ययन का पाँचवाँ मोड़ प्रारंभ हो रहा है। मैं नहीं जानता सूर के प्रेमी इसको कहाँ तक पसंद या ना-पसंद करेंगे। इस ग्रंथ में मेरी निम्नांकित क्रांतिकारी स्थापनाएँ हैं—

१. हिंदी में सूर नामक दो महाकवि हुए हैं। एक हैं अष्टछापी सूरदास, दूसरे हैं सूर नवीन। अष्टछापी सूर का जीवनकाल सं० १५३५-१६४० वि० है। सूर नवीन परवर्ती हैं। इनका जीवनकाल सं० १५९०-१६६० वि० है।

२. सूरसागर भी दो हैं। पहला सूरसागर कृष्णलीलात्मक है। इसमें मुख्य रूप से कृष्ण जन्म से लेकर भ्रमर गीत तक की कथा कीर्तन पदों के रूप में है। इसकी काव्य-भूमि प्रायः ब्रज (गोकुल, वृंदावन, मथुरा) तक ही सीमित है। कृष्ण की द्वारिकालीला से इसका कोई विशेष संबंध नहीं। विनय के पद भी इसी के अंग हैं। यह सूरसागर अष्टछापी सूर की कृति और कीर्ति है। इसमें सवा दो हजार से कुछ ही अधिक पद हैं। यह संग्रह ग्रंथ है। योजनाबद्ध रूप से इसकी रचना नहीं हुई थी। सूरसागर का लखनऊ संस्करण इसका उदाहरण समझा जा सकता है।

दूसरा सूरसागर सूर नवीन का है। यह श्रीमद्भागवत के अनुसरण पर योजनाबद्ध ढंग से लिखा गया है। यह सूरसागर का स्कंधात्मक स्वरूप है,

जिसके निदर्शन राधाकृष्णदास द्वारा संपादित बंबई का सूरसागर एवं नागरी-प्रचारिणी सभा के सूरसागर हैं।

३. साहित्यलहरी एवं सूरसारावली सूर नवीन की रचनाएँ हैं। साहित्यलहरी का रचनाकाल सं० १६७७ है और सूरसारावली का सं० १६८० के आस-पास।

४. अष्टछापी सूरदास महाप्रभु वल्लभाचार्य के द्वारा सं० १५६७ में वल्लभ संप्रदाय में दीक्षित हुए थे। सूर नवीन इसके ठीक सौ वर्ष बाद सं० १६६७ में महाप्रभु वल्लभाचार्य के पौत्र एवं गो० विटठलनाथ के चतुर्थ पुत्र गो० गोकुलनाथ 'वल्लभ' के द्वारा इसी वल्लभ संप्रदाय में दीक्षित किए गए। दोनों सूर एक ही संप्रदाय के थे।

५. अष्टछापी सूर सीही (हरियाना) निवासी सारस्वत ब्राह्मण थे। सूर नवीन ग्वालियर निवासी थे, पर पैदा हुए थे आगरा जिले के 'साही' ग्राम में। यह चंदवरदाई के वंशज ब्रह्मभट्ट थे। अकबरी दरबार के गायक रामदास के पुत्र थे और स्वयं भी पहले अकबरी दरबार के गायक रह चुके थे।

ये सब बातें सूर के प्रेमियों के गले उतरेंगी या नहीं, मैं नहीं जानता। पर मैं जानता हूँ शोध का पथ निर्मम होता है और शोध अंतिम नहीं होती। जो आज तथ्य रूप में स्वीकृत है, वही नवीन सामग्री एवं नवीन दृष्टि के प्रकाश में अतथ्य सिद्ध हो जाता है। मुझे लोगों की वैज्ञानिक तर्क-बुद्धि का भारी भरोसा है।

इस ग्रंथ के प्रणयन में मैंने कोई नवीन सामग्री नहीं इकट्ठी की है। मैंने पहले के लोगों के द्वारा उपस्थित एवं कथित सामग्री को ही नवीन दृष्टि से देखा भर है। मैंने जो कुछ कहा है, उसे पुराने लोगों में से किसी न किसी ने अवश्य कहीं न कहीं संकेतित किया है। मैं उन संकेतों को पकड़कर आगे बढ़ा हूँ। बाद में आने वाले को पूर्ववर्ती लोगों के सारे वैदुष्य का लाभ मिलता ही है, यदि वह उस लाभ का लाभ उठाने के लिए अपने को स्वाध्याय के लोभ एवं चिंतन-मनन से क्षम बनाकर प्रस्तुत कर सकें।

मैं जान-बूझकर इस शोध कार्य में रत हुआ होऊँ, ऐसी बात नहीं है। श्रावण शुक्ल सप्तमी सं० १९४१ को मैंने आचार्य पंडित सीताराम जी चतुर्वेदी के आदेश पर अखिल भारतीय हिंदी साहित्य सम्मेलन द्वारा आयोजित तुलसी जयंती समारोह के अवसर पर प्रयाग में उनका दर्शन किया। वे उक्त समारोह में मुख्य अतिथि होकर वेदपाठी-भवन मुजफ्फर नगर से पधारे थे। उस समय मैंने पंडित जी से कहा कि मैं चार भागों में हिंदी कविता का इतिहास लिखना चाहता हूँ और प्रथम भाग—

आदिकाल के लेखन में मैंने हाथ लगा भी दिया है। उस समय आचार्य प्रवर ने कहा, देखो सूर पर जब लिखने लगे, तब साहित्यलहरी पर काव्य-शास्त्र या रीति ग्रथ की दृष्टि से पर्याप्त विचार करना। हिंदी साहित्य के समस्त इतिहासकारों ने साहित्यलहरी की इस दृष्टि से घोर उपेक्षा की है। यह अपने विषय की प्रारंभिक कृतियों में है और अपेक्षणीय है, उपेक्षणीय नहीं।

मैंने आचार्य का आदेश मान लिया। जब आदिकालीन हिंदी कविता का इतिहास लिखा जा चुका, तब भक्तिकालीन कविता के इतिहास-लेखन में प्रवृत्त हुआ। इसके लिए मैंने एक अध्याय 'भक्तिकालीन रीति काव्य' लिखना प्रारंभ किया। इस अवसर पर मैंने साहित्यलहरी का पूर्ण मनन किया और मैं भी डा० व्रजेश्वर वर्मा के समान इसी निष्कर्ष पर पहुँचा कि साहित्यलहरी महाकवि सूर की रचना नहीं है। इस निर्णय पर पहुँचने के मेरे कारण डा० वर्मा के कारणों से एकदम भिन्न हैं। रचनाकाल सूचक पद के अनुसार यह सूर नवीन की रचना है और यह 'सूर नवीन' वंश-परिचय वाले पद के अनुसार चंदबरदाई का वंशज ब्रह्मभट्ट है। मैं वंशपरिचय वाले पद को क्षेपक नहीं स्वीकार कर सका। इसी प्रकार मैंने साहित्यलहरी का रचनाकाल सं० १६७७ स्वीकार किया। साहित्यलहरी का यह अध्ययन मैंने अक्टूबर १९८४ में संपन्न किया।

फिर मन में जिज्ञासा उठी कि देखूँ सूरसारावली और साहित्यलहरी एक ही व्यक्ति की रचना हैं या दो विभिन्न व्यक्तियों की। मेरा निष्कर्ष रहा कि दोनों 'सूर नवीन' की ही रचना हैं।

आज से २० वर्ष पहले काशी से प्रकाशित होने वाले तुलसी संबंधी शोध-त्रैमासिक 'मानस मयूख' में मेरा एक लेख प्रकाशित हुआ था—'गो० गोकुलनाथ 'वल्लभ' और उनका पद साहित्य'। इस अवसर पर वह लेख बड़े काम का सिद्ध हुआ और सूर सारावली के 'गुरु वल्लभ यह तत्व बतायो' की विकट समस्या का समाधान इससे हुआ। यह 'वल्लभ' महाप्रभु वल्लभाचार्य नहीं हैं, गोसाईं गोकुलनाथ हैं।

दिसंबर ८४ में मैं मोंठ जिला झांसी अपने द्वितीय पुत्र रवीन्द्र गुप्त के यहाँ सपत्नीक चला गया था। १६ दिसंबर को वापसी मे उरई में एक रात रुकता हुआ आया। उस दिन वहाँ के साहित्यकारों की गोष्ठी में मैंने सूर के संबंध में अपनी नवीन दृष्टि व्यक्त की। लोगों ने बहुत पसंद किया। अभी तक तो मेरे मन में दो सूर ही थे, यहीं से मेरे मन में दो सूरसागरों की धारा प्रवाहित होने लगी। मेरी दृष्टि सूर के पूर्ववर्ती अध्येताओं के द्वारा कथित सूरसागर के दो अस्पष्ट

रूपों—लीलात्मक और स्कंधात्मक—पर गई। मुझे स्पष्ट आभास हुआ कि सूरसागर भी दो हैं, एक है—लीलात्मक, दूसरा है स्कंधात्मक। दोनों एक ही ग्रंथ के दो स्वरूप नहीं हैं, दो भिन्न ग्रंथ हैं, दो विभिन्न सूरदासों की रचनाएँ हैं।

इसकी घोषणा मैंने साकेत महाविद्यालय फैजाबाद में संपन्न, आचार्य शुक्ल जन्मशती महोत्सव के अवसर पर जनवरी ८५ में अपने साहित्यकार मित्रों एवं विद्वानों से की। फिर प्रयाग के माघ मेले में कल्पवास करते समय इन दोनों सूरसागरों के विश्लेषण में जुट गया। जिसका कभी सं० १७४० के आसपास संश्लेषण किया गया था, आज ३०० वर्षों बाद सं० २०४१ में इसका पुनः विश्लेषण प्रारंभ हो गया।

सूर संबंधी यह कार्य बड़ा जटिल है। किसी के मन-मानस में दो सूरों एवं दो सूरसागरों की कल्पना का आविर्भाव ही असंभव है। मेरे मन में जो यह बात आ गई मैं इसे माँ शारदा का परम प्रसाद मानता हूँ। मेरे अधिकांश शोधकार्य इसी प्रकार स्वतःस्फूर्त है। पहले वे अपौरूषेय रहे है, फिर पौरुषेय हुए हैं। पहले दृष्टि मिली, स्वतः। फिर श्रम, स्वाध्याय, लगन, अध्यवसाय आए। आज मैं सत्तरवें वर्ष में चल रहा हूँ और सूर का काम कर रहा हूँ। यह माँ सरस्वती का अनुग्रह ही है।

इस समय सूर संबंधी सात ग्रंथ एक साथ चल रहे हैं, जिनमें अधिकांश पूर्ण हो चले हैं—

(क) पूर्ण ग्रंथ

१. सूर-साहित्य-सूची—(संदर्भ ग्रंथ)

२. साहित्य लहरी और सूर सारावली के रचयिता सूरजदास और उनकी पदावली—(शोध और संकलन ३०३ पद)

३. सूर श्याम और उनकी पदावली—(शोध और संकलन ११०० पद)

४. सूर और सूर नवीन—(प्रस्तुत शोध ग्रंथ)

५. अष्टछापी सूर की पदावली—२३५ पद

(ख) अपूर्ण ग्रंथ

६. सूरसागर—कृष्ण लीलात्मक संस्करण – अष्टछापी सूर कृत, शोध, और संपादन, सवा दो हजार से कुछ अधिक पद।

७. सूरसागर—स्कंधात्मक संस्करण—सूर नवीन कृत, शोध और संपादन, साढ़े तीन हजार से अधिक पद।

एक बार डा० ब्रजेश्वर वर्मा ने सूर को साहित्य लहरी और सूर सारावली के स्वामित्व से वंचित किया और अब मैं उनकी एक मात्र कृति सूरसागर का भी बँटवारा कर दे रहा हूँ। इससे क्या उनके महत्व, गरिमा, प्रतिष्ठा में कुछ कमी नहीं आएगी ? यह प्रश्न सहज ही उठ खड़ा होता है। पर मेरी यह सुनिश्चित धारणा है कि महाकवि सूर गौरव के जिस उच्च शिखर पर आज स्थित हैं, उससे उन्हें कोई अपदस्थ नहीं कर सकता। सुगंध को बांटा नहीं जा सकता, मिठास का आवंटन नहीं हो सकता। महाकवि सूर का गौरव सूरसागर से था, न कि साहित्य लहरी और सूर सारावली से। सूरसागर में भी उनका गौरव कृष्ण की गोकुलस्थ बाल लीला, वृंदावनस्थ प्रेम लीला, कृष्ण के मथुरा गमन पर गोपियों के विरह तदनंतर भ्रमरगीत पर निर्भर रहा है। इस अपार संपदा में से बँटवारा हो जाने पर भी कंचन अपना कंचनत्व नहीं खो देगा। वह उतना ही कांतिमान, दीप्तिमान बना रहेगा। परिमाण का पहाड़ भले ही कुछ कम हो जाय, पर शिखर तो वैसे जगमगाता रहेगा।

सूर संबंधी इस अध्ययन के प्रस्तुत करने में मुझे भारतेंदु हरिश्चंद्र, राधाकृष्णदास, मिश्रबंधु, आचार्य शुक्ल, डा० मुंशीराम शर्मा, डा० दीनदयाल गुप्त, डा० ब्रजेश्वर वर्मा, डा० प्रताप नारायण टंडन, द्वारिकादास परीख, डा० प्रभुदयाल मीतल, आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, अभिनव भरत आचार्य पं० सीताराम चतुर्वेदी, डा० सत्येन्द्र, श्री उदयशंकर शास्त्री आदि सूर के अध्येताओं के ग्रंथों एवं लेखों के उपयोग करने का अवसर प्राप्त हुआ है। मैं इन सभी विद्वानों का आभार स्वीकार करता हूँ। बिना इनकी कृती कृतियों का सहारा लिए सूर के अगाध सागर के संतरण में मैं असहाय, दिशा-हीन, भटकता ही रह जाता, सूर ही बना रह जाता।

आचार्य विश्वनाथ प्रसाद जी मिश्र को अपने इस अंतेवासी की इस कृति से परम संतोष होता, पर वे अब उसे आशीर्वाद देने के लिए इस असार संसार में नहीं रह गए हैं।

आचार्य प्रवर पं० सीतारामजी चतुर्वेदी ने साहित्य लहरी के रीति-तत्व पर तरंगित होने के लिए मुझे प्रेरित किया था, पर मैं 'लहरी' पर तैरता हुआ 'सागर' में डूब गया। आचार्य प्रवर को मेरी इस निमग्नता से तोष होगा।

अंत में सूर सारावली के मंगलाचरण से इस प्राक्कथन को विराम देता हूँ।

चरन कमल बंदौं हरिराइ

जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै, अँधरे को सब कछु दरसाइ
बहिरौ सुनै, गूँग पुनि बोलै, रंक चलै सिर छत्र धराइ
सूरदास स्वामी करुनामय, बार-बार बंदौं तिहि पाइ

और कहता हूँ —

'अब मैं जानी, देह बुढ़ानी,
—सूरसागर, पद ३०५।

किशोरी लाल गुप्त
एम० ए० (हिंदी, अँग्रेजी),
पी-एच० डी०, डी० लिट्०

सुववै, वाराणसी
पितृपक्ष ४, सं० २०४२
२ अक्टूबर १९८५

पुनश्च

ग्रंथ के छपते-छपते चंद्रवरदाई के वंशज सूर का यह उल्लेख मुझे सम्मेलन द्वारा प्रकाशित 'सूर-संदर्भ' में पृष्ठ १०० पर मिला है, जिसे वहाँ स्व० डा० मुंशीराम शर्मा 'सोम' के प्रसिद्ध ग्रंथ 'सूर-सौरभ' पृष्ठ ४३ से उद्धृत किया गया है।

सूरदास इति ज्ञेयः कृष्णलीलाकरः कविः
शम्भुर्वैचन्द्रभट्टस्य कुले जातो हरिप्रिय

मुंशीराम जी ने इसे भविष्य पुराण से अवतरित किया है। यह भविष्य पुराण, प्रतिसर्ग पर्व तीसरा भाग, अध्याय २२ का श्लोक ३०१ है।

भविष्य पुराण में सूर के साथ-साथ तुलसी, हित हरिवंश आदि अन्य भक्त कवियों के भी उल्लेख हैं।

'चन्द्रभट्टस्य कुले जातो' वाला यह उल्लेख साहित्य लहरी के वंशावली वाले पद को पूर्णतया संपुष्ट करता है। हरि-इच्छा।

२२ जून १९९०

किशोरीलाल गुप्त

भूमिका

१. सूर नामक कवियों की तीन सूचियाँ

(क) राधाकृष्णदास कृत सूची

हिन्दी में एक नाम के कई कई कवि हो गए हैं और उनकी रचनाओं में घालमेल भी हो गया है। अतः इन कवियों के पार्थक्य पर विचार आवश्यक है। सूर नाम के भी कई कवि हुए हैं और इन पर विचार भी हुआ है। सबसे पहले राधाकृष्णदास जी ने अपने सूरदास के जीवन चरित्र में इसका विवेचन करने का प्रयास किया। उन्होंने निम्नांकित सूरदासों का उल्लेख किया है।

१. सूरदास मदनमोहन।

२. वृंदावनस्थ संकेत वट निवासी सूरदास। इनका उल्लेख ध्रुवदास ने भक्त नामावली में किया है—

> सेयो नीकी भाँति सों, श्री संकेत स्थान।
> रह्यौ बड़ाई छाँड़ि कै, सूरज द्विज कल्यान॥

३. विल्व मंगल सूरदास।

४. सूर्योपासक सूरदास—रघुराज सिंह ने राम रसिकावली भक्तमाल में इनका वर्णन किया है।

सूदन के आधार पर ग्रियर्सन ने एक सूरज कवि का नामोल्लेख किया है। राधा कृष्णदास जी के अनुसार यह इन सूरदास से भिन्न नहीं है।

५. सूर साहब—राधास्वामी मत के। इनके कुछ पद इस संप्रदाय द्वारा प्रकाशित संत संग्रह द्वितीय भाग में मिलते हैं।

यह लेख सं० १९५७ में नागरी प्रचारिणी पत्रिका भाग ४ में प्रकाशित हुआ।

(ख) सभा की खोज रिपोर्टों में विवृत १४ सूरदास और उनके ग्रंथ

नागरी प्रचारिणी सभा काशी ने १९०० ई० से हिन्दी के हस्तलिखत ग्रंथों की खोज प्रारंभ की। १९०० से १९०६ तक इसकी वार्षिक खोज रिपोर्टें निकलीं। तदनंतर तीन-तीन वर्षों की सम्मिलित रिपोर्टें। बाद में संपूर्ण खोज रिपोर्टों का सार संक्षिप्त विवरण के रूप में सं० २०२१ वि० में दो भागों में प्रकाशित हुआ। द्वितीय जिल्द में भिन्न-भिन्न रिपोर्टों में विवृत १४ सूरदासों का यह संक्षिप्त विवरण दिया गया है—

१. सूरदास—ब्राह्मण। ब्रज निवासी। वल्लभ संप्रदाय के वैष्णव। भक्त और महात्मा। हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि। वल्लभाचार्य जी के शिष्य। अष्टछाप के कवियों में ये प्रमुख थे।

अष्टपदी वनयात्रा (पद्य)—२६/४७१ ए।
गोवर्द्धन लीला (पद्य)—१७/१८६ ई, सं० ०१/४६१ ट।
दान लीला (पद्य)—सं० ०१/४६१ छ, ज।
पंचाध्यायी (रासलीला) (पद्य)—सं० ०१/४६१ झ।
बिसातिन लीला (पद्य)—२६/४७१ डी, २९/३१९ जे, के; सं० ०४/४२० ख।
भ्रमर गीत (पद्य)—२३/४१६ ए, बी, ४१/२९४ क।
रागमाला (पद्य)—२९/३१९ आई।
राधाकृष्ण मंगल (पद्य) – ०६/२४४ ए; २६/४७१ जी, एच।
रुक्मिणी विवाह और सुदामा चरित्र (पद्य)—२३/४१६ ई।
बंशी लीला (पद्य)—२६/४७१ बी; ३२/२१२ जे; सं० ०१/४६१ ञ।
विष्णुपद (पद्य)—२३/४१६ डी।
साँझी लीला (पद्य)—४१ २९४ ख।
सूर पचीसी (पद्य)—१२/१८५ बी।
सूर रतन (पद्य)—२९/३१९ सी।
सूर रामायण (पद्य) सं० ०१/४६१ ख

सूरसागर (पद्य)—०१/२३; ०६/२४४ सी; डी;; १२/१८५ ए, सी; १७/१८६ ए, बी, सी, डी; २३/४१६ एफ, जी, एच, आई, जे; २६/४७१ एम, एन; २९/३१९ ए, बी, डी ई, एफ, जी, एच, ;३२/ २१२ सी, जी, एच; ४१/२९४ ग से ढ तक, सं० ०४/४२० ग; सं० ०७/२०२।

सूरसागर के पद (पद्य)—३२/२१२ आई ।

सूरसागर सार (पद्य)—०६/२१३ ।

सूर साठि (पद्य)—सं० ०१/४६१ क ।

सूर सारावली (पद्य)—सं० ०१/४६१ ग ।

सेवा फल (पद्य) - सं० ०१/४६१ ङ, च ।

२. सूरदास—संभवतः सूरसागर के रचयिता सुप्रसिद्ध भक्त सूरदास ।
सहस्रनाम (पद्य)—सं० १०/१३४ ।

३. सूरदास—सं० १८३६ के पूर्व वर्तमान ।
बारहखड़ी (पद्य)—सं० ०१/४६२ ।

४. सूरदास—(?)
अर्जुनगीता (पद्य)—२६/४७२ ।

५. सूरदास—(?)
कबीर (पद्य)—२६/४१६ सी ।

६. सूरदास—(?)
गोपालगारी (पद्य)—सं० ०१/४६३ ।

७. सूरदास—(?)
घूँघरा का पद (पद्य)—४?/२९५ ।

८. सूरदास—(?)
नागलीला (पद्य)—०६/२४४ ई; २६/१७१ एफ; (३२/२१२ बी);
सं० ०४/४२० क ।

९. सूरदास (?)
पद संग्रह (पद्य)—०६/ २४४ बी; ३२/२१२ ई ।

१०. सूरदास—(?) ।
द्रौपदी के भजन (पद्य)—३२/२१२ डी ।

११. सूरदास—(?)
प्राणप्यारी (पद्य)—१७/१८६ एफ ।

१२. सूरदास—(?)
बारहखड़ी (पद्य)—३२/२१२ ए ।

१३. सूरदास—(?)
राम जी की बारहमासी (पद्य)—२६/४७१ आई, जे, के।

१४. सूरदास—(?)
बारहमासा (पद्य)—२६/४७१ सी।

इन चौदहों सूरदासों पर मैंने जो विचार किया है, उसके अनुसार ये समस्त चौदह सूर दो सूरों में सन्निविष्ट हो जाते हैं। एक तो प्रसिद्ध, परम प्रख्यात, अष्टछापी महाकवि सूर हैं, जिनकी प्रसिद्ध रचना सूरसागर है। मेरा भी डा० व्रजेश्वर वर्मा जैसे कुछ लोगों से मतैक्य है कि इन सूरदास की एक मात्र रचना सूरसागर है। पर मेरा यह भी मत है कि इन सूरदास का सूरसागर वर्तमान सूरसागर का एक-तिहाई है, यह कृष्ण की व्रज और मथुरा लीला तक ही सीमित है। यह सूरसागर का वह स्वरूप है, जिसे विद्वानों ने पिछले पैंतीस वर्षों से 'लीलात्मक' संस्करण कहना प्रारम्भ किया है। ऊपर वर्णित १४ सूरों में से केवल दो १ और ६ प्रसिद्ध सूर हैं। शेष २-६,८ और १०-१४ संख्यक सूर दूसरे हैं, जिन्हें मैंने 'सूर नवीन' कहा है, जो चंद वरदाई के वंशज ब्रह्मभट्ट हैं और प्रसिद्ध सूर से पर्याप्त परवर्ती हैं। ७ संख्यावाले सूर इनसे भिन्न हैं। एक संख्यक सूर के नाम पर कुल २१ ग्रन्थ चढ़े हुए हैं, जिनमें से अधिकांश सूरसागर के अंश मात्र हैं। शेष सूर नवीन के हैं। ९ संख्यक सूर की रचना भी सूरसागर का ही अंश है। ७ संख्यक्त सूर डिंगल के कवि हैं।

सूर-सागरांश हस्तलेख

१. गोवर्धन लीला—१७/१८६ ई, सं० ०१/४६१ ट। सूरसागर—पद १५०२-१५६९। यह स्वतंत्र ग्रन्थ है और सूर नवीन की रचना है। इसमें कुल ७०-पद हैं।

२. दान लीला (क) सं० २००१/४६१ छ। दानलीला सम्बन्धी पदों का संग्रह है।

(ख) सं० २००१/४६१ ज। सूरसागर का १६१८/२२३६ संख्यक पद है और सूर नवीन की स्वतंत्र रचना है।

३. पंचाध्यायी—सं० २००१/४६१ झ। सूरसागर में प्राप्त है। पर संकलित अंश में कुछ पद सूर के हैं, कुछ सूर नवीन के। एक लंबा पद (सूरसागर १७९८) हरीराम व्यास का है।

४. पद संग्रह—१६०६/२४४ बी, १६३२/२१२ ई। ये दोनों पद संग्रह सूर नंवर ९ के नाम पर दिए गए हैं। ये दोनों सूरसागर के फुटकर पदों के भिन्न भिन्न संग्रह हैं।

५. ब्याहलो—१६०६/२४४ ए। रिपोर्ट में कोई उद्धरण नहीं दिये गये हैं, परन्तु उनके वक्तव्य से ज्ञात होता है कि यह ग्रंथ राधाकृष्ण विवाह पर लिखे गए पदों का संग्रह है। डा० गुप्त का मत है कि वेंकटेश्वर प्रेस वाले सूरसागर में ३४८ पृष्ठ पर राधाकृष्ण विवाह के पद हैं। किसीने इन्हींको अलग कर 'व्याहलो' शीर्षक दे दिया है। डा० व्रजेश्वर वर्मा के अनुसार इसमें विवाह सम्बन्धी २३ पद हैं। डा० प्रभुदयाल मीतल के अनुसार 'विशद विवरण और उदाहरणों के अनुपलब्ध होने के कारण इसकी प्रामाणिकता के सम्बन्ध में निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। इस अल्पज्ञात ग्रंथ का परीक्षण आवश्यक है।'

संक्षिप्त विवरण में इस ग्रन्थ का उल्लेख न तो सूर १ के ग्रंथों में ही किया गया है, न अन्यत्र ही।

६. भ्रमरगीत—२३।४१६ ए, बी ; ४१।२९४ क। तीनों सूरसागर के भ्रमर गीत सम्बन्धी पदों के तीन विभिन्न संकलन हैं।

७ रागमाला—२९।३१९ आई। यह सूरसागर के लगभग एक हजार पदों का संग्रह है। इसका नाम, 'रागमाला' क्यों रखा गया, स्पष्ट नहीं। रिपोर्ट में अवतरित अंशों में 'रागमाला' नाम का कहीं भी कोई उल्लेख नहीं है।

८. रुक्मिणी विवाह और सुदामा चरित—१९२३।४१६ ई। इसमें सूरसागर के कुल ९ पद हैं। प्रथम तीन पद रुक्मिणी विवाह सम्बन्धी हैं और अंतिम ६ सुदामा चरित सम्बन्धी। प्रथम पद = सूरसागर पद ४१७१।४७८९; अंतिम पद = सूरसागर ४२४१।४८५९। ये सूर नवीन कृत हैं, दशम स्कंध उतरार्द्ध के पद हैं।

९. बिष्णुपद—२८।४१६ डी। इस संग्रह में कृष्ण लीला, यशोदा नन्द का कृष्ण प्रेम, राधिका कृष्ण का प्रेम, ऊधो की योग शिक्षा, सूरदास के अंतिम पद हैं। अवतरित तीनों पद दैन्य भाव के हैं। ये सूरसागर के अंश हैं।

१०. सांझी लीला—१९४१।२६४ ख। इसमें राधाकृष्ण विहार सम्बन्धी सांझी के पद हैं, जो सूरसागर के अंश हैं।

११. सूर गूढ़ार्थ पद संग्रह और अर्थ—२००१।४६१ घ। सूरसागर के कूटों का संग्रह, गद्य में अर्थ सहित। टीकाकार हैं बालकृष्ण (भाव नगर) पोथी ५३ पन्ने की है और विद्या विभाग कांकरोली हिंदी बंडल ५ (पुस्तक संख्या २) में प्राप्त है। संक्षिप्त विवरण में इसका उल्लेख नहीं है।

१२. सूर पचीसी—१२।१८५ बी। सूरसागर प्रथम स्कंध, पद ३२५।

१३. सूर रतन—२९।२१९ सी। यह सूरसागर के चुने हुए पदों का १४४ पन्नों का ग्रन्थ है।

१४. सूर रामायण—सं० २००१।४६१ ख। यह सूरसागर नवम स्कंध से राम कथा सम्बन्धी पदों का संकलन है। इसके रचयिता सूर नवीन हैं।

१५. सूरसागर के पद—३२।२१८ आई। यह ११० पन्नों का ग्रंथ है। संग्रह का नाम स्वयं घोषित कर रहा है कि यह सूरसागर से संकलित पदों का समुच्चय है।

१६. सूरसागर सार—१९०९।३१३। ग्रंथ में केवल २७ पन्ने हैं। प्रति पंडित रघुनाथ राम, गाय घाट, वाराणसी की है। लगता है, इसमें राम चरित सम्बन्धी ८० पद संकलित है, यद्यपि खोज रिपोर्ट में इसे ज्ञान वैराग्य भक्ति सम्बन्धी पदों का वर्णन कहा गया है। संकलित पद सूरसागर नवम स्कंध के हैं।

१७, सूर सारावली—सं० २००१।४६१। यह प्रसिद्ध सूरसारावली नहीं है। प्राप्त प्रति खंडित है। और इसमें १६२ पन्ने है। प्रति काशी नागरी प्रचारिणी सभा में है। यह सूर के पदों का संग्रह है, जो सूरसागर से सम्बन्धित हैं।

सूर नवीन के ग्रन्थों के हस्तलेख

१. सूरदास—

१. अष्टपदी वन यात्रा—२६/४७१ए। एक पद।

२. बिसातिन लीला—२६/४७१ डी, २९/३१९ जे के; सं० २००४/४२० ख। एक लंबी रचना।

३. राधाकृष्ण मंगल—०६/२४४ए, २६/४७१ जी, एच।

यह वस्तुतः दो ग्रंथ है। राधा मंगल और कृष्ण मंगल। राधा मंगल तो श्याम सगाई संबंधी एक पद है। इसी का नाम प्राणप्यारी भी है। 'कृष्ण मंगल' कृष्ण जन्म संबंधी एक छापरहित पद है।

४. वंशी लीला—२६/४७१ बी, ३२/२१२ जे, सं० २००१/४६१ क। मात्र एक लंबा पद।

५. सूर रामायण—सं० २००१/४६१ख। स्कंधात्मक सूरसागर का अंश।

६ सूर साठि—सं० २००१/४६१क। ६० चौपाइयों का एक पद।

७. सेवा फल—सं० २००१/४६१ ङ, च। प्रसिद्ध लघु कृति, जो सूर सारावली के साथ-साथ सूरसागर के कलकत्ता, लखनऊ, बंबई संस्करणों में बराबर छपती आई है।

२. सूरदास—सहस्र नाम—सं० २०१०/१३४।

३. सूरदास—बारहखड़ी—सं० २००१/४६२।

४. सूरदास—अर्जुन गीता—२६/४७२।

५. सूरदास—कबीर—२३/४१६ सी।

६. सूरदास—गोपालगारी—सं० २००१/४६३।

८. सूरदास—नागलीला—०६/२४४ ई, २६/४७१ एफ, ३२/२१२ बी, सं० २००४/४२० क।

१०. सूरदास—द्रौपदी के भजन—३२/२१२ डी।

११. सूरदास—प्राणप्यारी—१७/१६६ एफ। यह राधामंगल ही है।

१२. सूरदास—बारहखड़ी ३२/२१२ ए।

१३. सूरदास—रामजी की बारहमासी—२६/४७१, आई, जे, के।

१४. सूरदास—बारहमासा—२६/४७१ सी।

सूरसंख्या १ के नाम पर चढ़े निम्नांकित ग्रंथ सूर नवीन के स्कंधात्मक सूरसागर के अंश हैं, स्वतंत्र ग्रंथ नहीं।

१. रुक्मिणी विवाह और सुदामा चरित—१९२३/४१६ ई।

२. सूर रामायण—सं० २००१/४६१ ख।

(ग) मीतल जी के सोलह सूर

साहित्य वाचस्पति डाक्टर प्रभुदयाल जी मीतल ने अपने 'सूर सर्वस्व' नामक ग्रंथ में प्रसिद्ध अष्टछापी महाकवि सूरदास से भिन्न इन अन्य सोलह सूरों की संस्थापना की है—

१. विल्व मंगल सूरदास —तेरहवीं शती
२. सूरदास मदनमोहन—सं० १५७०—१६४०
३. ग्वालियरी सूरदास—सं० १५८०—१६५०
४. रामानंदी सूरज —१७वीं शती का पूर्वार्ध
५. संकेत निवासी सूरज— ,,
६. बनारस निवासी सूरदास— ,,
७. सूरश्याम —
८. सूरसखी —
९. परमार्थी सूरज —१७वीं शती।
१०. ब्रह्मभट्ट सूरजचंद—
११. गुजराती सूर भट्ट
१२. सूफी सूरदास
१३. संत सूरजदास
१४. सूर किशोर
१५. सूरसेन
१६. सूरस्वामी—सं० १८५८—१९३३

इस लंबी सूची को देखकर अनेक समीक्षकों का संशयग्रस्त एवं त्रस्त हो जाना सहज है। अतः इसकी जाँच-पड़ताल आवश्यक जान पड़ती है। हम इन्हें एक-एक करके लेंगे।

१. विल्व मंगल सूरदास

विल्व मंगल जी पंढरपुर निवासी दक्षिणी ब्राह्मण, चिंतामणि वेश्या के प्रेमी, संस्कृत के प्रसिद्ध काव्य 'कृष्ण-कर्णामृत' के रचयिता थे। यह तेरहवीं शती में हुए हैं। पहले इनके जीवन की घटनाओं का घालमेल महाकवि सूरदास के जीवन की घटनाओं से हो गया था, जो अब अलग किया जा चुका है। सूरसागर में जिन सूरों की रचनाओं का पद-मिश्रण हो गया है, उन पर अथवा हिंदी के सूर नामक कवियों

पर विचार करते हुए संस्कृत के इस सूर को घसीट लाना समीचीन नहीं, क्योंकि इसकी संस्कृत रचना का सूरसागर में घालमेल न तो हुआ है, न होना सम्भव ही है।

२. सूरदास मदनमोहन

सम्राट् अकबर के अमीन, संडीला के साधु-सेवी, सूरध्वज ब्राह्मण, स-नयन सूरदास, कृष्ण की मदनमोहन नामक प्रतिमा के प्रेमी भक्त थे। इन्होंने अपने हर पद में अपने नाम के साथ अपने इष्टदेव मदनमोहन को जोड़ रखा है। इनकी समस्त रचनाएँ इनकी छाप 'सूरदास मदनमोहन' के आधार पर स्पष्ट पहचानी जाती हैं। सभा के सूरसागर में इस छाप के १६ पद मिल गए हैं, जिन्हें मीतल जी ने ढूंढ़ निकाला है। सूरसागर में 'सूरदास मदनमोहन' छाप वाले पद पच नहीं सकते। अतः इन पर भी विचार अनावश्यक है।

३. ग्वालियरी सूरदास
७. सूरश्याम
१०. ब्रह्मभट्ट सूरजचंद

ये तीनों सूरदास तीन न होकर एक ही हैं। ग्वालियर निवासी अकबरी दरबार के गायक रामदास के पुत्र ब्रह्मभट्ट सूरजचंद ही सूरजदास, सूरज, सूर, सूरदास और सूरश्याम हैं। यही स्कंधात्मक सूरसागर, साहित्यलहरी, सूरसारावली, सेवाफल तथा अन्य अनेक खोज-प्राप्त लघु रचनाओं के रचयिता हैं। इन्हींकी रचनाओं का सूरसागर में अत्यधिक घालमेल हुआ है। इन पर पूर्ण विचार मूल ग्रंथ में विस्तारपूर्वक किया जायगा।

४. रामानंदी सूरज

कृष्णदास पयहारी के २४ शिष्यों में से एक (भक्तमाल छप्पय ३९)। यह कवि नहीं थे। अतः इन पर विचार अनावश्यक है।

५. संकेत निवासी सूरज

ध्रुवदास की भक्तनामावली (दोहा ८२) में उल्लेख। यह भी कवि नहीं थे। अतः विचार अनावश्यक है।

६. बनारस निवासी सूरदास

अकबर के समय में बनारस में रहने वाले इन सूरदास को अबुलफजल ने पत्र लिखकर अकबर से भेंट करने के लिए इलाहाबाद आने का आमंत्रण दिया था। यह भी कवि नहीं थे। अतः विचार अनावश्यक है।

८. सूरसखी

मीतल जी का मत है—"इस नाम का कोई भक्त कवि नहीं हुआ। फिर 'सूर सखी एक शब्द न होकर 'सूर' और 'सखी' जैसे दो शब्द हैं। इनका 'सूर' कवि की नाम-छाप है और 'सखी' गोपी-वाची है।"

मैं मीतल जी से पूर्णतः सहमत हूँ। अतः यह सूर स्वतः छूट जाते हैं।

९. परमार्थी सूरज

भक्तमाल छप्पय ९८ में परिगणित परमार्थी भक्तजनों में जो 'सूरज' हैं, उनके कवि होने का कोई भी उल्लेख कहीं नहीं मिलता। अतः यह भी विचार की सीमा के बाहर हैं।

११. गुजराती सूर भट्ट

जवाहरलाल चतुर्वेदी कृत 'सूरदास—अध्ययन सामग्री' में गुजराती सूर भट्ट के 'सरगारोहण' नामक प्रबंध काव्य और उसके चार हस्तलेखों का उल्लेख है। इस गुजराती सूर भट्ट का अष्टछापी सूरदास से कोई संबंध नहीं। इसकी रचना भी कृष्ण-भक्ति काव्य से संबद्ध नहीं तथा यह मुक्तक पद न होकर प्रबंध है। अतः यह कवि भी विचार-सीमा में नहीं आता।

१२. सूफी सूरदास

यह सूरदास लखनवी थे। इन्होंने १७१४ में 'नलदमन' नामक प्रेमाख्यानक काव्य दोहा चौपाइयों में रचा था। अब यह ग्रंथ कन्हैयालाल माणिकलाल हिंदी तथा भाषा विज्ञान विद्यापीठ आगरा द्वारा प्रकाशित हो गया है। सबसे पहले भारतेन्दु ने 'नलदमन' को महाकवि सूरदास की रचना के रूप में उल्लिखित किया था। तभी से यह सूर के ग्रंथों में परिगणित होता आया था। इसके प्रकाशन के साथ यह समस्या स्वतः समाप्त हो गई। इस 'नलदमन' का सूरसागर से घालमेल असंभव है। अतः यह सूर भी विचार सीमा से बाहर हो जाते हैं।

१३. सूरजदास

राम जन्म, एकादशी माहात्म्य आदि अवधी भाषा एवं दोहा चौपाई छंदों में रचित लघु प्रबंधों के रचयिता सूरजदास महाकवि सूर के पूर्ववर्ती हैं। सत्यवती एवं

स्वर्गारोहिणी कथा के रचयिता गाजीपुरी ईश्वरदास ने स्वर्गारोहिणी कथा (रचना-काल सं० १५५७ वि०) में इनकी कविता पढ़ने का उल्लेख किया है।

सूरजदास सीता पद गायो। ऊखा प्रच हरि सिंह देव गायो

'सीतापद' इनका एक अन्य ग्रंथ है।

अस्तु यह सूरजदास सं० १५०० के आस-पास के कवि हैं, दोहा चौपाई में प्रबंध काव्य लिखने वाले अवधी भाषा के कवि हैं। इनका घालमेल सूरसागर में संभव नहीं। अतः यह भी विचार-सीमा में नहीं आते।

१४. सूरकिशोर

सूर किशोर परवर्ती राम-भक्त कवि थे। इनकी रचना 'मिथिला-विलास' है। इनकी छाप सूरकिशोर है। सूरसागर में इनके पदों का कोई घालमेल नहीं हुआ है। वियोगी हरि जी ने भ्रम-वश भजन संग्रह भाग १ (गीताप्रेस गोरखपुर) में सूर के पदों के अंतर्गत 'सुने री मैंने निर्बल के बल राम' प्रतीक वाला पद संकलित कर लिया है। 'सूर किशोर' और 'सूरदास' स्पष्ट ही दो अलग-अलग नाम हैं और किसी भी प्रकार के घालमेल की आशंका नहीं है। अतः इनका भी प्रश्न विचारणीय नहीं रह जाता।

१५. सूरसेन

जवाहरलाल चतुर्वेदी संपादित सूरसागर खंड १ में पृष्ठ २२-२३ पर एक पद है, जिसकी अंतिम पंक्ति है—

बल-गिरिधरन राइ जू ऊपर, सुर सेन बलिहारी

मीतल जी के अनुसार सूरसेन कवि-छाप है। तो, इस एक पद के आधार पर इस सूरसेन का सूरदास के सूरसागर में घालमेल की समस्या नहीं उठ खड़ी होती। अत यह भी विचार के बाहर हैं।

१६. सूरस्वामी

सूर स्वामी हाथरस के रहने वाले थे. यह घट-रामायण वाले तुलसी साहब के शिष्य थे। इनका समय सं० १८५८—१९३३ वि० है। यह निर्गुनिया संत

कवि थे। इनके सबदों की सूरसागर में घालमेल की आशंका नहीं। अतः यह भी विचार-बाह्य हैं।

इस विचार-मंथन के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि अष्टछापी सूरदास के साथ घालमेल केवल एक सूरदास का हुआ है, वह हैं ऊपर उल्लिखित ३ ग्वालियरी सूरदास, ७ सूरश्याम, १० ब्रह्मभट्ट सूरजचंद। ये तीनों तीन न होकर एक हैं और इन्होंने अपने को महाकवि सूर से अलग करने के लिए अपने को 'सूर-नवीन' भी कहा है—

तृतिय रिच्छ, सुकर्म जोग, बिचारि 'सूर नवीन'
नंदनंदन दास हित, 'साहित्य-लहरी' कीन

अस्तु हमें तो केवल दो सूरदास दिखाई देते हैं—

१. अष्टछापी महाकवि सूरदास, २. सूर नवीन।
प्रस्तुत ग्रंथ में इन्हीं दोनों सूरों पर विचार हुआ है।

२. सूर नामक हिन्दी के विभिन्न कवि

१. अवधी के कवि सूरजदास

सभा की खोज रिपोर्ट १९१७-१९ ई०। १८७ ए में सूरजदास कृत 'राम जन्म' एवं १९१७-१९।१८७ बी में उन्हीं के 'एकादशी माहात्म्य' का विवरण दिया हुआ है। ये दोनों ग्रंथ दोहा चौपाई छंदों में लिखे गए हैं। इनकी भाषा अवधी है। 'राम जन्म' में ग्रंथारंभ में गणपति और राम की स्तुति है। इसी प्रकार 'एकादशी माहात्म्य' में भी ग्रंथारंभ में गणेश, शारदा, तैंतीस कोटि देवता, महादेव, माता पिता, गुरू की स्तुति है। खोज रिपोर्ट में जो उद्धरण दिए गए हैं, उनसे सिद्ध है कि यह सूरजदास रामोपासक हैं और अष्टछापी महाकवि सूरदास से भिन्न हैं, यद्यपि महाकवि सूर की भी एक छाप सूरजदास है। अतः ये रचनाएं महाकवि सूर की नहीं हैं। ये किसी एक ही कवि की दो कृतियाँ हैं।

इन दोनों ग्रंथों की प्रामाणिकता की जाँच करते हुए यह अभिप्राय डा० दीनदयाल गुप्त ने 'अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय' (पृष्ठ २९६-९७) में व्यक्त किए हैं। डा० गुप्त को इन ग्रंथों की प्रामाणिकता या अप्रामाणिकता पर यह अनावश्यक विचार इसलिए करना पड़ा कि खोज रिपोर्ट १९१७ के आधार पर हिन्दी साहित्य

में कुछ इतिहासकारों ने खोज रिपोर्ट की बिना अच्छी तरह जाँच किए हुए ही इन्हें अष्टछापी सूरदास कह दिया है। डा० गुप्त ने ऐसे इतिहासकारों का नामोल्लेख करना उचित नहीं समझा। ये उल्लेख न तो मिश्रबंधुओं के मिश्रबंधु विनोद, हिन्दी नवरत्न, हिन्दी साहित्य का इतिहास में हैं, न तो आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के हिन्दी साहित्य का इतिहास में, न डा० श्याम सुन्दर दास के 'हिन्दी साहित्य' में, न हरिऔध जी के 'हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास में ही हैं। यह उल्लेख डा० रामकुमार वर्मा के 'हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' में अनवधानता के कारण हो गया है।

सभा की खोज रिपोर्टों में सूरजदास को प्रसिद्ध महाकवि सूर से एकांत और नितांत पृथक स्वीकार किया गया है—

खोज रिपोर्ट	सूरजदास की संख्या	सूरदास की संख्या
१९१७-१९	एकादशी माहात्म्य १८७ बी	१८६
	रामजन्म १८७ ए	
१९२३-२५	एकादशी माहात्म्य ४१७ बी	४१६
	राम जन्म ४१७ सी	
	रुक्मांगद सी कथा ४१७ ए	
१९२६-२८	एकादशी महात्म्य ४७३ ए	४७१
	राम जन्म ४७३ बी	
सं० २००१-०४	राम रहारी (लवकुश कांड) ४५८	४६१

डा० वर्मा की जरा सी असावधानी से सूर की पुस्तकों में दो की अकारण वृद्धि हो गई, जिनका लोग निराकरण करते फिर रहे हैं।

डा० व्रजेश्वर वर्मा ने भी 'सूरदास' के 'राम जन्म' और 'एकादशी माहा. त्म्य' का उल्लेख किया है। वे भी इन्हें सूर की रचना नहीं मानते। डा० प्रभुदयाल मीतल ने भी सूर सर्वस्व में इनका उल्लेख किया है और इन्हें डा० दीन दयाल गुप्त का हवाला देते हुए अप्रामाणिक रचना कहा है।

डा० दीनदयाल गुप्त ने अवधी के कवि इस रामोपासक सूरजदास के सम्बन्ध में और कुछ जानने का प्रयत्न नहीं किया। डा० प्रभु दयाल जी ने इस सम्बन्ध में निम्नांकित अनुमान लगाया है—

'हमारे मतानुसार इन्हें उस रामानंदी सूरज ने रचा है, जो काशी में आकर रहने लगा था और जिसे अबुलफजल ने पत्र द्वारा सम्राट अकबर से भेंट करने को इलाहाबाद बुलाया था।' —सूर सर्वस्व, पृष्ठ १७९

डा० मीतल का यह अनुमान ठीक नहीं है। इस सूरज के कवि होने का कोई उल्लेख कहीं नहीं मिलता। यह कोई सिद्ध साधु रहा होगा।

अवधी के प्रसिद्ध कवि ईस्वरदास ने सं० १५५७ में 'स्वर्गारोहिणी कथा और सं० १५५८ में 'सत्यवती कथा' की रचना की थी। स्वर्गारोहिणी कथा में पांडवों के स्वर्गारोहण की कथा है। इसने ग्रंथारंभ में अपने उन पूर्ववर्ती कवियों और उनकी कृतियों का नामोल्लेख किया है, जिनको उसने पढ़ा था। इस सूची में 'सूरजदास' और उनकी कृति 'सीतापद' का नाम आया है—

व्यास बाल मुनि बुधि के साका। खंड अठारह आगम भाखा॥
कालिदास अमरपद कीन्हा। लखनसेनि पंडित कवि कीन्हा॥
तिनके बंस जो भयेउ हंकारा। कंसबंध जिन्ह कीन्ह ग्रसारा॥
सूरजदास सीतापद गायो। ऊषा प्रच हरिसिंघ देव गायो॥
कीन्ह धन्य जे बैताल पचीसी। जैदेव किहिन कृष्न चौबीसी॥
विपरीति भाँति डंड कुमारा। क्रिस्न केलि जिन्ह कीन्ह रसारा॥
सुरपति घात जब भै राजा। कंस उधारन औ बलि राजा॥

जिन कबितन पढ़ बंदौं, कहै ईसर मन लाइ
महिमंडल जेता कबितु, सो तो बरनि न जाइ

कवि ईश्वरदास ने प्रारंभ में संस्कृत के अमर कवि व्यास वाल्मीकि एवं कालिदास का स्मरण किया है। तदनंतर वह निम्नांकित हिन्दी कवियों एवं काव्यों पर आया है।

१. लखन सेनि—यह जौनपुर का रहनेवाला था। मुसलमानों से त्रस्त होकर यह जौनपुर छोड़कर चौसा चला गया था, जहां गोरखपंथी बड़नंदन का रामराज्य था, जिसने गंगा के किनारे शत्रुओं को बुरी तरह परास्त किया था। यहाँ लखन सेनि ने सं० १४८१ विक्रमी में हरि चरित्र, विराटपर्व एवं महाभारत भाषा की रचना की थी।

२. कंस वध काव्य। कवि के सम्बन्ध में कोई जानकारी नहीं।

३. सूरजदास—सीतापद का रचयिता। यही प्रसंग-प्राप्त रामजन्म एवं एकादशी माहात्म्य का भी रचयिता है।

४. हरिसिंहदेव—ऊषा प्रच (परिचय) के रचयिता ।

५. वैताल पचीसी—यह मानिक कवि की रचना है । मानिक कवि अयोध्या से भागकर ग्वालियर चला गया था । वहाँ वह सिंघई खेमल के बाड़े में रहता था । यहीं उसने १५४६ वि० में वेताल पच्चीसी की अनूप कथा लिखी थी ।

६. जयदेव कवि—कृष्ण चौबीसी के रचयिता ।

७. कृष्ण केलि की रसाल कथा ।

ईश्वरदास की स्वर्गारोहिणी कथा में 'सूरजदास' का उल्लेख होने से स्पष्ट है कि यह कवि सं० १५५७ के पहले का है । कब का है, यह निर्णय होना बाकी है ।

'रामजन्म' का एक दोहा है—

सुरजदास कवि बरनौं, प्रान नाथ जिअ मोर

इसके आधार पर उक्त खोज रिपोर्ट में प्राननाथ को कवि का गुरू मानने का प्रयत्न किया गया है । पर अन्यत्र इसमें कुछ पाठांतर भी है—

सुरजदास कवि बरनौं, परम नाथ जिअ मोर

— खोज रिपोर्ट १९२३-४१७ सी

यह अभी तै होना शेष है कि मूल पाठ 'प्राननाथ' है या कि 'परम नाथ' । यह इनके गुरू थे या क्या थे, यह विषय तो बाद का है ।

'राम जन्म' में संपूर्ण बालकांड की कथा है—राम के जन्म से लेकर उनके विवाह करके अयोध्या वापस आने तक ।

रुक्मांगद की कथा और एकादशी माहात्म्य में एक ही कथा है । संभवतः दोनों एक ही ग्रंथ हैं । अयोध्या के प्रसिद्ध राजा सत्यवादी हरिश्चंद्र थे । उनके पुत्र रोहिताश्व थे । रोहिताश्व के पुत्र रुक्मांगद थे । रुक्मांगद न्यायी, धर्मनिष्ठ, ईश्वरभक्त राजा थे । यह एकादशी व्रत रहा करते थे । सारे नगरवासी भी व्रत रहते थे । यहाँ तक कि पशु पक्षी भी फलाहार पाते थे । यम घबरा गए, नरक खाली होने लगा । तब इन्द्र से षड्यंत्र करके मोहिनी भेजी गई । राजा उसपर आसक्त हो गया । उस का एकादशी व्रत छूट गया । मोहिनी का रथ रुक गया । अयोध्या में कोई एकादशी व्रत करने वाला नहीं रह गया था, जिसके छू देने से रथ पुनः चलने लगता । एक बुढ़िया थी । उसका अपनी बहू से झगड़ा हो गया था । इसलिए गत दिन वह उपवास कर गई थी । संयोग से वह दिन एकादशी का था । उसने आकर रथ छू लिया

और रथ चल पड़ा। रुक्मांगद की रानी संध्यावती ने उसे शाप दे दिया, जिससे वह डोमिनी हो गई। एकादशी का व्रत करके वह डोमिनी पुनः मोहिनी अप्सरा हो गई। संक्षेप में यही राजा रुक्मांगद की कथा है। यही एकादशी माहात्म्य भी है।

राम जन्म और रुक्मांगद की कथा के सभी हस्तलेख उन्नीसवीं शती के हैं। इनके आधार पर इनका रचनाकाल नहीं निर्धारित किया जा सकता। कवि सं० १५५७ के पहले का है। प्राप्त हस्तलेखों से कम से कम ३०० वर्ष पहले का।

'राम रहारी' नाम रहस्यमय है। हिंदी शब्द सागर में न तो राम रहारी है, न 'रहारी'। हमारे यहाँ वाराणसी जिले में यह यौगिक शब्द है। रहारी का अलग प्रयोग नहीं होता। रामरहारी का अर्थ है—'प्रणाम आशीर्वाद'। उच्च वर्ग के ब्राह्मणों में 'पैलगी' चलती है, पिछड़े वर्ग के लोगों में 'रामरहारी'। यह जैराम, राम राम, सीताराम, जैसीताराम आदि रूपों में एक दूसरे से मिलने पर या अलग होते समय कहा जाता है। प्रस्तुत ग्रंथ में तो लवकुश कांड या रामाश्वमेध की कथा है। हो सकता है यही ग्रंथ ईश्वरदास वर्णित 'सीतापद हो।

प्राप्त हस्तलेख काशी नागरी प्रचारिणी सभा का है। इसमें कुल ६९ पन्ने हैं। दूसरा पन्ना नहीं है। प्रतिलिपि काल सं० १८१६ वि० है।

मीतल जी ने सूर के अप्रामाणिक ग्रंथों में एक 'मोरध्वज कथा' का उल्लेख किया है। इसकी कोई हस्तलिखित प्रति नहीं प्राप्त हुई है। पर यह ग्रंथ कई स्थानों से बार बार छप चुका है। मीतल जी ने भाषा और भावों की दृष्टि से इसे अष्टछापी सूरदास की रचना नहीं माना है, जो ठीक ही है। मैंने इसे नहीं देखा है। यह धर्माख्यान है। यदि यह दोहा चौपाइयों में रचा गया हो और इसमें सूरजदास छाप हो तो यह इसी सूरजदास की रचना होनी चाहिए।

राम जन्म

आदि—

श्री गुरु चरन सरोज रज, निज मन मुकुर सुधार
बरनौं रघुबर विमल जस, जो दायक फल चार
कंठ में बसहिं सरस्वती, हृदय बसहु महेस
भूलल अछर प्रगासहु, गौरी पुत्र गनेस

बरनौं गनपति विघन बिनासा। राम रूप तुम पुरवहु आसा
बरनौं सरसति अमृत बानी। राम रूप तुम भलि गति जानी

बरनौं चाँद सुरज को जोती। राम रूप जासु निर्मल मोती
बरनौं वसुकि धरौ जो भार। राम रूप भए जगत पियार
बरनौं मात पिता गुरु पाऊँ। जिन मोहिँ निर्मल ज्ञान सिखाऊ

सुरजदास कवि बरनौं, प्राननाथ जिअ मोर
राम कथा कछु भाखौं, कहत न लागे भोर

बालमीकि रामायन भाखा। तीन भुवन जस भरि पुर राखा
राम के जनम सुने मन लाई। बाढ़े धरम पाप छै जाई
हिरदय माँह त्रिबेनी कीन्हा। कोटि गाय विप्रन कहँ दीन्हा
कोटि विप्र जे नेवति जेवायो। कोटि आसमधि जज्ञ करायो
कोटि भार कंचन पहिरायो। सो फल राम के जनम सुनावो

कोटि तीर्थ जो कीन्हा, जनु गहने दीनेहु दान
सुरजदास कवि बिनवो, सूनत राम पुरान

—खोज रि० १९१७।१८७ ए; १९२३/४१७ सी

× × ×

मध्य—

एक से एक महा रनवासा। सुख विलास इन्द्रासन पासा
इहि विधि राज करत दिन गयऊ। आनँद मंगल बहु विधि भयऊ
एक दिवस अहेर नृप गयऊ। वन भूले पथ नाहीं पयऊ
बन अपार तहँ गए हेराई। बन बन फिरैं पंथ नहिं पाई
सरवर एक राव तब देखा। भई साँझ तहँ बसौ बिसेषा

सरवर निकट बैठि के, राजा करि अनुमान
आपु अकेले बैठि तहँ, हाथ लिए धनु बान

विधि सँजोग सरवन तहँ आए। मात पिता को तीर्थ कराए
अंधी अंध रिसीसर ताहीं। छुधावंत सरवन सों काही
पुत्र, आनि मोहिं पानि पिआऊ। प्रान जात, तुरत चलि आऊ
पीहौं नीर, रहै प्रान हमारा। सुनि सरवन मन कीन विचारा

—खोज रि० १९२६।४७३ बी

अंत—

राम जनर्म सुनै मन लाइ। दुख दलिदर सभ जाइ पराइ
राम के जनम सुनै जो कान। तेहिकर पुत्र होत कलिआन
राम के जनम मनौती जो गावै। सो नर भवसागर तरि जावै

राम जनम-कथा विमल, पढ़ै जो नर मन लाय
सो नर राम प्रताप से, भौ सागर तरि जाय

—खोज रि० १९२३।४१७ सी

घर घर अनंद बधावने, होय सो मंगलचार
प्रजा लोग सब हरष सों, सबके रार्म अधार
सुरजदास कवि जो सुना, राम जनम विस्तार
गुरु प्रताप को दाआ, सो सब कहा पुकार
राम जनम की पोथी, पढ़ै सुनै मन लाय
सो नर नारि समेत सुख, बैकुण्ठहि चलि जाय

—खोज रि० १९२६।४७३ वीं

रुक्मांगद को कथा (एकादशी माहात्म्य)

श्री लंबोदर, गजबदन, सदन वेद, बुधि रास
तो सुमिरे अघ कटत है, होत बुद्धि परकास

—१९२६।४७३ ए

बंदौं गुरु गनपति कर जोरी। बंदौं सुर तैंतीस करोरी
बंदौ सारद चरन मुरारी। बंदौं अमरदेव त्रिपुरारी
बंदौं मातु पिता गुरु दाया। अच्छर भेद देहु रघुराया
गावौं कथा सुनहु मनु लाई। कहत सुनत पातक मिटि जाई
करौं कथा बंदौं हरि पाऊँ। सुर्जदास चरनन चित लाऊँ
सतजुग सत आगे चलि गयऊ। तेहि पाछे पुनि त्रेता भयऊ
सतजुग महँ हरिचंद नरेसा। नवखंड पृथिमी कीन्ह प्रवेसा
तेहिकर पुत्र भए रोहितासा। प्रगटे पुन्य, पाप सब नासा
तासु पुत्र रुक्मांगद राजा। करत पुन्य, दुख दारिद भाजा

—खोज रि० १९१७।१८७ बी, १९२६।४७३ए

आदि—

प्रनवौं गुरु गनपति के चरना। सिद्धि वही दायक के करना ॥
चरन मनावौं द्वौ कर जोरी। गनपति बुद्धि बढ़ावहु मोरी ॥
मातु पिता गुरु वंदौं पावां। जिन यह निर्मल ज्ञान लखावा ॥
सदा हृदै वें वंदौं स्वामी। गनपति हौ सब अंतरजामी ॥
सुर्जदास कवि विनती करई। मोरे हृदय कपट नहिं परई ॥
अवध नगर के बरनौं पारा। जहँ नारायन भये अवतारा ॥
कनक कोटि फिरि चारिहु पासा। उठे कँगूरा जनु कैलासा ॥
पुरब पावरी विरजे जरिया। दखिन पावरी सोन सब मढ़िया ॥
पछिम देखे होहु अहि नास। उत्तर दीसै देव को वास ॥
चारिउ वरनं बसैं सब जाती। परजा लोग बसैं बहु भाती ॥
सब कोउ सुखी सबै सकुमारा। सबके कंचन पवन पंगारा ॥
सब के घर घर बांधे हाथी। सब के तुरी रथन सारथी ॥

—खोज १९२३।४१७ ए

अंत—

मुगध रूप तब देवन लीन्हा। तबहिं मोहनी काहु न चीन्हा ॥
संज्ञावति तब दीन्ह सरापा। डोमिनि होइके भुगतहु पापा ॥
पुहुप के बास जियहु तुम जाई। कुकर के असि तोरहु आई ॥
जन्म निरास हो गए परणाई। अपने लोक बैठ सो जाई ॥
सिव कैलास बैठै अस धाई। निज निज डगर देवतन पाई ॥
मोहिनि भई श्राप को भंडिय। घूमै लागि ग्राम के छंडिय ॥
बिष्नु साथ हरि मंगर लीन्हा। प्रेम की महिमा कहँ लागि कीन्हा ॥
कहँ लगि ब्रत कर करौं बखाना। तिन्ह ही लौ लगि व्रत ठाना ॥

सुर्जदास कवि भाषा, रुकमंगद कैलास
निस्चै मन कै सेवहु, केसौ चरन निवास

—खोज १९२३।४१७ ए

धनि राजा रुक्मांगद, पावा पद निरवान
चौदह भुवन सुखित भए, जे कीन्हें एतनौ दान

जे फल परस देव के द्वारा। जे फल जगरनाथ जेवँनारा ॥
जे फल अस्वमेध के कीन्हे। सोइ फल एकादसि के लीन्हें ॥

कोटि तीर्थ जनु कीने गहने दीन्हें दान
सोई फल एकादसी, पावइ पद निरवान

—१९२६।४७३ ए

सो फल एकादसी महँ, सुर्जदास कवि गाइ
जन्म जन्म कर पातख, कथा सुनत मिटि जाइ

—खोज १९१७।१८७ बी

एकादशी व्रत माहात्म्य

आदि

शंकर सरण प्रथमहीं, पंकज सीस नवाइ
चरण कमल मैं मांगऊँ, श्री गुरुदेव लखाय १
राम लखण सुमिरों दोउ भाई । नाम लेत पातक खसि जाई ।।
सुमिरौं पवन पूत हनुमंता । जेहि सुमिरे बल होइ बहूता ।।
सुमिरौं चांद सुर्ज दोउ भाई । जिनकी ज्योति रही जग छाई ।।

अंत

सूर्यदास बिनती करे, सुनहू हो संत सुजान
करहु ध्यान श्री कृष्न का, होइ इंद्र असथान ८०
एकादसि जो सुनहि सँपूरण । ते जानहु गंगा सनान तण ।।
सुनि कै कथा जो देइहि दाना । तेहि कहँ होइ इंद्र अस्थाना ।।
एकादसी अमृत कै खानी । संत सुजान पियहिं मन जानी ।।
जम कै निसान अंत जात थोरी । रसना अछर अछर कै जोरी ।।
कहै सुनै जो प्रानी, अस्वमेध जगि होइ
सुर्यदास कवि भाखैं, हरि सम अवर न कोइ ८१

—खोज रि० १९२३।४१७ बी

राम रहारी

यत्रैव गंगा यमुना त्रिवेणी, गोदावरी सिंधु सरस्वती च
सर्वाणि तीर्थाणि वसंति तत्र, यत्रो च तो द्वार कथा प्रसंग:

मंगलाचरण

प्रनवौं गनपति मन चित लाई । जेहि सुमरे मैं रति मति पाई ।।
प्रनवौं मातु पिता गुरु पाऊ । जिन्ह मोहिं निर्मल ज्ञान सिखाऊ ।।
सारद को मैं चरन मनावौं । जेहि प्रसाद अच्छर सुधि पावौं ।।

कथारंभ—

राम नाम सभ करहिँ पुकारा । मानहु दुइज क चांद निहारा ।।
राम-विमान गगन भहि धावा । जनु तारागन सर्ग सोहावा ।।
राम विमान उतरि पुनि तहाँ । सभ कुटुंब मिलि आए जहाँ ।।
उतरे राम सिआ औ लछमन । उतरे बानर भालु सब संगन ।।
हनुवँत वीर अंगद कुमारा । दइत विभीषन लंक भुआरा ।।
उतरे जान सकल बलबीरा । जामवंत उतरे रनधीरा ।।
उतरे सेना सभ समुदाई । तिन्हको नाम कहै को गाई ।।

देखि कुटुंबिन्ह गहवर, रामहि रहा न जाइ
गुरु बसिष्ठ के चरनन्ह, पहिले लाग वे धाइ

अंत—

सगरी कटक जिआए, सभ कोउ भा हरषंत
सीता लेन पठाए, लछुमन औ हनिवंत

लछुमन कहा चढ़हु रथ आई । रामचन्द्र तोहिं बोलि पठाई ।।
सीअ कहा सुनु लछमन राई । दीन्ह बहुत दुख तोहरे भाई ।।
धरती महँ जो बेवर होई । जाउं रसातल लखै न कोई ।।
लखन कहा तब राम गोसाइँ । अब वोइसे दुइ बालक आई ।।
बाँह पकरि तब रथहि चढ़ावा । हाँकि रथहि लै अवधहि आवा ।।
पाछे पलटि जग्य पुनि कीन्हा । कोटि गाय विप्रन्ह कें दीन्हा ।।
हेम रतन औ सहन भंडारा । सो सभ दीन्हा, लागु न बारा ।।

फलश्रुति

लवकुस चरित सुने मन लाई । ताकर पाप तुरित छै जाई ।।
जाके सुनत पाप सब नासा । होय मोछ, बैकुंठ नेवासा ।।
जाहि सुने सुख पावै रीधी । जैत पत्र फल पावै सीधी ।।

सीता सती सुतन्ह सँग, भूँजब लागी राज
कहत सुनत जे प्रानी, होइ महा सिध काज

—खोज रि० सं० २००१।४५८

२. डिंगल के कवि सूरदास

काशी नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट १९४१।२९५ में किसी सूरदास के 'धूंधरा के पद' नामक दो पृष्ठों की एक रचना का विवरण है। इन सूरदास का विवरण इन शब्दों में दिया गया है—

"२९५ सूरजमल—ये सुप्रसिद्ध कवि सूरदास से भिन्न हैं। इनकी 'घूंघरा के पद' नामक रचना विवृत हुई है। राधा के पैरों के घूंघर सत्यभाभा को दिखाने के लिए श्रीकृष्ण लाए थे। कवि ने उसी घटना का इन पदों में वर्णन किया है। रचना-काल और लिपिकाल अज्ञात हैं। पदों की भाषा ग्रामीण ढंग की राजस्थानी है। इस दृष्टि से रचयिता राजस्थानी विदित होते हैं। अन्य वृत्त अज्ञात है।"

प्राप्त ग्रंथ के केवल २ पन्ने प्राप्त हैं। ग्रंथ अपूर्ण है। प्राप्त ग्रंथ का श्लोक परिमाण २१ है। प्राप्ति स्थान है—पुस्तक प्रकाश जोधपुर। विवृत अंश यों है।

आदि—

श्री (घूघरा लिखते)

ह हो पीले पाट रेशमी फूंदा, बाजत रिमझम रिमझम जी।
पीले पाट कसूंभी री डोरी, बाजत झु झु झु झु ॥१॥
थारी पाये बाजे गूगरा, सखि मोपे सयो न जाय जी
राधा पाये बाजे घूघरा ॥

हरख करी राधा पाये बांध्या, कोड़ करी राधा पाये बांध्या
देखण रू सतभामा जी, गोकुल चंद ल्यायो नुगरा ॥२॥

अंत—

ह हो। भणत जसोदा सुण मेरा लाला
अस्त्री रो बाद निबेड़ो मेरो लाल।
नारी रो बाद निबेड़ो मेरो लाल,
अरधो करां जी गुगरियाँ।

सूरदास प्रभु बज बज जाय, गोकुलचंद ल्यायो गूगरा।
मोपै सयो न जाय जी, राधा पाये बाजे गूगरा ॥१०॥
—अपूर्ण

नागरी प्रचारिणी पत्रिका वर्ष ६७, अंक ४, सं० २०१९ में केवल मुनि श्री कांतिसागर का एक लेख है—'नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित हस्तलिखित हिंदी ग्रंथों के खोज विवरण'। इसमें निम्नलिखित चार खोज रिपोर्टों की भूलों का परिस्कार एवं अपूर्ण विवरणों के संपूर्णन का किंचित प्रयास किया गया है—

(१) खोजरिपोर्ट   १६२९-३१—१९ संशोधन
(२) खोजरिपोर्ट   १९३२-३४—२३ संशोधन
(३) खोजरिपोर्ट   १६३५-३७— ८ संशोधन
(४) खोजरिपोर्ट   १९४१-४३—२८ संशोधन

ये संशोधनात्मक टिप्पणियाँ महत्व की हैं।

खोजरिपोर्ट १६४१।२६५ वाले सूरदास पर इस लेख में यह टिप्पणी है—

"२९५ सूरदास—सुप्रसिद्ध कृष्णलीला गायक सूरदास से भिन्न। इस कवि के—इसकी भाषा के आधार पर—राजस्थानी होने की संभावना प्रकट की गई है।

मेरे हस्तलिखित संग्रह में सूरदासकृत पारद उजागर नामक रचना सुरक्षित है। इसकी भाषा राजस्थानी गुजराती मिश्रित है। कवि ने कथा द्वारा रहस्यवाद की ओर विद्वानों का ध्यान आकृष्ट किया है। डिंगल के विशिष्ट प्रभाव के कारण ऐसा लगता है कि कवि चारण रहा हो।

'कल्याण राव पाढ गति' के प्रणेता भी एक सूरदास हैं जिनकी रचना मेरे संग्रह में सुरक्षित है। इसमें भी रचनाकाल सूचक कोई उल्लेख नहीं है, पर प्रति का लेखनकाल सं० १७७० है। कल्याणराव कहाँ के थे, यह और उनका समय स्थिर होने पर कवि का काल ज्ञात हो सकता है। यदि बीकानेर नरेश ही कल्याणराव हों, तो रचना का समय १७ वीं शती स्थिर हो जाता है। कल्याणराव कल्याण सिंह का समय सं० १५९८-१६३० तक का है। 'पारद उजागर' और 'कल्याणराव पाढगति' की प्राचीन प्रतियों की प्राप्ति पर ही सूरदास का समय निर्द्धारित किया जा सकता है।

कल्याणराव पाढगति इस प्रकार है—

कल्याणराव पाढगति

मेघारव गुंजे जहाँ गैवर है हिंसत पायक खग कर
सूरदास पंडितवर असगण पाढगति कल्याणराव भण

छंद पाढगति

घ्रण घ्रण घ्रण घ्रण घंटारव छच्छि छिकार करंत करे।
जिहाँ द्रमकि द्रमकि द्रमकि द्रम द्रमकि द्रम बज्जहि फुरउ फुंकार सरे॥
जिहाँ हुग हुग अंकुस मुडहि गुड गहि तागडिकि वज्जहि सहल झलं।
कल्याणराव करवार ग्रहित कर भागडदिनि भ्रणहण द्रइण दलं॥१॥

हरि हरि हरि हरि हरि हुग हुग हुग हुग है हिंसत सकार करे।
जिहांणु कटु कणु कटु कणु कटुकणु कटुक नागइद कि तच्चहिषुषं षुषं खद्दंत षुरे ॥
जिहाँ धि धि धि धि धिधि धिकट धिधिकट चाचं चचपुर चाल चलं।
कल्याणराव करवार ग्रहित कर, भागडदिकि भ्रणहण द्रइण दलं ॥२॥

ध्यावंत सुरध्वनि, स्वर गह मप ध्वनि, त्रणि त्रिणि त्रिणि त्रिणि त्रिणिक नरं।
त्रां त्रां त्रां त्रां उतघट तदघट, पय पय रण पायक्क प्रणं ॥
घण घण घण घण घ्रणणे कि घुण घ्रण पागडदिकि खग्गहि घाव दलं।
कल्याणराव करवार ग्रहित कर, भागडदिकि भ्रणहण द्रइण दलं ॥३॥

डिहु डिहु डिहु डिहु डिहु द्रुम कटि डिहु डिहु णुक णुक णुक सद्दधरं।
जहाँ रां रां रां रां रां रां अरराट अरषट अरबद वरं ॥
थिगडदां थिगडदां थिगड़िदिकि थिगडदां थिथिथि थकार करे।
कल्याणराव करवार ग्रहित कर, भागडदिकि भ्रणहण द्रइण दलं ॥४॥

कलस

झण झण झण झण झण झणांट गुंजत है गै वर
षुषुर्डदि षुषुदकि षुषुदकि षुषदकि षुषदंत कहै
षागडदिकि षागडदिकि षागडदिकि षागडदिकि खर् र् र् र् र्।
हट पिउ घंट कबूतर री बोली मुडइि मुंड गहि व्यत्रय बंसविकवत ॥
तन नर नरिंद समुहड भिडण।

कल्याण राव रण रस चढ़त, नर नरिंद समुहड भिडण ॥५॥

इति श्री कल्याणमल्ल राजा री पाढगति संपूर्णम् ॥

पं० श्री श्री हर्ष सागर जी तच्छिष्य ऋद्धि सागरेण लिपिकृतं शीघ्रं शिणला ग्रामें चेला खुस्यालचंद वाचनार्थं ॥श्रीरस्तु॥'

इसी सूरदास कवि का एक छप्पय सं० १८९२ के गुटके में इस प्रकार प्रतिलिपित है—

कवित्त छप्पय

जब विलंब नहि कियो, जबै हरणाकुश मारयो।
जब विलंब नहि कियो, केस गह कंस पछाडयो।

जब विलंब नहि कियो, सीस दस रावण कट्टे ।
जब विलंब नहि कियो असुर दल दलहि झपट्टे ।।
सूरदास विनती करे, सुन सुन हो रुषमण रवण ।
काट फंद मोह अघ केसो, अब विलंब कारण कवण ।।

इस गुटके में सूरदास की और भी डिंगल एवं पिंगल की कई रचनाओं के साथ सिरोमणि, अखमाल, काशीराम, गोविंद, कृष्णदास नन्ददास जान, खेमताज, हंस, आनंद, रघुराम, गंग आदि कवियों की ग्रन्थात्मक और स्फुट कृतियाँ सुरक्षित हैं। विशेषकर इतिहास से संबद्ध नूतन तथ्यों का तथा दिल्ली की राजावलियों का सुन्दर संकलन है। ब्रज और राजस्थानी भाषा की अज्ञात सामग्री पर्याप्त है।''

—नागिरी प्रचारिणी पत्रिका सं० २०१६, अंक ४पृष्ठ ३७५-७७

सभा की खोज रिपोर्ट १९४१-४३ में संख्या ३९५ पर विवृत 'घूंघरा के पद' और इस पर मुनिकांति सागर जी की इस टिप्पणी से यह निष्कर्ष नकलता है—

राजस्थानी या डिंगल भाषा में रचना करने वाला एक और सूरदास हुआ है, यह प्रसिद्ध कृष्ण-लीला पद गायक सूरदास से निश्चित रूप से भिन्न है। इसके तीन लघु ग्रंथ अभी तक मिल चुके हैं—१. घूंघरा के पद, २. पारद उजागर, ३, कल्याण राव पाढ गति। इसमें से तीसरा ग्रंथ ऐतिहासिक महत्व का है। यह कल्याण राव बीकानेर नरेश थे। इनका शासनकाल सं० १५९८-१६३० वि० है। यही इस कवि का रचनाकाल है। यह कवि पश्चिमी राजस्थान का है। इसकी भाषा राजस्थानी है, जिस पर गुजराती का भी किंचित प्रभाव है। संभवतः यह चारण है। पाढगति छंद का नाम है।

उद्धृत छप्पय 'जब विलंब नहि कियो………' सभा के सूरसागर में है—देखिए पद १७७।

३. सूरदास मदनमोहन

गान काव्य गुन रासि, सुहृद सहचरि अवतारी
राधाकृष्ण उपास, रहसि-सुख को अधिकारी
नव रस मुख्य सिंगार, विविध भाँतिन करि गायो
बदन उचारत बेर सहस, पायनि ह्वै धायो
अंगीकार की अवधि यह, ज्यों आख्या भ्राता जमल
मदनमोहन सूरदास की, नाम शृंखला जुरि अटल

—भक्तमाल, छप्पय १२६

प्रियादास ने इस छप्पय की टीका में ५ कवित्त लिखे हैं (४९८-५०२)।

सूरदास नाम था। मदनमोहन इनके उपास्य ठाकुर जी का नाम था। इनकी रचनाओं में दोनों को जोड़कर सूरदास मनदमोहन छाप है। इनका नाम ही सूरदास था, वस्तुतः यह अभिराम कमल-नयन थे। यह अकबर बादशाह की ओर से संडीला जिला हरदोई में अमीन ये। एक बार इन्होंने वसूली के सारे रुपये साधुओं को खिला दिए और स्वयं वृन्दावन आकर चैतन्य संप्रदाय के साधु हो गए। यह जाति के सूरध्वज ब्राह्मण थे। इनका देहावसान वृंदाबन में ही हुआ, जहाँ इनकी समाधि जब भी है। इनका समय सं० १५७०-१६४० के लगभग है।

श्री प्रभुदयाल जी मीतल ने 'सूरदास मदनमोहन : जीवनी और पदावली' सं० २०१५ नामक एक अच्छी पोथी प्रस्तुत की है। इसमें खोज-ढूंढ़कर इनके १८५ पद संकलित किए गए हैं।

मीतल जी जिस समय उक्त ग्रंथ प्रस्तुत कर रहे थे, उस समय उन्होंने सूर सागर (सभा संस्करण) की पूरी छानबीन भी की और इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि उसमें कम से कम निम्नांकित १६ पद सूरदास मदनमोहन के हैं—

प्रतीक	सभा सूरसागर में पदांक
१. अरुझी कुंडल लट बेसर सौं—	१८६७
२. आधौ मुख नीलांबर सों ढांकि, विथुरी अलकैं सोहें—	२८०६
३. गुरजन मैं डटि बैठी स्यामा, स्याम मनावत जाहीं—	परि २/२६१
४. चटकीलो पट लपटानो कटि पर—	२०१९
५. नंदनंदन सुघराई बाँसुरी बजाई	१७६९
६ पिय संग खेलत अधिक भयौ श्रम—	१७७०
७. पाछैं ललिता आगे स्यामा आगैं पिय फूल बिछावत जात	३२३४
८. बड़े बड़े बार जु एझिनि परसत—	३२३५
९. बरन बरन बादर मन हरन उदै करन	२८९५
१०. ब्रज की खोरहिं ठाढ़ौ साँवरो—	२५३६
११. बांहि जोरि प्रात कुंज तें निकसे	२७९६
१२. मया करिऐ कृपाल प्रतिपाल—	८७०
१३. मोहनलाल के संग ललना यों सोहै—	१७६८
१४. लाल अनमने कतहिं होत हौ—	३३७८

१५. सखियन के संग कुँवरि राधिका, बीनति कुसुमनि कलिया— ३२३८

१६. सीतल छहियाँ स्याम हैं बैठे— १०६८

ये पद कांकरौली विद्या विभाग में सुरक्षित सूरदास मदनमोहन के प्राचीन संकलन में हैं। सूरसागर के इन पदो में नाम-छाप में तो परिवर्तन है ही, पाठ-भेद भी बहुत है।

सूर ग्रंथावली में आचार्य पं० सीताराम जी चतुर्वेदी ने बहुत से नवीन पद संकलित कर दिए हैं। इनमें बहुत से पद सूरदास मदनमोहन के भी हैं। जिन पदों में सूरदास मनमोहन छाप है, वे भी सूरदास मदनमोहन के ही हैं, ऐसा समझ जा सकता है। ऐसे १९ पदों की सूची आगे दी जा रही है। इनमें से ७ डा० प्रभुदयाल मीतल संकलित सूरदास मदनमोहन जीवनी और पदावली में भी संकलित हैं। इनके पदांक पदों के आगे दे दिए गए हैं।

प्रतीक	सूरदास ग्रंथावली में पदांक	'सूरदास मदनमोहन' में पद-संख्या
१. आली री पीरी पह भई है	५००३	×
२. उत्तर मैं कहिहौं कहा जाय	५५५१	१२६
३. एरी माई सिथिल मेखला बाँधति ही मैं	५५७२	×
४. खेलत मोहन रंग भरे हो, सुन्दर सब सुखरासि	५८११	×
५. खेलत हैं हरि हो हो होरी	५६३६	१६५
६. चलि री मुरली बजाई कान्ह जमुन तीर,	४९६४	१४४
७. छगन मगन ललन लाल कीजिए कलेवा	५५१४	१०
८. जान्यों जान्यो री सयन तेरो प्रानेस्वर सौं	५०३६	×
९. झूलत फून हिंडोरैं प्यारी	५८३५क	१६६
१०. दंपति अति रति रसाल वर हिंडोर झूलैं री	५८४२	×
११. नवल नागरी सब गुन आगरी	५७०२	×
१२. प्राननाथ प्रात भयो जागो बलि जाऊँ	५४०३	×
१३. फूल्यो री वन सघन, कोकिला करति तहाँ है गान	५५२०	१०८
१४. राधा जू को ललिता मनाए लिए आवत	५५८२	१४३
१५. राधे जू देखिए बन सोभा	५८४०	×
१६. लखी सुता वृषभानु की	५७०१	×
१७. सुन्दर सुख-सदन मधु हिंडोरना सुहाए	५८४३	×

१८. सुनो स्याम इक बात नई ५७३ ×

१९. होरी के जु खिलार भावते यों हौं जान न दैहौं--- ५०५१ ×

(४) नलदमन के सूरदास लखनवी

सबसे पहले भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने 'नल दमन' के सूरदास की रचना होने का उल्लेख 'सूरदास' नामक लेख में किया, जो पहले कवि बचन सुधा जिल्द २ प्राचीन पुस्तकावली में और हरिश्चन्द्र चन्द्रिका खंड ६ संख्या ५, नवम्बर सन् १८७८ ई० में छपा। अब यह लेख 'चरितावली' के अंतर्गत भारतेन्दु ग्रंथावली भाग ३ में पृष्ठ ७१-७७ पर संकलित है।

भारतेन्दु के अनुसार जब सूरदास गऊ घाट पर रहते थे, उन्हीं दिनों उन्होंने नल दमन की रचना की थी—

"उन्हीं दिनों में इनने महाराज नल और दमयंती के प्रेम की कथा में एक पुस्तक बनाई थी, जो अब नहीं मिलती"

तासी ने भारतेन्दु के इस लेख का उल्लेख अपने हिंदुई साहित्य का इतिहास में किया है। उसके अनुसार यह लेख कवि बचन सुधा के अंक ६ में प्रकाशित हुआ था। तासी ने सूर के विवरण में इस से अच्छी सहायता ली है। वह 'नल दमन' के सम्बन्ध में बड़ी मजेदार सूचनाएँ देता है।

"अंत में 'नल दमयंती' या 'भाखा नल दमन' या संक्षेप में 'किस्मा-इ-नल दमन' अर्थात् 'नल और दमन', संस्कृत में नल और दमयंती कहे जानेवाले, भारत के प्रसिद्ध चरित्रों की कथा शीर्षक, दस पंक्तियों के छन्द में एक बड़ा महाकाव्य, यदि उसे इस नाम से पुकारा जा सकता है, सूरदासमृत बताया जाता है। इसकी हस्तलिखित प्रतियाँ दुर्लभ हैं क्योंकि 'कवि वचन सुधा' में उसकी किसी प्रति का पता बताने वाले को सौ रुपये का पुरस्कार घोषित किया गया है। अकबर के मंत्री अबुलफजल के भाई, फैजी ने इसी पाठ से ती अपनी फारसी कथा का अनुवाद नहीं किया, जो उसी विषय से सम्बन्धित है ? क्योंकि 'आईने अकबरी' में उसे हिंदुई से अनूदित रचना कहा गया है। ईस्ट इंडिया हाउस के पुस्तकालय में किस्सा-इ-नल ओ दमन' शीर्षक नल और दमन की एक और कथा है, जिसे संस्कृत से अनूदित कहा गया है, वह तीन सौ पृष्ठों की चौपेजी जिल्द है (सं० ४३३, फ्रौंद लीडेन Fonds Leyden)।

—हिंदुई साहित्य का इतिहास, पृ० ३२३

पाद टिप्पणी में तासी ने इसकी एक प्रति के अपने पुस्तकालय में होने का यों उल्लेख किया है—

"मेरे निजी संग्रह में, इस रचना की एक सुन्दर प्रति है, सूरदास की रचनाओं की भाँति फारसी अक्षरों में, वह दिल्ली में तैयार हुई थी, १७५२—१७५३ में, अहमदशाह के शासनान्तर्गत।"

तभी से ग्रियर्सन, राधाकृष्णदास, मिश्रबंधु आदि बराबर इसका उल्लेख करते आए हैं। सरोज में इसकी चर्चा नहीं है।

नागरी प्रचारिणी पत्रिका, संवत् १९९५ भाग १९ वर्ष ४३, अंक २ में प्रिंस आफ वेल्स म्यूजियम बंबई के निदेशक डा० मोतीचंद ने 'कवि सूरदास कृत नल दमन काव्य' शीर्षक लेख प्रकाशित कराया। इसके अनुसार इस ग्रंथ का फारसी लिपि में लिखा एक हस्तलेख है। इस लेख से स्पष्ट हो गया कि यह महाकवि सूर की रचना नहीं है, सं० १७१४ में लिखित सूरदास लखनवी की कृति है। इस लेख के आधार पर डा० दीनदयालु गुप्त ने 'अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय' में नलदमन को स्पष्ट रूप से महाकवि सूर की रचना होने से अस्वीकार कर दिया है।

१९६१ ई० में क० मुं० हिंदी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ आगरा विश्वविद्यालय आगरा ने इस ग्रंथ को प्रकाशित कर दिया है। इसका संपादन डा० वासुदेव शरण अग्रवाल और श्री दौलत राम जुयाल ने किया है। संपादन दो प्रतियों के आधार पर हुआ है। पहली प्रति प्रिंस आफ़ वेल्स म्यूज़ियम की फारसी लिपि वाली प्रति का नागरी लिप्यंतर है। यह लिप्यंतर १९४१—४३ ई० की त्रिवर्षी में किसी समय किया गया था। सभा की खोज रिपोर्ट १९४१ में पृष्ठ २ पर इसका उल्लेख हुआ है। दूसरी प्रति मुनि कांतिसागर जी की थी, जो मूलतः नागरी लिपि में थी।

नलदमन के रचयिता ने ग्रंथ में अपना यह परिचय दिया है—

सूरदास निज नाँउ बताऊँ। गोरधनदास पिता कर नाऊँ।
कंबू गोत्र माछिलै तासू। कलानूर पुरखन कर बासू॥
तात हमार तहाँ सों आवा। पूरब दिसा कोऊ दिन छावा॥
नगर लखनऊ बड़ा सो थानू। रुचिर ठौर बैकुंठ समानू॥
मेरौ जनम यहै ठां भयऊ। कलानूर कबहूँ नहिं गयऊ॥
जद्यपि हौं अबहूँ परदेसा। पै नित प्रति सुमिरौं सो देसा॥

जैसे पंथी बसै सराई। महूँ विदेस रहौं तिन्ह नाइं ॥
आदि ठौर बिसरा मैं नाहीं। सोई सदा रहै मन माहीं ॥
सुमिरन करौं नाम हर स्वासा। मकु जो विधि पुरवै सो आसा ॥

बिन निज दया दयाल के, देस न पहुँचा जाय।
जब लग सोई बांह गहि, लेइ न देइ पहुंचाय ॥२४॥

इसके अनुसार कवि का नाम सूरदास था, पिता का नाम गोवरधनदास था। यह कंबू गोत्र के खत्री थे। इनके पूर्वजों का घर पंजाब में कलानूर नामक स्थान पर था। वहाँ से इनके पिता लखनऊ आ गए। यहीं लखनऊ में कवि का जन्म हुआ। उसने कलानूर कभी नहीं देखा, पर उसे देखने के लिए बराबर तरसता रहा।

कवि ने अपनी गुरु परंपरा भी दी है।

अर्चित पुरुष—रंग विहारी—श्यामदयाल—सूरदास।

दादा गुरु रंग विहारी लाहौर के कक्कड़ खत्री थे। गुरु श्यामदयाल भटनागर कायस्थ थे। श्यामदयाल जी लखनऊ के ही आस-पास के रहने वाले रहे होंगे।

सूरदास ने 'नलदमन' की रचना शाहजहाँ बादशाह के राज्यकाल (सं० १६८५—१७१५ वि०) में सं० १७१४ वि० (१०६७ हिजरी) में की थी—

एक सहस सतसठ सन अहा। संवत सतरह सौ चौदहा ॥
कै अरंभ तब कथा बखानी। कीन्हीं प्रगट प्रेम निधि बानी ॥

कवि ने अपनी भाषा को पूरबी कहा है—

तिह कारन यह प्रेम कहानी। पूरब दी भाषा बिच आनी।

नलदमन में नौ-नौ चौपाइयों (अर्द्धालियों) के बाद एक-एक दोहों के कुल ३६८ कड़वक हैं। यह एक श्रेष्ठ काव्य है—

१. अविगत गति करतार की, कछू लखी न जाय
छिन मैं छूछैं भर धरै, भरे देइ ढरकाय

२. अस्तुति निंदा, पत अपत, सबै काल पर होइ
उवत सूर प्रथमी नवै, अथवत नवै न कोइ २५५

३. बनी मिठाई बहु बरन, आवत स्वाद सुवास
जो निज देखौ सबन मैं, एकै ऊख मिठास २०८

सूर स्वामी : सं० १९००

सूर निर्गुनिया संत थे। इनका एक ग्रंथ झूलना नामक सभा की खोज रिपोर्ट सं० २००७।१९८ में विवृत है। प्राप्ति स्थान है–गिरधारी साहब की समाधि, नौबस्ता लखनऊ। यह ३ पन्ने का लघु ग्रंथ है। इसमें चार-चार चरणों के कुल ९ झूलना हैं, जिनमें से १, २, ५, ६, ९ खोज रिपोर्ट में अवतरित हैं। पांचों के चतुर्थ चरण में इन्होंने अपने गुरु के रूप में तुलसी का नाम लिया है। यह तुलसी हाथरस वाले, प्रसिद्ध घट रामायण के रचयिता तुलसी साहब हैं, जो साहब पंथ या आपा पंथ के प्रवर्तक हैं और जिनका समय सं० १८२५-१९०० वि० है। उत्तरी भारत की संत परंपरा में इन सूर को तुलसी साहब का प्रसिद्ध शिष्य कहा गया है और यह गुरु शिष्य परंपरा दी गई है—
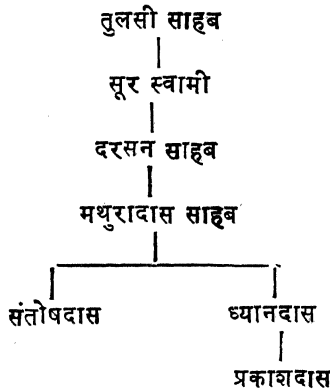
तुलसी साहब का मृत्यु-समय सं० १९०० जेठ सुदी २ है। सूर स्वामी का यह रचनाकाल माना जा सकता है।

सूरस्वामी की एक मात्र प्राप्त रचना 'झूलना' है। ग्रंथ स्वामी स्वयं आपा पंथी साधु हैं और उन्होंने भी स्वीकार किया है कि सूर स्वामी हाथरस वाले तुलसी साहब के शिष्य थे। इनकी रचना के सूरसागर में घालमेल होने की कोई संभावना नहीं।

झूलना

यारौ ऐसी बात को कीजै नित, जिस बात से साहेब पाइयाँ जी
उचाई निचाई को दूर धरौ, करि गम्म छिमा को लाइया जी

मोहब्बत महबूब से कीजै ऐसी, सनमुख सदा दरसाइया जी
'सूर' लीन चरन 'तुलसी' गुर के, जिन धुर की खबर जनाइया जी १

× × ×

लीजै दिल में समझि सुखन सबी, पहिचान गुरन से कीजिये जी
उनको नाम गरीब नेवाज कहै, सोई जानि गरीब बोलिये जी
करना चाहै मिलाप तो कीजै ऐसी, धर से सीस उतारिके दीजिये जी
'सूर' मेहर करै 'तुलसी' गुर जब, साहेब के रंग में भीजिए जी २

× × ×

उस देस का नाम अमरपुर है, जहाँ का गए, नहीं आवता है
कोइ कोटि उपायै जतन करै, गुर मेहर बिन भेद न पावता है
उस देस के मेहरमी संत ही हैं, उहाँ उनही का सब जाबता है जी
'सूरदास' बंदा 'तुलसी' गुर का, सोइ नाम की सिफत सुनावता है जी ५

× × ×

उस देस मेहरमी होइ कोई जो, तासे कहिए सँदेस है जी
कीजै बाद बिबाद किसी से नहीं, लीजै नाम धनी को हमेस है जी
कोई दरद दिल होइ उस वक्त ही को, ताको कीजै उपदेस है जी
'सूर' रखना ध्यान 'तुलसी' गुर को, बिन मेटे भर्म अँदेस है जी ६

× × ×

अधर में मेहर की लहर न्यारी उठी, अज एक खेल अपार छाई
अधर से सबद और सुरति मन बुद्धि भई, अधर में आपगम सुद्धि पाई
अधर मक्कान गुर अधर अस्थान है, अधर सामान कोइ और नाहीं
अधर के मेहरमी तुलसी गुर मिलि गए, 'सूर' भरपूर जब समझ आई ९

—खोज रि० सं० २००७/१९८

(६) एक और सूर

(१)

साहित्य लहरी के रचनाकाल सूचक पद के अंतिम दो चरण हैं—

त्रितिय रिच्छ, सुकर्म जोग, विचारि, 'सूर नवीन'
नंदनंदनदास-हित, 'साहित्य लहरी' कीन

इसका अर्थ है—तीसरा नक्षत्र कृत्तिका और सुकर्म जोग का विचार करके 'सूर नवीन' ने नंदनंदनदास (कृष्ण-भक्तों) के लिए साहित्य लहरी की रचना की।

'विचारि' पूर्वकालिक क्रिया है। यह 'विचार' नहीं है, संज्ञा नहीं है। 'नवीन' सूर का विशेषण है, न कि 'विचारि' या 'विचार' का। प्रवीन सूर हैं, न कि विचार या विचारि।

यह 'नवीन' एक नए सूर की स्थापना करता है, जो प्रसिद्ध प्राचीन महाकवि सूर से भिन्न हैं और उत्तरकालीन हैं। इस नवीन की ओर प्राचीनों की दृष्टि क्यों नहीं गई ? यह आश्चर्यजनक है। अब जब प्रभुदयाल जी मीतल की दृष्टि गई भी, तो वह विचार-भ्रांत हो गई। उन्होंने नवीन को सूर से हटाकर, विचारि या विचार से सटा दिया।

एक बार मैं आचार्य पंडित विश्वनाथ प्रसाद जी मिश्र के स्वाध्याय-कक्ष में बैठा हुआ था। बात साहित्य लहरी पर चली। उन्होंने मेरा ध्यान इस 'नवीन' पर आकृष्ट किया था और कहा था कि साहित्य लहरी बहुत बाद की रचना है। इसका रचयिता कोई सूर नवीन है।

(२)

'सूर सौरभ' कला १ किरण २ (माघ २०३६) में 'सेवाफल का रचयिता' शीर्षक उदयशंकर शास्त्री का एक लेख है। इसमें वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि

(१) "यह रचना गुसाइँ विट्ठल नाथ जी के बाद किसी अन्य सूरदास की है। परंपरा से सुनने में आया है कि गुसाइँ विट्ठलनाथ जी ने भी किसी नेत्रहीन व्यक्ति को दीक्षा दी थी।"

परंपरागत बातों में कुछ तथ्य अवश्य होता है। गोसाई विट्ठलनाथ ने नहीं, उनके चतुर्थ पुत्र गोसाई गोकुलनाथ 'वल्लभ' ने इस नेत्रहीन व्यक्ति को सं० १६६७ में दीक्षा दी थी। इसी दूसरे सूर ने साहित्य लहरी, सूर सारावली, सेवा फल आदि की रचना की।

(२) शास्त्रीजी ने उक्त लेख में 'सेवा स्वरूपन की वार्ता' के हस्तलेख की एक प्रतिच्छवि दी है, जिसका एक अंश है—

> "श्री स्याम मनोहर जी, श्रीमहाप्रभू जी सेव्य, सो बड़े सूरदास के ठाकुर जी ।। जो जिनने सूरसागर ग्रन्थ कीयो है ।। २२ ।।"

सूरसागर के रचयिता सूरदास जो की बड़े सूरदास की संज्ञा दी गई है। स्पष्ट है कि कोई छोटा सूरदास भी हुआ है।

१८८९ ई० में ग्रियर्सन द्वारा संपादित 'रामचरित मानस' का संस्करण खड्ग विलास प्रेस बाँकीपुर पटना से छपा। इसकी भूमिका में ग्रियर्सन ने खेद प्रकट किया है कि बेनीमाधवदास कृत गोसाइँ चरित सुलभ नहीं हो सका, नहीं तो गोसाइँ जी की जीवन-चरित सम्बन्धी समस्त गुत्थियाँ सुलझ जातीं। ग्रियर्सन की इस बात से प्रेरणा प्राप्त कर १९०० ई० के लगभग अयोध्या के दो साधुओं विंदु ब्रह्मचारी एवं विनायक ने 'मूल गोसाइँ चरित' का जाल रचा। इस ग्रंथ में गोसाइँ तुलसीदास के सम्बन्ध में परंपरा से सुनी बातों का समावेश हुआ है। इसमें सूर और तुलसी के मिलन प्रसंग की यह कथा दी हुई है—

सोरह सै सोरह लगे, कामद गिरि ढिग वास
सुनि एकांत प्रदेस महँ, आए सूर सुदास २९
पठए गोकुलनाथ जी, कृष्ण रंग में बोरि
दृग फेरत चित चातुरी, लीन्ह गोसाइँ छोरि ३०

कवि सूर दिखायउ सागर को, सुचि-प्रेम-कथा नटनागर को।
पद द्वय पुनि गाय सुनाय रहे, पद पंकज में सिर नाय कहे।
अस आसिष देइय स्याम ढरैं, यह कीरति मोरि दिगंत चरैं।
सुनि कोमल बैन सु दादि दिए, पद-पोथि उठाय लगाए हिये।
कहे स्याम सदा रस चाखत हैं, रुचि सेवक की हरि राखत हैं।
तनिकौ नहिँ संसय है यहि माँ, स्त्रुति ऐस बखानत हैं महिमा।
दिन सात रहे सतसंग पगे, पद-कंज गहे, जब जान लगे।
गहि बाँह गोसाँइ प्रबोध किये, पुनि गोकुलनाथ को पत्र दिये।

इस वर्णन के सूर को यदि महाकवि सूर मान लिया जाय, तो निम्नांकित विसंगतियाँ उत्पन्न हो जाती हैं—

(१) सं० १६१६ में गोसाइँ तुलसीदास की कोई महत्ता नहीं थी। उनकी महिमा तो सं० १६३३ में रामचरित मानस की रचना पूर्ण हो जाने के अनंतर बढ़ी। अतः सं० १६१६ अशुद्ध है।

(२) महाकवि सूर (सं० १५३५-१६४०) गोसाइँ तुलसीदास (सं० १५८९-१६८०) से ५४ वर्ष बड़े थे। वे ८१ वर्ष की वय में ३७ वर्ष के अप्रसिद्ध तुलसी से मिलने चित्रकूट नहीं आ सकते।

(३) गोसाइँ गोकुलनाथ (१६०८-१६९७) उस समय केवल ८ वर्ष के बालक थे। वे ८१ वर्ष के सूर को किस प्रकार तुलसी से मिलने चित्रकूट भेज सकते थे। यह कार्य करना होता, तो इनके पिता श्री गोसाइँ विट्ठलनाथ कर सकते थे। पर ये भी अप्रसिद्ध तुलसी से मिलने सुप्रसिद्ध सूर को क्यों भेजते।

(४) महाकवि सूर का तुलसी को सूरसागर दिखाना, दो पद गाकर सुनाना, तुलसी के पैर पर सिर रखकर सूरसागर के माध्यम से अपनी कीर्ति को दिग-दिगंत में प्रसरित होने का आशीर्वाद माँगना, सभी कुछ उपहासास्पद है।

इस कथा पर सूर नवीन की दृष्टि से विचार किया जाय, तो केवल संवत की विसंगति बनी रहती है। शेष सभी का समाधान हो जाता है। गोकुलनाथ जी ने अपने शिष्य सूर नवीन को गो० तुलसीदास से मिलने भेजा था। सूर नवीन सं० १६६७ में गोकुलनाथ वल्लभ के शिष्य हुए थे। उसी दिन से उन्होंने हरि लीला के पद गाने शुरू किए थे। जो स्कंधात्मक सूरसागर में सन्निविष्ट हैं। इसी अपूर्ण स्कंधात्मक सूरसागर को लेकर वे १६६७ और १६८० के बीच किसी समय तुलसी से मिले होंगे। यह मिलन-स्थल चित्रकूट भी हो सकता है, काशी भी।

इस दृष्टि से विचार करने पर सूर नवीन और उनका स्कंधात्मक सूरसागर प्रकाश में आ जाते हैं।

३. सूर के ग्रन्थों की प्रवर्द्धमान सूचियाँ

(१) सूर के प्रथम अध्येता भारतेन्दु हरिश्चन्द्र हैं। इन्होंने १८६९ ई० (सं० १९२६ वि०) में सूरदास का जीवन चरित लिखकर कविवचन सुधा में छपवाया। इस जीवनी में उन्होंने सूर के निम्नांकित ग्रन्थों का उल्लेख किया है—

१. नल और दमयंती के प्रेम की कथा

२. सूरसागर

३. सूरदास जी के दृष्टिकूट

(२) तासी ने भारतेन्दु के लेख के आधार पर अपने ग्रन्थ 'हिंदुई और हिन्दुस्तानी साहित्य का इतिहास' में सूरदास का विवरण १८७१ ई० में दिया। इसमें सूर के निम्नांकित ग्रंथों का विवरण है—

१. सूरसागर या बाल लीला

२. सूर शतक पूर्वार्ध—गिरिधर की टीका सहित १८६४ ई० में लखनऊ से कालीचरन द्वारा प्रकाशित।

३. रास लीला —बार्ड द्वारा उल्लिखित, बुंदेली बोली।

४. रिसाला-इ-राग —रायल एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल, कलकत्ता में सूची-बद्ध।

५. सूरदास कवित्त—बार्ड द्वारा उल्लिखित, जैपुरी बोली।

६. भाखा नल दमन

७. सूर रत्न—रघुनाथ दास द्वारा संकलित। बनारस से १८६४ ई० में प्रकाशित, २७४ अठपेजी पृष्ठ।

८. बारामासा—आगरा से प्रकाशित, १२ पृष्ठ।

(३) शिव सिंह सरोज (१८७८ ई०) में सूरदास के एक ही ग्रंथ सूरसागर का उल्लेख है। सरोजकार ने इनके ६०००० तक पद देखने का उल्लेख किया है। मेरी समझ से एक शून्य प्रमाद-वश बढ़ गया है।

(४) ग्रियर्सन ने 'द माडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर आफ हिन्दुस्तान' (१८८८ ई०) में सूर के निम्नांकित ग्रन्थों का उल्लेख किया है।

१. सूरदास के दृष्टिकूट

२. नल दमयंती की कथा

३. सूरसागर

(५) राधाकृष्णदास ने बम्बई वाले सूरसागर (सं० १९५३, १८९६ ई०) का संपादन किया था। इसके प्रारम्भ में सूरदास का जीवन चरित भी संलग्न है। बाद में इन्होंने 'सूरदास' शीर्षक एक जीवनीपरक विस्तृत लेख लिखा, जो नागरी प्रचारिणी पत्रिका भाग ४ सं० १९५७ में प्रकाशित हुआ और अब राधाकृष्णदास ग्रंथावली में संकलित है। इसमें चार ग्रंथों का उल्लेख है—

१. साहित्य लहरी
२. सूरसागर } उपलब्ध
३. सूरसागर सारावली
४. नल दमयंती—अनुपलब्ध

(६) मिश्रबंधुओं ने हिन्दी नवरत्न (१९०९ ई०) में सूरदास के निम्नांकित ५ ग्रंथों का उल्लेख किया है—

१. सूरसागर, २. सूरसारावली, ३. साहित्य लहरी (दृष्टकूट), ४. नल दमयंती, ५. ब्याहलो।

ब्याहलो का उल्लेख १९०६ ई० की खोज रिपोर्ट के आधार पर हुआ है। हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज का काम नागरी प्रचारिणी सभा काशी ने १९०० ई० में प्रारम्भ कराया था। इसकी खोज रिपोर्टों में सूर के नाम पर अनेक-अनेक ग्रंथ विवृत हैं, जो अधिकांशतः सूरसागर के अंश हैं। मिश्रबंधु विनोद (१९१३ ई०) में सूर के ग्रंथों की संख्या खोज रिपोर्टों के आधार पर बढ़ती गई है। इसके प्रथम भाग के प्रथम संस्करण में सूर के नाम पर ऊपर वर्णित पाँचों ग्रंथों के अतिरिक्त निम्नांकित ग्रंथ और चढ़े हुए हैं—

६ हरिवंश टीका, ७ पद संग्रह, ८ दशमस्कंध, ९ नागलीला,

इस सूची के प्रस्तुतीकरण में बाद के संस्करणों में और भी विस्तार हुआ है और निम्नांकित ३ ग्रंथ बढ़ गए हैं—

१० प्राणप्यारी, ११ भागवत, १२ सूर पचीसी।

(७) आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल ने अपने सुप्रसिद्ध इतिहास (१९२९ ई०, १९४० ई०) में सूर के केवल तीन ग्रंथों का उल्लेख किया है—१ सूरसागर २. साहित्य लहरी, ३. सूरसारावली,

(८) डा० रामकुमार वर्मा ने अपने 'हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास (१९३८ ई०) में सूरदास के कुल १६ ग्रन्थों का नामोल्लेख किया है—

(क) १. सूरसागर— पूर्णप्रामाणिक

(ख) २. गोवर्धन लीला बड़ी

३. दशमस्कंध टीका

४. नागलीला

५. पद संग्रह

६. प्राणप्यारी

७. ब्याहलो

८. भागवत

९. सूर पचीसी

१०. सूरदास जी का पद

११. सूरसागर सार

(ग) सूरदास के नाम से प्राप्त दो ग्रंथ

१२. एकादशी माहात्म्य

१३. राम जन्म

(घ) तीन और ग्रंथ

१४. सूर सारावली

१५. साहित्य लहरी

१६. नल दमयंती

इन सोलह ग्रन्थों में से सूरसागर ही पूर्ण प्रामाणिक है। अन्य ग्रन्थ सूरसागर के ही अंश हैं या सूरसागर की कथा वस्तु के रूपांतर। कुछ ग्रन्थ तो अप्रामाणिक भी होंगे। इन ग्रन्थों के परीक्षण की आवश्यकता है।

(६) डा० दीनदयालु गुप्त पहले व्यक्ति हैं, जिन्होंने सूर के ग्रन्थों की बढ़ती हुई सूची पर अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय (१९४७ ई०) में विचार किया और छानबीन कर अपने निर्णय दिए। विचाराधीन ग्रंथों की कुल संख्या २४ है। गुप्त जी ने इन्हें यों वर्गीकृत किया है—

(क) अष्टछापी सूर के प्रामाणिक तथा मुख्य ग्रंथ—

१. सूरसागर, २ सूर सारावली, ३ साहित्य लहरी

(ख) सूरसागर के अंश—अतः प्रामाणिक ग्रन्थ—

१. भागवत भाषा २. दशमस्कंध भाषा ३. सूरदास के पद
४. नागलीला ५. गोवर्द्धन लीला ६. सूर पचीसी
७. ब्याहलो ८. भँवरगीत ९. सूर रामायण
१०. दान लीला ११. सूर साठी १२. मान लीला
१३. राधा रस केलि कौतूहल अथवा मानसागर १४ सेवा फल
१५. सूर शतक १६. सूरसागर सार

(ग) अष्टछापी सूर की संदिग्ध रचना

१. प्राण प्यारी

(घ) सूर की अप्रामाणिक रचनाएं

१. नल दमयंती, २ हरिवंश टीका, ३ राम जन्म, ४ एकादशी माहात्म्य

(१०) डा० ब्रजेश्वर वर्मा ने अपने शोध प्रबंध 'सूरदास' (१९४६ ई०) में पहले तो सभा की खोज रिपोर्टों के आधार पर निम्नांकित ११ ग्रंथों की सूची प्रस्तुत की है—

खोज रि० १६००

१. सूरदास जी के दृष्टिकूट (सटीक)—असंपूर्ण

खोज रि० १६०२

२. सूरदास जी का पद

खोज रि० १६०६-८

३. व्याहलो—विवाह सम्बन्धी २३ पदच

४. पद संग्रह सामान्य धर्मोपदेश सम्बन्धी ४१७ पदच

५. दशम स्कंध—भागवत के दशम स्कंध की कथा के १९१३ पदच

६. नाग लीला—कालिय-दमन की कथा के ४० पदच

खोज रि० १९०६-११

७. सूरसागर—रामकथा और राम भक्ति सम्बन्धी ३७० पद

खोज रि० १६१२-१६

८. भागवत -- दशमस्कंध के अतिरिक्त भागवत के शेष ११ स्कंधों की कथा के ११२६ पदच

६. सूर पचीसी—प्रेम की महत्ता के सूचक २५ दोहे

खोज रि० १६१७-१६

१०. गोवधंन लीला बड़ी—गोवर्धनधारण संबंधी २०० पद्य।

११. प्राण प्यारा—राधा कृष्ण विवाह संबंधी ३२ पद्य।

इनके अतिरिक्त १९१७-१९ की खोज रिपोर्ट के अनुसार दो और ग्रंथों का उल्लेख किया गया है—

१२. राम जन्म।

१३. एकादशी महात्म्य।

इनके अतिरिक्त ३ ग्रंथ और कहे जाते हैं।

१४. साहित्य लहरी।

१५. सूरसागर सारावली।

१६. नलदमन या नलदमयंती।

इन समस्त ग्रंथों के अवलोकन से यह विदित होता है कि इनमें से कुछ तो सूरदास के नहीं हैं और कुछ सूरसागर ही के अंश हैं, जो स्वतन्त्र ग्रंथ के रूप में उसी में से निकाल लिए गए हैं। अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय का हवाला देते हुए डॉ० वर्मा लिखते हैं कि सूरसागर, सूरसागर सारावली, साहित्य लहरी ये तीन ग्रंथ ही सूरदास द्वारा रचित माने जाते हैं। डॉ० वर्मा ने इन्हीं तीन ग्रंथों पर अत्यंत विस्तार से विचार किया है और इनका निष्कर्ष है कि केवल सूरसागर महाकवि सूरदास की रचना है। सूर सागर सारावली और साहित्य लहरी इनकी रचना न होकर किसी दूसरे की रचना हैं।

(११) सूर सर्वस्व (१९८२ ई०) में डॉ० प्रभुदयाल मीतल ने सूर के ६२ ग्रंथों की तालिका दी है, फिर उन्हें वर्गीकृत किया है, तदनंतर एक-एक पर अलग-अलग विचार किया है। उनके वर्गीकरण के अनुसार ग्रंथों की सूची यों है—

(क) सूर की परम प्रामाणिक रचनाएँ—चार—

१ सूरसागर, २ विनय पदावली (दीनता आश्रय के पद),

३. सूर सारावली, ४. साहित्य लहरी

(ख) सूर के प्रामाणिक ग्रंथ जिनकी प्रामाणिकता का पुनर्परीक्षण आवश्यक है—चार—,

५. सेवा फल, ६. सहस्र नामावली, ७, सूर पचीसी, ८. सूर साठी।

(ग) सूर के ही द्वारा रचित, पर उनकी स्वतन्त्र रचनाएं न होकर सूरसागर और विनय पदावली के संकलित अंश—३३।

९ सूर छत्तीसी, १० सूर बहत्तरी, ११ सूर रामायण, १२ सूर शतक, १३ दृष्टकूट पद, १४ गूढार्थ पद, १५ महादेव लीला, १६ नाग लीला, १७ गोवर्धन लीला, १८ चीर हरण लीला, १९ दानलीला, २० प्रान-प्यारी (श्याम सगाई), २१ राधा मंगल, २२ राधा कृष्ण मंगल, २३ राधा नख शिख, २४ स्वामिनी स्वरूप वर्णन, २५ ठाकुर जी को रूप वर्णन, २६ राधा रस केलि, २७ मान लीला, २८ मान सागर, २९ रास लीला, ३० अक्रूर लीला, ३१ गोपी विरह (उद्धव संवाद), ३२ भ्रमर गीत, ३३ रुक्मिणी मंगल, ३३ द्रोपदी भजन, ३५ सुदामा लीला, ३६ दशम स्कंध भाषा, ३७ भागवत भाषा, ३८ सूर रत्न, ३९ सूरसागर सार, ४० सूर मंजरी, ४१ विष्णु पद।

(घ) अल्प चर्चित अतः विचारणीय एवं परीक्षणीय ग्रन्थ—९

४२ राग माला, ४३ अष्टपदी, ४४ बेनीमाधौ की बारहमासी, ४५ बाँसुरी लीला, ४६ ब्याहलौ, ४७ कबीर राधा नख शिख, ४८ सूर गीता, ४९ चरण चिह्न, ५० दोहावली।

(ङ) अप्रामाणिक ग्रन्थ, अन्य सूरदासों द्वारा रचित—१२

५१ पांडव यज्ञ, ५२ राम जन्म, ५३ एकादशी माहात्म्य, ५४ नलदमन ५५ गोपालगारी, ५६ बारहमासा, ५७ राम जी का बारहमासा, ५८ बिसातिन लीला ५९ मोरध्वज कथा, ६० रुक्मांगद कथा, ६१ अर्जुन गीता, ६२ हरिवंश टीका (संस्कृत),

४. सूर का प्राचीनतम प्राप्त पद-संग्रह

(१) परिचय

महाकवि सूरदास का गोलोकवास सं० १६४० में हुआ। उनके पदों का एक लघु संग्रह सं० १६३९ का लिखा हुआ प्राप्त है। स्पष्ट है कि यह संग्रह सूर के जीवन-काल का लिखा हुआ है। इस दृष्टि से यह निश्चय ही महत्वपूर्ण है।

सूर का यह पद-संग्रह सं० १६३९ में जेठ सुदी १२ को, रविवार के दिन लिखा गया था। उस समय आगरा में अकबर बादशाह का शासन था। पोथी फतेहपुर में लिखी गई थी। फतेहपुर जयपुर के उत्तर स्थित शेखावाटी क्षेत्र में एक प्रसिद्ध नगर है। फतेहपुर के तत्कालीन राजा नरहरिदास थे। उनके कुँवर छीतर जी थे। इन्हीं छीतर जी के पढ़ने के लिए यह पोथी लिखी गई थी। प्रतिलिपिकर्ता का नाम रामदास रतना था, जो कोई चारण था। यह सारी सूचना ग्रंथ की इस पुष्पिका से ज्ञात होती है।

> "संवत् १६३९ वर्षे ज्येष्ठमासे शुक्ल पक्षे।
> द्वादस्यायांतिथौ रविवासरे घटी ६।
> बिसाषा नक्षत्रे पातिसाह श्री अकबर राज्ये।
> फतेपुर मध्ये पोथी लिषी।
> श्री नरहरिदास जी तस्य पुत्र कु श्री छीतर जी पठनार्थं
> ॥ शुभंभवतु ॥
> लैषक पाठकयो शुभमस्तु ॥ लिषतं रामदास रतना।
> ॥ छ ॥ × ॥ छ ॥

संवत १७५८ में यह पोथी किसी तरह से फतेहपुर से जयपुर राजकीय पोथीखाने में पहुँच गई। पुष्पिका के नीचे रामसिंह की चौकोर मुहर लगी हुई है। मुहर के बाएँ कोने पर १७ और दाएँ कोने पर ५८ लिखा हुआ है, जो सं० १७५८ का सूचक है। पुनः ऊपर 'राम' लिखा हुआ है, बीच में सिंह का चित्र है और नीचे 'स्य' लिखा हुआ है। यह 'राम सिंहस्य' है, इसका अर्थ हुआ—यह पोथी रामसिंह की है। यह रामसिंह उन प्रसिद्ध जयसिंह के पुत्र थे, जिनके यहाँ बिहारी सतसई के कर्ता सुप्रसिद्ध बिहारी दास थे। जयसिंह का शासन काल सं० १६७८ से १७२४ वि० तक है। १७२४ वि० में रामसिंह जयपुर नरेश हुए। इन्हीं के आश्रय में रहकर बिहारी के भानजे मथुरा निवासी कुलपति मिश्र ने सं० १७२७ में प्रसिद्ध रीति ग्रंथ रसरहस्य की रचना की थी।

गोपाल नारायण बहुरा के अनुसार रामसिंह की मुहर सं० १७१८ की है, उस समय वे महाराजकुमार थे। प्रभुदयाल मीतल के अनुसार उक्त मोहर सं० १७५८ की है। उस समय वे जयपुर नरेश थे। मेरी समझ से १७५८ ही ठीक है, क्योंकि इस पोथी में कान्हा के ५२ पद संकलित हैं। कान्हा राजस्थान के निर्गुनिया जैन भक्त कवि थे। इनका समय सं० १७६० के आसपास है। स्थानीय प्रसिद्ध साधु कवि होने से इनके इतने पद संकलित हो उठे हैं।

१७५८ से यह पोथी जयपुर नरेश की खास मोहर के अंतर्गत बन्द रही। चैत्र सुदी ११ सं० २००० में यह खास मोहर से पोथीखाना में स्थानांतरित हो गई। यह पोथी उक्त पोथीखाने की एक प्रदर्शन-पेटिका में १९५३ ई० से ही ताले के भीतर बन्द रखी हुई थी। इसकी पुष्पिका शीशे से बाहर झलकती थी और पढ़ी जा सकती थी।

हिन्दी-संसार को उक्त प्रति की सर्वप्रथम सूचना बीकानेर के सुप्रसिद्ध अन्वेषक विद्वान (स्व०) श्री अगरचंद नाहटा ने देशबन्धु, मथुरा के वर्ष २, अंक १-३ अगस्त-सितम्बर १९५३ में दी।

उसके नौ वर्ष बाद सूर के सुप्रसिद्ध अध्येता प्रभुदयाल जी मीतल ने पत्राचार के द्वारा उक्त संग्रहालय के व्यवस्थापक कुँवर संग्राम सिंह से इस पोथी के देखने के लिए सम्पर्क स्थापित किया और वे इसे देखने में सफल भी हुए। उन्होंने इस पोथी का परिचय लिख कर नागरी प्रचारिणी पत्रिका के वर्ष ६७, अंक ३, सं० २०१९ वि० में प्रकाशित कराया। मीतल जी जितनी देर तक इस पोथी को देखते रहे, उतनी देर तक उक्त संग्रहालय का एक कर्मचारी इनके पास बराबर बैठा रहा।

१९७१ ई० में इस संग्रहालय का एक सूचीपत्र प्रकाशित हुआ। तब से इस हस्तलेख के संबंध में सूर के विदेशी विद्वानों का भी ध्यान, आकृष्ट हुआ। ब्रिटिश कोलंबिया विश्वविद्यालय के प्रोफेसर डा० के० ई० ब्रियांट के आग्रह से अनुग्रहपूर्वक इस संग्रहालय की सूर संबंधी सामग्री की फोटो ले लेने की अनुमति उन्हें प्रदान की गई। पर इस पोथी की फोटो लेने की अनुमति उन्हें भी नहीं दी गई। अंततः डा० ब्रियांट के सतत आग्रह से उक्त संग्रहालय ने इस पोथी के पन्नों के फोटो ब्लाक बनवा कर छपा लिया और इसे ज्यों का त्यों सूर के देशी विदेशी सभी प्रकार के विद्वानों के लिए सुलभ कर दिया। ग्रंथ 'पद सूरदास का' नाम से १९८४ ई० में प्रकाशित हुआ। मूल्य दो सौ रुपये हैं। संपादक हैं गोपाल नारायण बहुरा और प्रकाशक हैं—डा० अशोक के० दास, निदेशक महाराज सवाई मान सिंह द्वितीय म्यूजियम ट्रस्ट, सिटी पैलेस जयपुर।

इस पोथी के प्रारंभ में भूमिका के रूप में ६ पृष्ठों का एक परिचयात्मक लेख अंग्रेजी में है। तदनंतर एक दूसरा लेख डा० के० ई० ब्रियांट का है 'सूरसागर के हस्तलेखों की परंपरा : फतेहपुर हस्तलेख।' यह लेख १४ पृष्ठों का है। यह भी अंग्रेजी में ही है। इसके पहले गायत्री देवी राजमाता जयपुर का संदेश, भवानी सिंह जी महाराज जयपुर का पूर्व-वचन (Foreword), अशोक कुमार दास निदेशक का प्राक्कथन (Preface) भी अंग्रेजी में ही हैं, सभी एक-एक पृष्ठ के। इस प्रकार हिंदी किताब को अंग्रेजी जामा पहनाने का प्रयास किया गया है। पर हिंदी की पोथी हिंदी की ही रहेगी, अंग्रेजी की नहीं हो जायगी।

मूल ग्रंथ प्रारंभ होने से पहले संकलित सभी पदों की क्रमिक प्रतीक सूची दी गई है (१६ पृष्ठ)। फिर मूल ग्रंथ है २२८ पृष्ठ। ग्रंथांत में तीन परिशिष्ट हैं। प्रथम परिशिष्ट में सूर के पदों की वर्णानुक्रम से प्रतीक सूची दी गई है (११ पृष्ठ)। दूसरे परिशिष्ट में एक पृष्ठ में २३ ऐसे पदों की सूची है, जो ग्रंथ में दुहरा उठे हैं। तीसरे परिशिष्ट में एक पृष्ठ है। इसमें सूर के ऐसे १९ पदों के प्रतीक हैं, जिन्हें बहुरा जी या तो काशी नागरी प्रचारिणी सभा के सूरसागर में खोज नहीं पाए या जो उसमें संकलित ही नहीं हैं। प्रथम परिशिष्ट में सभा के सूरसागर के पदांक भी दे दिए गए हैं, जिससे इसकी उपयोगिता अत्यन्त बढ़ गई है।

हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग में मैंने इस छपी पोथी के संबंध में पहली बार सुना। इसके मूल रूप की अभिज्ञता तो प्रभुदयाल जी मीतल के लेख से बहुत पहले हो चुकी थी। इधर अक्टूबर ८५ से सूर के संबंध में मेरा कार्य प्रारंभ हुआ। सूर-

ग्रंथावली के संपादक और टीकाकार अभिनव भरत आचार्य पंडित सीताराम जी चतुर्वेदी को मेरे इस कार्य में बड़ी रुचि है। उन्होंने इस ग्रंथ के संबंध में मुझे २० सितम्बर ८५ को एक पत्र लिखा और लोक शिक्षक १५-९-८५ के अंक का एक पन्ना भी भेज दिया, जिसमें इस पोथी की समीक्षा पृष्ठ १५-१६ पर प्रकाशित है। समीक्षक हैं कलानाथ शास्त्री। इस समीक्षा के पढ़ने से ज्ञात हुआ कि इसमें संकलित पदों में सूर और सूरदास के साथ-साथ सूरश्याम एवं सूरजदास छापवाले पद भी संकलित हैं। ऐसी स्थिति में इस पोथी का देखना मेरे लिए अत्यन्त आवश्यक हो गया।

इस बार मैं ३ अक्टूबर ८५ को प्रयाग गया और साहित्य सम्मेलन के सत्यनारायण कुटीर में ठहरा। सूर के पदों की इस पोथी के सम्बन्ध में जिज्ञासा करने पर पता चला कि इसकी एक प्रति इलाहाबाद विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के प्राध्यापक डा० किशोरी लाल के पास है। ७ अक्टूबर को मुझे यह पोथी मिली और ८ को मैं घर आ गया। इस बीच ९ अक्टूबर से २३ अक्टूबर (विजयादशमी) तक मैंने इस पोथी को बड़ी सूक्ष्मतापूर्वक पढ़ डाला और इसके संबंध में अपने मत निश्चित किए। इस बीच मैंने इस पोथी से अपने स्वाध्याय के लिए तीन संग्रह तैयार कर लिए। पहला संग्रह सूर के पदों का है। यह विषयानुक्रम से है, इसमें कुल २३५ पद हैं। दूसरा संग्रह कान्हा के पदों का है। इसमें कुल ५२ पद हैं। ये उसी क्रम से संकलित किए गए हैं, जिस क्रम से सूर वाली जयपुर की प्रकाशित पोथी में हैं। तीसरे संग्रह में ३५ अन्य भक्त कवियों के कुल ९७ पद हैं। इस प्रकार इस पोथी में कुल २३५ + ५२ + ९७ = ३८४ पद हैं।

बहुरा जी ग्रंथ की भूमिका में लिखते हैं कि पोथी तीन खंडों में लिखी गई है और हर खंड की आदर्श प्रतियाँ अलग-अलग रही हैं। प्रत्येक खंड की पद-संख्या अलग-अलग दी गई है। तीन विभिन्न प्रतियों का संकलन होने के कारण ही २३ से अधिक पद दुहरा उठे हैं। पहले दो खंडों का प्रतिलिपिकर्ता कोई एक ही व्यक्ति है, जिसका नाम अज्ञात है। प्रतिलिपिकाल भी नहीं दिया गया है। तीसरे खंड में ही प्रतिलिपिकर्ता का नाम और प्रतिलिपिकाल सं० १६३९ दिया हुआ है। आगे एक-एक खंड की अलग-अलग विवेचना प्रस्तुत की जा रही है।

(२) प्रथम खण्ड-परीक्षण

प्रथम खंड में कुल ३८ पन्ने (७६ पृष्ठ) है। इसमें कुल १०६ पद हैं। ग्रंथारंभ में है—

"श्री कृष्णायनमः" 'श्री रामचंद्राय नमः" "कृष्णपद सूरदास के ।।"

इसके पश्चात् पद-संग्रह है। पहले पद का प्रतीक है—

देखि री देखि आनँद कंदु

प्रत्येक पद के पहले राग-निर्देश कर दिया गया है। इस खंड में सूर के पदों के साथ-साथ अन्य १५ कृष्ण भक्त कवियों के भी पद संकलित हैं।

सूर के संकलित पद—१-३५, ५५; ५६, ६०, ६१, ६४-७०, ७२, ७३, ७६-१०६। कुल संख्या = ७९।

१.	परमानंद दास के पद	—३६, ३७, ३८, ३९, ४०, ७४	= ६ पद
२.	किशोरदास	—४१	= १ पद
३.	विद्यापति	—४२	= १ पद
४.	ब्रह्मदास	—४३, ४५, ५७, ५८, ७५	= ५ पद
५.	तानसेन	—४४	= १ पद
६.	सूरदास मदनमोहन	—४६	= १ पद
७.	मकरंद	—४७, ४८	= २ पद
८.	व्यास (हरीराम)	—४९	= १ पद
९.	रामदास	—५०	= १ पद
१०.	दुजनसल	—२१, ५२, ५३	= ३ पद
११.	पियदयाल	—५४	= १ पद
१२.	मानदास	—५९	= १ पद
१३.	गोविन्ददास	—६२	= १ पद
१४.	श्याम	—६३	= १ पद
१५.	दलपति प्रभु	—७१	= १ पद

इस खंड में सूर के कुल ७९ पद एवं अन्य १५ समकालीन भक्त कवियों के कुल २७ पद संकलित है। इन पन्द्रह कवियों में बारह ज्ञात हैं—

१. परमानन्ददास—प्रसिद्ध अष्टछापी कवि।

२. गोविन्ददास—प्रसिद्ध अष्टछापी भक्त कवि।

३. हरीराम व्यास—ओरछा के प्रसिद्ध भक्त कवि, वृन्दावनी।

४. किशोरदास—हरीराम व्यास के पुत्र। इन्हें व्यास जी ने स्वामी हरिदास की परंपरा में दीक्षित करा दिया था।

५. ब्रह्मदास—यह रावल के आगे गोपालपुर के रहनेवाले गौरवा क्षत्रिव थे। इनकी वार्ता 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' में २३६ संख्या पर है। "ये मानसी में जो अनुभव करत, सो पदन में गाते।"

६. तानसेन—अकबरी दरबार के प्रसिद्ध गायक।

७. सूरदास मदनमोहन—सुप्रसिद्ध भक्त कवि जो पहले संडीला में अकबर बादशाह के अमीन थे।

८. रामदास—इनकी वार्ता २५२ वैष्णवन की वार्ता के अन्तर्गत ९५ संख्या पर है। यह श्रीनाथ जी के भीतरिया थे और खंभाइच के गुजराती ब्राह्मण थे।

९. मानदास—इनका विवरण शिवसिंह सरोज में ६२८ संख्या पर एवं उदाहरण ५५३ संख्या पर है। भक्तमाल में इनका विवरण छप्पय १३० में है। यह ब्रजवासी थे। इन्होंने वाल्मीकिरामायण एवं हनुमन्नाटक के अच्छे अनुवाद किए थे।

१०. विद्यापति—भक्तमाल छप्पय १०२ में १६ भक्त कवियों का उल्लेख हुआ है। पहले हैं विद्यापति—

विद्यापति, ब्रह्मदास, बहोरन, चतुरविहारी
गोविंद, गंगा, रामलाल बरसानियां मंगलकारी
प्रिय दयाल, परसराम, भक्त भाई, खाटीकौ
नंदसुवन की छाप कवित केसौ कौ नीकौ

आसकरन, पूरन, नृपति भीषम, जन दयाल गुन नहिन पार
हरि सुजस प्रचुर कर जगत मैं, ये कविराज अतिसय उदार ।। १०२

यह विद्यापति, प्रसिद्ध मैथिल कोकिल विद्यापति से भिन्न हैं। यह ब्रजवासी हैं। इनके पद ब्रजभाषा में हैं और मुझे अन्यत्र भी मिले हैं।

११. पियदयाल—ऊपर उद्धृत छप्पय में प्रियदयाल और जन दयाल नामक दो भिन्न-भिन्न भक्त कवियों का उल्लेख हुआ है। प्रस्तुत पोथी में संकलित दयाल 'पिय दयाल' हैं—

पिय दयाल तुम काहू कै छत, कर्तहि सराहत गात १/५४

१२. श्याम—करुणा की छाया एवं भक्ति का फल देने वाले कलियुग के १७ भक्त-पादपों में नाभादास ने श्याम जी की भी गणना की है—

जती राम रावल्लि, स्याम, खोजी, संत सीहा

× × ×

मति सुंदर धीयां गैश्रम, संसार नाच नाहिन नचे

करुना-छाया, मक्ति-फल, ए कलियुग-पादप रचे ९७

शेष तीन—दलपति, दुजनसल और मकरंद के संबंध में कोई जानकारी नहीं सुलभ हो सकी। संभवतः ये सभी सूर के समकालीन ही थे।

द्वितीय खंड-परीक्षण

दूसरा खण्ड अढ़तीसवें पन्ने (७६ वें पृष्ठ) पर तत्काल प्रारम्भ कर दिया गया है। कोई स्थान रिक्त नहीं छोड़ा गया है। यहाँ प्रथम खण्ड की कोई पुष्पिका भी नहीं है। प्रथम दोनों खण्डों की लिखावट एक ही कलम की है। दोनों खण्डों के पदांक अलग-अलग हैं। इसीसे इन्हें दो अलग खण्ड स्वीकार किया गया है।

दूसरा खण्ड पन्ना ३८ के द्वितीय पृष्ठ के मध्य से आरम्भ है और पन्ना ११० (पृष्ठ २२०) पर समाप्त है। पृष्ठ २२० पर केवल पांच पंक्तियाँ हैं। सात पंक्तियों के लिए स्थान रिक्त है। यहाँ भी पुष्पिका नहीं है। पद संख्या १८१ है। लगता है यह खण्ड अपूर्ण है। १८१ संख्या के पश्चात् दूसरी भद्दी कलम से 'राग धनासी' लिखा गया है, जो यह सूचित करता हैं कि इसके आगे कोई पद लिखा जाने वाला था, जो लिखा नहीं जा सका।

इस खण्ड के पदों की एक तो संख्या नए सिरे से दी गई है, साथ ही इसके पदों के लेखक का एक और वैशिष्ठ्य है। प्रथम एवं तृतीय खण्डों के चरणांत में पूर्ण विराम के लिए दो-दो खड़ी पाइयां दी गई हैं। पर द्वितीय खण्ड में बीच के यति स्थलों पर भी अंग्रेजी कोलन के समान ऊपर नीचे प्रायः दो बिन्दु दे दिए गए हैं, जो प्रथम एवं तृतीय खण्डों के पदों में नहीं हैं। यथा परमानन्द दास का एक पद लें।

जब गोविंद कृपा करे तब सब बनि आवै ॥

सुख सम्पति आन दुख ना : घर बैठहि पावै ।

कुविजा क्या उदिम कीयो ॥ मथुरा कै माली ॥

वह वंदन वह पुहुप लै ० चरचे वनमाली ।
परमानन्द प्रभु सभा मैं द्रोपदी पति राषी ।।
अैसी बहुत गुपाल की : जानै मनु साषी ।।११०।।

प्रथम और चतुर्थ चरण में यति पर कोई चिह्न नहीं हैं। द्वितीय एवं छठे चरण में कोलन जैसा चिह्न है। तृतीय चरण में पूर्ण विराम का चिह्न दो खड़ी पाइयाँ हैं। चौथे चरण में यति का अलगाव केवल एक बिंदु से किया गया है। यति बिलगाव का वह प्रयत्न द्वितीय खण्ड की एक विशेषता है।

इन दोनों खंडों की पत्र-संख्या मूल लेखक के हाथ की लिखी हुई नहीं है। जिसने द्वितीय खण्ड के अन्त में 'राग धनासी' लिखा है, उसी ने पत्र संख्या भी दी है। हर एक पत्र पर पत्रांक नहीं दिया गया है, पर जहाँ भी दिया गया है, अंक शुद्ध है।

इस खण्ड की पद संख्या में थोड़ी गड़बड़ी है, पद संख्या १, २, ४२, ९० दुहरा उठे हैं। ११९, १२९, संख्याओं पर कोई पद हैं ही नहीं। पद ५० -५५, एक ही पद हैं, छह नहीं है, सूर की प्रशिद्ध रचना सूर पचीसी। इसे छह अंक प्रदान कर दिए गए हैं। अतः इस खण्ड में कुल पद संख्या १८१+४-२-५=१७८ होनी चाहिए, पर यह १७६ ही है क्योंकि परमानन्द और भाई जन के एक-एक पद क्रमशः ६८, ९६ एवं २, ७८ पर दो बार आ गए हैं।

इस खण्ड में भी सूर के पदों के साथ २३ अन्य भक्तों के पद संकलित हैं। इस खण्ड में अनेक निर्गुनिया संत कवि भी संकलित हैं।

सूर के पद—२, ३, ९-५५ (५०), ४२ पुनर्लिखित ७५, ९३-९६, १०४, ११२, १२३, १२७, =५८+१-५ (५४) पद।

सूर के पूर्ववर्ती निर्गुनिया संतों के पद।

१. नामदेव—६६, ६७, ७१, ७२, ७७, ८३, ९८, ११८, १२०, १२१, १२४ = ११ पद

२. कबीर—१, ७३, ७४, ८७, ८८, १०६, ११३, १२४, १२५, १४५, १४६, १४७, १४८, १४९, १५१ = १५ पद

३. रैदास—९०, ९१, १००, १०८, १५२-५५ = ८ पद

परवर्ती निर्गुनिया कवि

१,	कान्हा—४-८, ५६-६५, १३२-१४४, १५८-८१	= ५२ पद

अन्य भक्त कवि

१,	जन भगवान	—१, ७०	= २ पद
२,	भाई जन	—२, ७८	= २ पद
३,	परमानन्ददास	—६८, ७६, ९२, ९९, १०१, १०५, ११०	= ७ पद
४.	कृष्णदास कटहरिया	—७९, ८०	= २ पद
५.	मेहा	—८१	= १ पद
६.	हरीराम व्यास	—८२, ८४, ८६, १०२, १०९	= ५ पद
७,	माधौदास	—८५	= १ पद
८,	तिलोक स्वामी	—८९	= १ पद
९.	सुन्दर	—९०	= १ पद
१०.	राइमल	—९७, १०७	= २ पद
११.	मधुकर साह	—१०३	= १ पद
१२.	आसकरन	—१११	= १ पद
१३.	श्रीभट्ट	—११४	= १ पद
१४.	द्वारिका	—११५, ११६, ११७	= ३ पद
१५.	देराजदास	—१२६	= १ पद
१६.	हेमराज	—१२८	= १ पद
१७.	ब्रह्मदास	—१३०, १३१	= २ पद
१८.	पूरनदास	—१५०, १५७	= २ पद
१९.	कील्हदास	—१५६	= १ पद
२०.	अज्ञात	—६९ छापहीन	= १ पद

द्वितीय खंड में सूर के अतिरिक्त कुल २३ अन्य कवि संकलित हैं। इनमें से नामदेव, कबीर, रैदास तीन परमप्रसिद्ध निर्गुनियाँ कवि हैं और सूर से पर्याप्त पूर्ववर्ती हैं। परमानंददास, हरीराम व्यास और ब्रह्मदास प्रथम खंड में आ चुके हैं और प्रसिद्ध हैं। शेष १७ कवियों में तेरह ज्ञात हैं—

(१) जन भगवान—गोसाईं विट्ठलनाथ के शिष्य। इनकी वार्ता दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता में है—संख्या १०७। यह गौरवा क्षत्रिय थे। जन और भगवान दो भाई थे। पदों में 'जन भगवान' छाप रखते थे। वार्ता में इनके ५ पद अवतरित है।

फा०—४

(२) कृष्णदास कटहरिमा – यह भी गोसाईं विट्ठलनाथ के शिष्य थे। इनकी भी वार्ता दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता में है– संख्या २३५। वार्ता में इनका एक पद संकलित है। यह कटहरिया क्षत्री थे, गुजराती थे। लड़कपन में बटमार थे। गोकुल आ जाने पर गो० विट्ठलनाथ के साथ अंत तक बने रहे। पर्याप्त पद रचे हैं।

(३) मेहा– यह धीमर थे। यह भी गोसाईं विट्ठलनाथ के शिष्य थे। इनकी भी वार्ता दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता में है– संख्या १३६। वार्ता में इनके ४ पद अवतरित हैं।

(४) माधोदास—यह खंभाइच के रहने वाले थे। वनिया थे, दलाल थे। २५२ वैष्णवन की वार्ता में इनकी वार्ता २५१ संख्या पर है। वार्ता में इनके ३ पद हैं। इन्होंने बहुत पद रचे थे। यह राज नगर (अहमदाबाद) आकर गोसाईं जी को खंभात ले गये थे। स्वयं भी गोकुल आए थे।

(५) आसकरन दास – यह नरवरगढ़ के राजा थे। इनकी भी वार्ता दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता में संख्या १२३ पर है। वार्ता में इनके तीन पद हैं। वैसे इनके पचास के लगभग पद प्राप्त हैं।

(६) श्रीभट्ट—यह निंबार्क संप्रदाय के श्रीभट्टदेवाचार्य से भिन्न हैं और वल्लभ संप्रदाय के हैं तथा सूर के समकालीन हैं।

(७) मधुकरशाह – यह ओरछा के राजा थे। इन्हींके पुत्र प्रसिद्ध रामसिंह, इंद्रजीतसिंह और वीरसिंह थे। इन तीनों के साथ महाकवि केशव का संबंध था। यह मधुकर शाह हरीराम व्यास के शिष्य थे और अकबरी दरबार से भी सम्बन्धित थे। यह कृष्णोपासक थे और इनकी रानी गनेश दे रामोपासक, जिनका बनवाया राम राजा का मंदिर ओरछा का गौरव है। मधुकर शाह के कुछ पद मिलते हैं। भक्तमाल छप्पय ११७ में नामोल्लेख।

(८) कील्हदास—यह कृष्णदास पयहारी के शिष्य और नाभादास के गुरु अग्रदास के गुरुभाई थे। इनका विवरण भक्तमाल के छप्पय ४० में दिया गया है। यह सुमेर देव के सुत थे। यह रामोपासक थे। इनके कुछ ही पद प्राप्त हैं।

(९) रायमल—इनका नामोल्लेख भक्तमाल छप्पय ११७ में १२ राज भक्तों के अंतर्गत हुआ है, यह राम भक्त थे।

ईश्वर, अखैराज, रायमल, कन्हर, मधुकर नृप सरबसु दियो।
भक्तनि को आदर अधिक, राजवंश में इन कियो।

(१०) तिलोक—भक्तमाल छप्पय ९८ में १८ कामधेनु भक्तों की नामावली में तिलोक सुनार का नाम है। प्रियादास ने टीका-कवित्त ४०६, ४०७ ४०८ में इनका विवरण दिया है। यह प्रस्तुत संग्रह के तिलोक स्वामी हो सकते हैं।

(११) द्वारिका—भक्तमाल में ही द्वारिका का उल्लेख दो बार हुआ है। पहला नामोल्लेख छप्पय १०० में २६ दिग्गज भक्तों के रूप में हुआ है—

छीतम, द्वारिकादास, माधव, मांडन, छपा दामोदर।

× × ×

भक्तमाल दिग्गज भगत, ए थानातइ सूर धीर १००

दूसरी बार इनका पूरा विवरण दिया गया है (छप्पय १८२)। यह द्वारिकादास जी कील्हदास के शिष्य थे। रामोपासक थे। इन्होंने कूकस गांव के निकट नदी के जल में स्थित हो मन में ध्यान धरा था।

संकलन के द्वारिका विप्र थे—

विप्र जन्म हरि भजनु न कीन्हो, यह तौ बड़ी अनीति २।११७

(१२) पूरनदास—भक्तमाल में पूरनदास का दो बार उल्लेख है। एक बार छप्पय १०२ में १६ भक्तों के साथ, जो अच्छे कवि थे।

आसकरन, पूरन, नृपति भीषम, जनदयाल, गुन नहिंन पार।
हरि सुजस प्रचुर कर जगत में, ये कविजन अतिसय उदार १०२

छप्पय १५० में अग्रदास के १६ शिष्यों की नामावली में पूरनदास का भी नाम है—

जंगी, प्रसिध प्रयाग, विनोदी, पूरन बनवारी।

× × ×

त्रिविधि ताप मोचन सबै, सौरभ प्रभु निज सिर भुजी।
श्री अग्र अनुग्रह ते-भये, शिष्य सबै धर्म की धुजा १५०।

देराजदास, भाई जन, सुन्दर और हेमराज के सम्बन्ध में कोई जानकारी उपलब्ध नहीं हो सकी।

अब रह गए एक कान्हा। इनका कोई उल्लेख भक्तमाल में नहीं है। यह अत्यन्त परवर्ती भक्त हैं। इनका समय सं० १७६१ वि० है। यह राजस्थान के रहने वाले थे, यह जैन थे और निर्गुनिया थे।

निम्नांकित संग्रहों में इनके सबद मिलते हैं।

१. महापुरषां के फुटकर पद—सभा खोज रिपोर्ट २००७/१६। इसमें इनके २ सबद हैं।

२. गुटका—राजस्थान में हिंदी के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज भाग ३, ग्रंथ २५—ग्रंथ 'गावा को गोपीचंद, छंद १२४१।

३. गुटका विविध संग्रह—राज० भाग ३, ग्रंथ २६—'गावा को गोपीचंद', छंद १२३८, २ दोहा।

४. राज० भाग ३—ग्रंथ संख्या २२—गावा को गोपीचंद, उदाहरण भी।

५. राज० भाग ३—ग्रंथ संख्या ३०, गुटका—७१ रचनाओं का संग्रह। ५८वीं रचना है—कान्हा जी का पद।

६. राज० भाग ३—ग्रंथ संख्या ५९—वाणी संग्रह—कुल ८० रचनाएँ—४२ संख्या पर 'कान्हा-पद', पृष्ठ २७२-२७९ पर संग्रहीत।

७. राज० भाग ४—कान्ह कवि की एक रचना ''ज्ञान छत्तीसी'। दो पन्ने प्राप्त, तीसरा अप्राप्त। प्रति अभय जैन ग्रंथालय बीकानेर की है। दो पन्नों में कुल ३० छंद प्राप्त हैं। रिपोर्ट में प्रथम दो छंद अवतरित भी हैं। प्रथम छंद सवैया है, दूसरा कवित्त। प्रथम छंद का अंतिम चरण ध्यान देने योग्य हैं—

कान्ह जी ज्ञान छतीसी कहें, प्रभु संमत है शिव जैननि कूं

८. राज० भाग ४—कान्ह कवि की 'कौतुक पच्चीसी' का विवरण—पृष्ठ ११० पर। इसमें कुल २७ दोहे हैं। रचनाकाल सं० १७६१ हैं—

सतरै सै इगसठि समै, उत्तम माहा असाढ़
दूरस दोहरे दोहरे, गुप्त अर्थ करि गाढ़। २६

इनके गुरु का नाम ध्रमसिंह था—

सदगुरु श्री ध्रम सिंह जू, पाठक गुणे प्रधान
कौतुक पच्चीसी कही, कवि वणारसि कान्ह २७

१. राज० भाग ४, पृष्ठ ४०-४१—संत वानी संग्रह। इस संग्रह में भी कान्ह जी के १० पद संकलित हैं। हस्तलेख नरोत्तमदास स्वामी का है, प्रतिलिपि-काल सं० १८५६ है।

ऐसी स्थिति में मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचता हूँ कि प्रथम एवं द्वितीय खंड की प्रतिलिपि सं० १७५० के आसपास हुई और ग्रंथ १७५८ में रामसिंह को मिला।

४. तृतीय खण्ड परीक्षण

तृतीय खंड पत्र १११-१६४ (पृष्ठांक २२१-३२८) पर है। इसमें कुल १२७ पद हैं। इसकी लिखावट दूसरी कलम एवं दूसरे हाथ की है। इसके अक्षर प्रथम एवं द्वितीय खंड के अक्षरों की अपेक्षा कुछ बारीक एवं कुछ तिरछे हैं। तीनों खंडों में प्रत्येक पृष्ठ पर १२-१२ पंक्तियाँ हैं। इस खंड के भी प्रारंभ में द्वितीय खंड के समान ही ग्रंथ नामादि या मंगलात्मक नमः कुछ भी नहीं है। इसका प्रारंभ यों होता है—

॥ रागविलावल ॥
गुपाल दुरे ही माखनु खात।

तृतीय खंड में विषम चरणों के अंत में एक-एक और सम चरणों के अन्त में दो-दो खड़ी पाइयों से विराम-सूचन किया गया है। चरण मध्य की यति के लिए कोई भी चिह्न नहीं प्रयुक्त हुआ है। इस खण्ड की सबसे बड़ी दो विशेषताएँ हैं। एक तो इसमें केवल सूर के पद संकलित हैं; दूसरे इसके अन्त में लिपिकाल सूचक पुष्पिका है। ग्रंथ के नाम का निर्देश न तो आदि में है, न अन्त की पुष्पिका में ही।

इस खंड में जो पत्रांक दिए गए हैं, वे प्रतिलिपिकर्ता की ही कलम के नहीं प्रतीत होते। वे कुछ गाढ़ी स्याही में हैं। पत्रांक ५४ में से केवल निम्नांकित ३१ पन्नों पर किया गया है—१११-११६, १८, १२०, १२२-१३३, १३५, १४७, १४९ १५१-५६, १५९, १६२। पत्रांक १४७, १४९, १५१-५६, १५९, १६३ को क्रमशः १४८, १५०, १५२-५७, १६०, १६३ होना चाहिए।

इस खंड की लिखावट बहुत साफ और शुद्ध है। इसमें बाद में कोई संशोधन नहीं किया गया है। किसी ने आधुनिक युग में अँगरेजी निब से बारीक अक्षरों में प्रत्येक पद के प्रारंभ में रस निर्देश करने की कृपा की है—शृंगार, शृंगार-विरह, वाल्य, अद्भुत, शांत, वैराग्य शांत, शूरता, उद्दामता आदि। केवल पद ५२ में दूसरी कलम से हाशिये पर एक अशुद्ध संशोधन कर दिया गया है

कटि केहरि, बानी सु कोकिला, ससि मुखि अधर धरी

'सु कोकिला' के 'सु' को 'सुक' समझकर 'सु' के आगे हंसपाद का चिह्न बनाकर बाँएँ हाशिये पर 'क' लिख दिया गया है।

खंड १, २ में बाद में हाशिये पर यत्र-तत्र संशोधन कर दिए गए हैं, जो बहुत स्पष्ट रूप से दूसरे हाथ और दूसरी कलम की सूचना दे देते हैं।

(५) सूरश्याम और सूरजदास के पद

इस पोथी के सूर-पदों में यत्र-तत्र सूरश्याम और सूरज या सूरजदास छाप के भी पद आए हैं। इनकी सूची आगे दी जा रही है—

सूरश्याम छाप वाले पद—
प्रथम खंड

१. नहि विसरति वह रति ब्रजनाथ	२९
२. नैननि को मत सुनहु सयानी	३४
३. सखी री पावस सैनु पलान्यो	६८
४. दुहु दिसि को विरह विरहिनी	७९
५. जब तैं श्रवण सुन्यो तेरो नामु	८१
६. हौं मोहन के विरह जरी	९७
७. वारुणी बल घूरम लोचन विहरत वन	९९

द्वितीय खंड

८. नाथ सारंगधर दया करी दीन पर	३५

तृतीय खंड

९. देखि री हरि के चंचल तारे	७
१०. भए हैं नैन अनाथ हमारे	६०
११. आछो मेरे सांवरे ऐसी आरि न कीजै	६१
१२. हरि मुखु देखे बिनु जान लगे	६२
१३. सखी री और सुनहु इक बात	७३
१४. दिन द्वारावति देखन आवत	९९
१५. चहुं दिसि ते घन घोरे	११७

सूरज या सूरजदास छाप वाले पद
प्रथम खंड

१.	चकई री चलि चरन सरोवर	१०
२,	वेगि चलहु प्रिय कुँवर कन्हाई	१४
३.	मधुकर इहां न मन मेरौ	६८

द्वितीय खंड

चकई री चलि चरन सरोवर १६ (प्रथम खंड में भी—१०)

४.	कहि न सकत तुम सौं इक बात	३१
५.	जन्म जन्म जेहिं जेहिं	३७
६.	जब लगि सत्यै सरूप न सूझहु	४४

तृतीय खंड

कहि न सकति तुमसौं इक बात (द्वितीय खंड में भी है ३१)
७. जान दै जान दै पिय मोहिं हौं गोपाल बुलाई—८
जन्म जन्म जैहौं जैहौ जुग ५५ (भाग २ में आ चुका है ३७)

८.	माधौ जू के वदन की सोभा	६४
९.	ऊधौ इन नैननि नैम लियौ	७७
१०.	वेगि चलहु पिय कुँवर कन्हाई	७८
११.	जो पै हैं हिरदै मांझ हरी	८२
१२.	हरि बिनु इहि विधि है व्रज रहियतु	८८
१३.	अधर मधु, कत मुई हम राखि	९३

तृतीय खंड में सूरश्याम छाप के ७ एवं सूरज छाप के ९ पद हैं। यह खंड सं० १६३९ में लिपिवद्ध हुआ था। अतः स्पष्ट है कि अष्टछापी महाकवि सूर की सूर, सूरदास, सूरश्याम, सूरज ये चार छापें हैं, जैसा कि सूरदास की वार्ता के भाव प्रकाश में लिखा गया है।

(६) सूर के पदों की वास्तविक संख्या

'पद सूरदास जी का' के प्रथम खंड में ७९, द्वितीय खंड में ५४ एवं तृतीय खंड में कुल १२७ पद संकलित हैं। इस प्रकार इसमें कुल २६० पद संकलित होने चाहिए। पर इसमें सूर के वस्तुतः केवल २३५ पद हैं। २५ पद दुहरा उठे हैं। इनका विवरण निम्नांकित है—

(क) प्रथम खंड के दुहराए गए पद		दो	तीन	सभा संख्या
१. स्याम सों तोहि आवतु क्योंब रिसात	३	—	११४	९८४
२. यह सब मेरीयै कुमति	४	४४	—	३००
३. अपनी भगति दै भगवान	५	१५	—	१०६
४. हरि मुख देखत नैन भुलाने	६	—	१०२	२४१६
५. देखि री वाके चंचल तारे	८	—	७	
६. चकई री चलि चरन सरोवर	१०	१६	—	३३७
७. बेगि चलहु प्रिय कुँवर कन्हाई	१४	—	७८	
८. अरे सुत बिनु गोविंद कोउ नाहीं	२०	१४	—	४८३०
९. मेरे गुण औगुण न विचारौ	३३	४१	—	१११
१०. लाल हो या मुख ऊपर वारि डारी	५६	—	७६	
११. जानति हौं जैसी माखनु-चोरी	६०	—	८	
१२. वे दिन बिसरि गयो इहाँ आयो	६१	१०४	—	३२०
१३. ईहा और कासों कहौं गरुड़गामी	८२	९	—	
१४. राज रमणि गावति हरि को जसु	८३	२५	—	४८२९
१५. जीत्यौ जरासिंघ, बंदि छोरी	८४	११	—	
१६. हम पर हितु कीने रहिबौ	१०३	—	१२६	
(ख) द्वितीय खंड के दुहराए हुए पद				
१७. माधौ गज ग्राह ते छुड़ायौ	—	१३	४२	४३०
१८. रे भइया केवट ले उतराई	—	१९	३१०	४८४
१९. तुम्हरौ बचन न मेट्यौ जाइ	—	२२	१२०	
२०. हम न भए वृंदावन की रेनु	—	२३	२०	
२१. ऐसे मोहिं और कौनु पहिचानै	—	२९	२२	
२२. कहि न सकति तुम्हसों इक बात	—	३१	२३	
२३. ठाढ़े हैं रथ चढ़े दुवारे	—	३३	४९	
२४. रे मन छाँड़ि विषय कौ रचिबौ	—	३६	५४	
२५. जन्म जन्म जेहि जेहि	—	३७	५५	

(७) एक समस्या

'पद सूरदास का' के प्रथम खंड का संकलनकाल या प्रतिलिपिकाल ज्ञात नहीं। द्वितीय खंड का संकलनकाल और प्रतिलिपिकाल दोनों १७५० वि० के आस-पास के हैं। प्रथम खंड का प्रतिलिपिकाल भी वही माना जा सकता है। इसके

पश्चात तृतीय खंड आता है। इसका प्रतिलिपिकाल सं० १६३९ है। यहाँ यह प्रश्न उठता है, यह कैसे संभव है? प्रथम दो खंडों का प्रतिलिपिकाल सं० १७५० और तृतीय का सं० १६३९? बात समझ में नहीं आती।

यह समस्या दो ढंगों से सुलझाई जा सकती है—

(१) प्रथम दो खंड एक जिल्द में रहे हों और तृतीय खंड दूसरी जिल्द में। बाद में इन्हें नत्थी करके, एक जिल्द में बांध करके, समग्र पत्रांकन कर दिया गया हो।

(२) तृतीय खंड का भी वास्तविक प्रतिलिपिकाल सं० १७५० के आस-पास ही हो और सं० १६३९ उसकी आदर्श प्रति का प्रतिलिपिकाल या संकलनकाल हो, जो ज्यों का त्यों उतार लिया गया हो और वास्तविक प्रतिलिपिकाल न दिया गया हो।

जो भी हो, यदि हम खंड १ एवं २ को छोड़ दें और केवल खंड ३ लें, तो भी किसी निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचने में कोई बाधा नहीं आएगी। वस्तुतः महत्वपूर्ण अंश यह तृतीय खंड ही है।

८. इस पद संग्रह की उपयोगिता और महत्व

डॉ० प्रभुदयाल जी मीतल के लेख का शीर्षक है 'सूर कृत पदों की सबसे प्राचीन प्रति'। इस पद संग्रह का सूर के पदों का सबसे प्रचीन संग्रह होना स्वयं में महत्वपूर्ण है, पर इसका स्वयं कवि के जीवन काल का होना इसके महत्व को और भी बढ़ा देता है।

डॉ० मीतल इस वैशिष्टय को छोड़ इसमें कोई अन्य वैशिष्टय नहीं देखते, क्योंकि इसमें पदों की संख्या बहुत कम है, पदों का योंही बिना किसी प्रकार के क्रम के संकलन हुआ हैं, न तो राग-क्रम है, न विषय-क्रम है, न कथा-क्रम है। सभी पद बिखरे दाने हैं, परस्पर असंबद्ध। यह पोथी न तो नाम से 'सूरसागर' है, न सूर पदावली। इसे सूर के पदों का संग्रह भी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि इसमें ३५ अन्य भक्तों के भी पद एवं शब्द संकलित हैं। ऐसी स्थिति में इसका कोई असाधारण महत्व नहीं है। इनका तो मत है कि पोथी क्या है—नाम बड़े दर्शन थोड़े।

दूसरी ओर प्रस्तुत पोथी के प्रस्तुत करने वाले लोगों की दृष्टि में इसका महत्व अत्यधिक है। इससे सूरसागर की परंपरा का श्रीगणेश होता है।

मेरी दृष्टि दूसरी है। मैंने भी सूर का अध्ययन किया है। मेरी दृष्टि में दो सूर हैं और दो सूरसागर। इस पोथी के प्रकाशित हो जाने से मेरी विचार-धारा पर थोड़ी सी रोक लगी है और अपने बन रहे विचारों में कुछ संशोधन करना पड़ रहा है—

(१) मैं समझता था कि सूर श्याम और सूरजदास छाप के समस्त पद पूर्णतया सूर नवीन के हैं। पर अब मानना पड़ रहा है कि ये दोनों छापें दोनों सूरों की हैं।

(२) मैं समझता था कि महाकवि सूर के सूर सागर में श्रीकृष्ण जन्म से लेकर भ्रमर गीत तक के ही पद हैं। पर अब मानना पड़ रहा है कि इस घेरे के आगे-पीछे भी उनके कुछ पद अवश्य हैं। आगे के पदों में गज-ग्राह, द्रौपदी, विदुरानी, भीष्म राम संबंधी कतिपय पद हैं और बाद के पदों में द्वारिका लीला संबधी—रुक्मिणी मंगल, सुदामा-चरित, जरासंध-वध से संबद्ध भी कुछ पद हैं।

मुझे अपनी दृष्टि थोड़ी बदलनी पड़ी है। यह अच्छा हुआ कि मेरा कार्य सम्पन्न होने के पहले ही मुझे इस पोथी के मंथन करने का अवसर मिल गया। मेरी दृष्टि से यह पोथी न तो उतनी नगण्य है, जितनी मीतल जी समझते हैं; न उतनी महामहिम है, जितनी इसके प्रकाशक लोग समझते हैं। मेरी दृष्टि जो है, वह सब की दृष्टि नहीं हो सकती और अन्य लोग इसे साधारण पद-संग्रह मात्र समझें तो अश्चर्य नहीं। एक बात यह अवश्य है कि इस पोथी में संकलित सूर के २३५ पदों का कर्तृत्व सुनिश्चित हो जाता है। सभा के सूरसागर में जो पद परिशिष्ट १, २ में संदिग्ध स्वीकृत हैं, उनमें से जो भी दो-एक पद इस संग्रह में आ गए हैं, अब उनका संदिग्धत्व तो मिट जाता है। सूरसागर में मिलने वाले ८ पद अन्य कवियों के नाम से मिले हैं। अब ये पद संदिग्ध की सूची में आ जाते हैं। इस संग्रह के कुछ पद सभा के सूरसागर में नहीं संकलित हैं, अन्यत्र संकलित मिल जाते हैं। अब वे सुनिश्चित रूप से सूरसागर के अंश रूप में स्वीकृत किए जायेंगे। सभा के सूरसागर मे संकलित पदों से इनका तुलनात्मक अध्ययन भी अत्यन्त मनोरंजक है। एक पद में 'सरघा' पाठ मिला है, जो सभा संस्करण में सरधा (श्रद्धा) हो गया है। अर्थ का अनर्थ। 'सरघा' संस्कृत का शब्द है, इसका अर्थ है मधु मक्खी। यही अर्थ समीचीन है।

किसी के लिए यह संग्रह मात्र लोष्ठ है, किसी के लिए यूरेनियम। पर मेरे लिए यह स्वर्णखंड को कसने वाला निकाष सिद्ध हुआ है। इसके प्रस्तुत करने वालों का मैं निश्चय ही आभारी हूं।

५. सूरसागर के दो रूप

सूरसागर में प्रौढ़ और शिथिल दो प्रकार की रचनाओं की ओर प्रारंभ से ही सूर के अध्येताओं का ध्यान गया था। राधाकृष्णदास ने दोहा चौपाइयों को शिथिल मानते हुए इन्हें बाद में स्वयं सूर द्वारा विभिन्न कीर्तन पदों का संयोजक माना। वे लिखते हैं —

"सूरदास जी ने जो सूरसागर नामक ग्रंथ श्री भागवत का आशय लेकर बनाया, वह एक ही समय एक शृंखला से नहीं बनाया, बरंच बहुत दिनों तक बहुत से पद बन जाने पर उन सबों को क्रम से लगाकर और शृंखलाबद्ध करने के लिए और भी दोहा चौपाई आदि कविता रचकर ग्रंथाकार बना दिया है।"

—राधाकृष्ण ग्रंथावली पृ० ४४७-४८

सूरसागर में मिलावट होने की भी बात राधाकृष्णदास जी करते हैं—

"वर्तमान समय में प्रायः लोग अपनी डेढ़ चावल की खिचड़ी पकाते हैं और अपनी नीरस कविता में सूरदास जी का तुलसीदास जी का नाम दे देते हैं। अनपढ़ लोग केवल नाम देखकर उनका आदर करने लगते हैं। ऐसी बहुतेरी कविता इनके (सूरदास के) नाम से प्रसिद्ध है। इनमें से कोई कोई तो बहुत ही प्रसिद्ध हो गई हैं।"

—राधाकृष्ण ग्रंथावली, पृ० ४८६

राधाकृष्णदास जी ने 'बैराग जोग कठिन ऊधो हम न करब हो' को ऐसी ही बाद में जोड़ी प्रसिद्ध रचना माना है और यह भी लिखा है कि बचपन में मैंने भी एक पद रचकर उसमें सूरस्याम छाप डाल दी थी।

आचार्य शुक्ल का भी ध्यान इस मिलावट की ओर गया था। वे लिखते हैं—

"सूरसागर वास्तव में एक महासागर है जिसमें हर एक प्रकार का जल आकर मिला है। जिस प्रकार उसमें मधुर अमृत है, उसी प्रकार कुछ खारा, फीका और साधारण जल भी। खारे फीके और साधारण जल से अमृत को अलग करने में विवेचकों को प्रवृत्त रहना चाहिए।'

—सूरदास, पृष्ठ २०८

डॉ० दीनदयाल गुप्त ने अष्टछाप और वल्लभसंप्रदाय (१९४७ ई०) में सूरसागर के स्वरूप पर विचार करते हुए इसके द्विरूप की बात स्वीकार की है—

"कवि ने सूरसागर भागवत के विषय के अनुसार लिखा। जो पद कीर्तन तथा रागों के विभाजन क्रम के अनुसार लिखे हुए सूरसागर नाम से कहे जाते हैं, वे वास्तव में सूरसागर के पद ही उस क्रम में वैष्णवों ने रख लिए हैं। इसलिए लीला और कथा-क्रम को रखने वाले सूरसागर ही सूर के वास्तविक सूरसागर रूप है।"

"श्रीनाथ जी के मंदिर में कीर्तन रूप से गाए जाने वाले पद केवल श्रृंगार के ही होते हैं। वियोग की भावना मंदिर में नहीं है। प्रातःकाल की मंगलार्ति से लेकर रात्रि की शयन आर्ति तक की सेवा के समयानुकूल कृष्ण की विभिन्न संयोगात्मक ब्रजलीलाओं से संबंधित प्रसंगों पर रागानुसार जो पद सूर द्वारा गाए गए थे और जो अब भी कीर्तनियाओं द्वारा गाए जाते हैं, उनका संग्रह 'कीर्तन सूरसागर' है। और जो पद संग्रह श्री वल्लभाचार्य से सुनी हुई आजकल की कथा के अनुसार भगवान के अनेक अवतारों की, विशेष रूप से कृष्णावतार की, लीलाओं का वर्णन करता है, वह 'प्रबंधात्मक सूरसागर' है। इसमें संयोग-वियोग दोनों भावों से संबंधित लीलाएं हैं। और भागवत का आधार लेकर इसके पद रचे और गाए गए हैं। ये पद सूर ने अपनी कुटी में बैठकर बनाए थे। मंदिर के कीर्तन रूप में गाए हुए संयोगात्मक पद भी इसी में सम्मिलित हैं।

प्रबंधात्मक सूरसागर में अनेक जगह प्रसंगों का वर्णन करते हुए सूरदास ने यह कथन किया है कि वे भागवत के अनुसार कह रहे हैं अथवा भागवत के अनुसार गा रहे हैं और जैसे व्यास जी ने कहा, वही सूरदास के भाषा में।"

—अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय, पृष्ठ २८०।

श्री प्रभुदयाल मीतल सूर निर्णय (१९४९ ई०) में लिखते हैं कि काशी नागरी प्रचारिणी सभा को प्रथम से द्वादश स्कंध वाले संस्करण की सबसे ज्यादा प्राचीन प्रति सं० १७५३ की लिखी हुई काशी से प्राप्त हुई है। इसी प्रकार केवल दशम पूर्वार्द्ध वाले संस्करण की एक प्राचीन प्रति वि० सं० १६९७ की उदयपुर में है। इस प्रकार सूरसागर के दो रूप बहुत पहले से मिलते आ रहे हैं। हाँ द्वादश स्कंधात्मक रूप परवर्ती है। वे इस संबंध में पुनः लिखते हैं[२]—

"संभव है ये दोनों संग्रह प्रारंभ में भिन्न-भिन्न रूप में लिखे जाते हों और

पीछे किसीने उन्हें एक कर दिया हो, जो आज द्वादश स्कंधात्मक और दशम पूर्वार्द्ध के रूप में उपलब्ध होते हैं।"

—सूर निर्णय, पृष्ठ १६३

सबसे पहले प्रभुदयाल जी मीतल ने 'अष्टछाप परिचय' (१९५० ई०) में सूरसागर के द्वादश स्कंधात्मक एवं लीलात्मक संस्करणों का इन नामों से उल्लेख किया और कहा—

"ऐसा ज्ञात होता है कि लीलात्मक संकलन सूरदास के समय में ही हो गया था, किंतु द्वादश स्कंधात्मक संकलन इसके पश्चात् किया गया है।"

"ये संकलन किसने किए, इसके विषय में निचिश्त रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता।"

—अष्टछाप परिचय, पृष्ठ १४८

'सूर सर्वस्व' (१९८३ ई०) में मीतल जी ने पुनः लीलात्मक एवं स्कंधात्मक संस्करणों की विस्तृत चर्चा की है और दोनों प्रकार के संस्करणों के विभिन्न स्थानों में प्राप्त क्रमशः ४२ एवं ४३ हस्तलेखों की तालिका प्रस्तुत की है।

स्कंधात्मक रूप की प्राचीनतम प्राप्त प्रति सं० १७४० की है। यह मथुरा के नटवरलाल चतुर्वेदी की प्रति है।

सूर सर्वस्व में १७४० के पहले के १८ हस्तलेखों का विवरण दिया गया है जो १६२९ से लेकर १७१८ वि० तक के हैं। सभी छोटे-छोटे संग्रह हैं, जिनमें पदों की संख्या कुछ सैकड़ों में ही है।

इन सूचियों से ही स्पष्ट है कि स्कंधात्मक संस्करण परवर्ती संकलन है। लीलात्मक प्रतियों में पदों की संख्या दो हजार से भी कम होती है, जबकि स्कंधात्मक प्रतियों में ५ हजार तक पद मिल जाते हैं। सभी लीलात्मक प्रतियाँ नागरी लिपि में मिलती हैं। कुछ स्कंधात्मक हस्तलेख फारसी, गुरुमुखी एवं कैथी अक्षरों में भी मिलते हैं।

"स्कंधात्मक प्रतियों में नवम एवं दशम स्कंधों के अतिरिक्त अन्य स्कंधों में जो कथाएँ चौपाई छंदों में वर्णित हैं, वे प्रायः सभी प्रक्षिप्त हैं। इन्हें सूरदास की अपेक्षा अन्य ऐसे व्यक्तियों द्वारा रचा गया है, जिन्हें न तो व्रजभाषा का समुचित ज्ञान था, और न जिनमें काव्य एवं संगीत संबंधी प्रतिभा ही थी। वैसे उनका उद्देश्य

बुरा नहीं था। उन्होंने गुप्त दानियों की भाँति अपना कृतित्व सूरदास के लिए समर्पित कर दिया है। इससे सूर के प्रति उनकी अहेतुकी आस्था को समझा जा सकता है, किंतु उनके इस कार्य ने सूर की छवि को धूमिल कर दिया है। इसीलिए समीक्षकों को कहना पड़ा है कि सूर के सागर में जहाँ मूल्यवान रत्न है, वहाँ निरर्थक सीप-घोंघे और कंकड़-पत्थर भी हैं। किंतु इन्हें पूरी तरह निकाल फेंकना भी आसान नहीं है। यदि हम सूर-सम्मत सूरसागर चाहते हैं, तो वह प्रक्षिप्त एवं भरती की रचनाओं से रहित उत्सव-क्रम का लीलात्मक ही हो सकता है।''

—सूर सर्वस्व, पृष्ठ १९९

सूरसागर के लीलात्मक एवं स्कंधात्मक इन दोनों स्वरूपों पर डा० ब्रजेश्वर वर्मा ने 'महाकवि सूर : एक पुनर्श्चितन' में तथा डा० रमाशंकर तिवारी ने 'सूर की काव्य माधुरी' नामक ग्रंथों में पर्याप्त विचार किया है। इसी प्रकार श्री उदयशंकर शास्त्री ने सूर ग्रंथावली पंचम खंड के अपने लेख 'सूर सागर की सामग्री का संकलन और उसका संपादन' में तथा डा० सत्येन्द्र ने 'हिन्दुस्तानी' के सूर विशेषांक (जनवरी दिसंबर १९७८) में प्रकाशित अपने लेख 'सूर का कृतित्व : सर्वेक्षण एवं प्रामाणिकता' में इस पर विचार किया है। सबका निष्कर्ष यही है कि सूरसागर का लीलात्मक स्वरूप सूर के समय से ही मिलने लगता है और स्कंधात्मक स्वरूप इसके प्रायः १०० वर्ष बाद से मिलना शुरू होता है।

इन विद्वानों ने अधिक से अधिक यह कहा है कि सूरसागर के दो रूप मिलते है। लीलात्मक रूप सूर सागर का मूल रूप है; स्कंधात्मक रूप लीलात्मक रूप की लीलाओं को चौपाई-बद्ध पदों से जोड़कर और कुछ शिथिल पदों को जोड़कर श्रीमद्भागवत के अनुसार द्वादश स्कंधों में बदलकर प्रस्तुत किया गया है। ये संयोजक तत्व प्रक्षेप हैं। उनके अनुसार प्रक्षेप बहुत अधिक नहीं हैं। वे सूरसागर की समग्र पद-सामग्री को प्रायः एक ही समझते हैं, जो दो रूपों में मिलती है।

दो सूरसागर

राग कल्पद्रुम के अंतर्गत प्रकाशित सूर सारावली के आदि में इसे "अथ श्री सूरदास जी कृत सूरसागर सारावली तथा सवा लाख पदों का सूचीपत्र" कहा गया है। पुस्तिका में पुनः कहा गया है "इति सूरदास जी कृत संवत्सर लीला तथा सूर सारावली तथा सवा लाख पद के सूचीपत्र समाप्तम।" एक बार पुनः पृष्ठ ४४ पर "सूरसागरस्य सूर सारावली समाप्तम" कहा गया है।

इससे स्पष्ट है कि सूरसागर सारावली का संबंध सूरसागर से अवश्य है। सामान्यतया यह ग्रंथ सूर सारावली नाम से ही प्रसिद्ध है। यही नाम ग्रंथ के भीतर उल्लिखित है—

१. ता दिन ते हरि लीला गाई, एक लक्ष पद बंद
ताकौ सार 'सूर सारावलि, गावत अति आनंद। ११०३

[जिस दिन गुरु वल्लभ ने लीला-भेद बताया, उसी दिन से मैंने एक लक्ष्य से पदों में हरि-लीला-गान शुरू किया। इन्हीं हरि-लीला-पदों का सार यह सूर सारावली है।]

२. धरि जिय नेम 'सूर सारावलि', उत्तर दक्षिण काल
मन-वांछित फल पावै, गावै मिटै जन्म जंजाल। ११०५

[भगवान ने कहा—जो नियम पूर्वक इस सूर सारावली को सदैव हृदय में धारण करेगा, वह मनवांछित फल पावेगा और जन्म-मरण के बंधन से मुक्त हो जायगा।]

वस्तुतः ग्रंथ का पूर्ण नाम 'सूरसागर-सारावली' ही है, जो त्वरा में संक्षिप्त होकर 'सूर सारावली' हो गया है।

स्पष्ट है कि इस दूसरे सूर ने एक लक्ष से जो हरि लाला के पद गाए थे, उसका भी नाम 'सूर सागर' था। इसी दूसरे सूरसागर का सार सूर सारावली है। यह अष्टछापी महाकवि सूर के सूर सागर का सार नहीं है, सूर नवीन के सूर सागर का सार है। सूर के अध्येता विद्वान यह तो जानते हैं कि सूरसागर के दो रूप हैं लीलात्मक और स्कंधात्मक। पर उनका खयाल है कि दोनों की पद-सामग्री एक ही है, केवल क्रम-भेद है। पर ऐसा है नहीं। मेरी समझ से लीलात्मक सूरसागर की सामग्री स्कंधात्मक सूरसागर की सामग्री से नितांत भिन्न है। एक के पद दूसरे में नहीं दुहराए गए हैं और दोनों के विषय-विस्तार में भी अत्यंत विभेद है।

महाकवि सूर श्रीनाथ जी के मंदिर के कीर्तनियाँ थे। मंदिर में उनके द्वारा गाए गए कीर्तन-पदों का संग्रह ही उनका सूरसागर है। ये कीर्तन पद कृष्ण लीला संबंधी ही हैं। इनमें गोकुल लीला, वृंदावन लीला, मथुरा लीला और भ्रमर गीत तथा विनय के पद ही सन्निविष्ट हैं। इनमें भगवान के शेष तेईस अवतारों संबंधी पदों का मिलना तो दूर, कृष्ण की भी द्वारिका-लीला वाले पद भी कम ही हैं। एक

तरह से इसमें दशम स्कंध पूर्वार्द्ध संबंधी ही कीर्तन-पद हैं। इस सूरसागर का प्रतिनिधि मुद्रित संस्करण कृष्णानंद व्यासदेव रमासागर कृत राग कल्पद्रुम चतुर्थ खंड के अंतर्गत प्रकाशित सूरसागर है जिसका प्रतिरूप नवकाकिशोर प्रेस लखनऊ वाला सूरसागर है। रागसागर के इस संस्करण के आधार-हस्तलेख का कोई विवरण प्राप्त नहीं। इसमें भी दोनों सूरों की रचना का घालमेल है।

सूरसागर का स्कंधात्मक संस्करण श्रीमद्भागवत के अनुसार द्वादश स्कंधों में विभक्त है। इसमें चौबीस अवतारों की कथा वर्णित है, जो शुकदेव द्वारा परीक्षित को सुनाई गई है। इसका भी मुख्यअंश कृष्णलीला ही है। इसमें कृष्ण की व्रजलीला, मथुरा लीला के साथ-साथ द्वारिकालीला भी है। सूर नवीन की दृष्टि अन्य अवतारों के लीलावर्णन में उतनी नहीं रमी है, जितनी कृष्णलीला में।

महाकवि सूर का सूरसागर योजनावद्ध विरचित ग्रंथ नहीं है, वह कृष्ण-कीर्तन सम्बन्धी पदों का संग्रह मात्र है, पर सूर नवीन का सूरसागर उसी प्रकार योजना-वद्ध विरचित काव्य है, जिस प्रकार उसके अन्य ग्रंथ 'साहित्य लहरी' एवं 'सूरसागर सारावली' हैं।

पुराने हस्तलेखों में अज्ञानवश दोनों सूरसागरों को मिलाकर जो घालमेल पैदा कर दिया गया था, उसे सूरसागर के विद्वान सम्पादकों ने सुरक्षित तो रखा ही, इसे निरंतर प्रवर्द्धित भी करते गए हैं, अधिक से अधिक पद एकत्र करने की प्रवृत्ति बढ़ती गई है क्योंकि सबकी दृष्टि 'एक लक्ष पद-बंद' पर थी, जो कभी भी पूर्ण होने वाला नहीं, क्योंकि सवा लाख या एक लाख पद लिखे ही नहीं गए। हाँ, इनकी संख्या हजारों में अवश्य है।

इस प्रकरण में मेरे निष्कर्ष निम्नांकित हैं—

(१) सूर सारावली जिस सूर सागर का सार-संक्षेप है, वह सूर सारावली और साहित्य लहरी के रचयिता, चंद्रवरदाई के वंशज ब्रह्मभट्ट सूरजदास की रचना है और महाकवि सूरदास के सूरसागर से भिन्न एक अन्य परवर्ती सूरसागर है।

(२) महाकवि सूरदास का सूरसागर पहले फुटकर कीर्तन पदों का संग्रह मात्र था। उनके ही जीवनकाल के अंत में उसे कृष्ण लीला के क्रम से उपस्थित कर दिया गया। इसी को सूरसागर का लीलात्मक रूप कहते हैं। यह रूप देने वाले—सम्पादक दूसरे ही लोग हैं। इसे केवल 'लीलात्मक न कहकर 'कृष्ण-

लीलात्मक' कहना अधिक उपयुक्त होगा, क्योंकि इस नाम से इसकी विषय वस्तु का भी संकेत मिल जाता है।

(३) सूर सागर का स्कंधात्मक रूप स्वतंत्र रचना है, योजनाबद्ध रचना है, महाकवि सूर के कीर्तन पदों का ही एक अन्य क्रम नहीं है। इसके पद महाकवि सूर के पदों से नितांत भिन्न हैं। स्कंधात्मक सूरसागर सूर नवीन की रचना है।

(४) कालांतर में सं० १७४० के बाद दोनों सूरसागरों का किसी ने घालमेल कर दिया। वर्तमान स्कंधात्मक सूरसागर में महाकवि सूर का कृष्ण लीलात्मक सूरसागर अंतर्भूत हो गया है और अब दोनों सूरसागरों को अलग कर पाना श्रमसाध्य तो है ही, साथ ही पूर्ण निश्चयात्मक भी नहीं है।

ग. सूरसागर की शल्य-क्रिया

वर्तमान सूरसागर में महाकवि सूरदास के लीलात्मक सूरसागर एवं सूर नवीन के स्कंधात्मक सूरसागर का क्षीर नीर सा विलीनीकरण हो गया है। मैंने दोनों सूरसागरों को अलग-अलग करने का प्रयास किया है। जिन सिद्धांतों के आधार पर मैंने यह पृथक्करण किया है, उनका विवरण यहाँ दे देना समीचीन प्रतीत होता है।

१. नवल किशोर प्रेस लखनऊ वाले लीलात्मक सूरसागर के आधार पर सिद्ध है कि इसमें केवल दशम स्कंध पूर्वार्द्ध हैं। अन्य स्कंध नहीं हैं। अतः स्कंध १-९, दशम स्कंधउत्तरार्ध, स्कंध ११, १२ को मैंने सूर नवीन के खाते में पूर्ण रूप से डाल दिया है। कुछ लोग नवम स्कंध के राम चरित सम्बन्धी पदों को महाकवि सूर की रचना समझने का मोह करते हैं। पर शल्यक्रिया में मोह को स्थान नहीं है। महाकवि सूर के भी रामकथा सम्बन्धी कुछ पद अवश्य प्राप्त हैं।

२, साहित्य लहरी के कवि परिचय वाले पद से स्पष्ट है कि इसके कवि का वास्तविक नाम सूरजचंद था। यही सूरजचंद सूरसागर के प्रायः तीन सौ पदों में 'सूरज' या 'सूरजदास' छापों से उपस्थित हैं। इन दोनों छापों से युक्त पदों को मैंने सूर नवीन के खाते में डाल दिया है। सूरज-छाप वाले कुछ ही पद महाकवि सूरदास के हैं।

३. इसी प्रकार साहित्य लहरी के कवि-परिचय वाले पद से ज्ञात होता है कि भगवान कृष्ण ने सूरजचंद का एक नाम सूर श्याम भी रख दिया था।

चौरासी वैष्णवन की वार्ता के १७५२ वाले हस्तलेख से सूरसागर में कृष्ण द्वारा सूर स्याम छाप के पचीस हजार पदों के मिलाए जाने वाली बात सिद्ध होती है। इसका अर्थ इतना ही है कि सूर श्याम छाप वाले पद महाकवि सूर के नहीं हैं, सूर नवीन के हैं। अतः सूर श्याम छाप वाले लगभग ११०० पदों को मैंने सूर नवीन के खाते में डाल दिया है। सूर श्याम छाप वाले भी कुछ पद महाकवि सूर के हैं।

४, चौपाई छंदों में विरचित पदों को सूर के अध्येताओं ने बाद की जोड़-तोड़ माना है, क्योंकि ये नीरस, शिथिल, गद्यवत हैं। मैंने चौपाई या चौपई छंदों में विरचित राग विलावल में गेय समस्त पदों को सूर नवीन के खाते में डाल दिया है।

५. सूरसागर में दोहों में भी अनेक पद हैं। कुछ पदों के दोहे प्रायः अपने शुद्ध रूप में हैं। यथा—

गैल न छाँड़ै साँवरो, क्यों करि पनघट जाउँ
इहिँ सकुचनि डरपति रहौं, धरै न कोऊ नाउँ।
जित देखौं तित देखिये, रसिया नन्दकुमार
इत उत नैन चुराइ कै, पलकनि करत जुहार २

—पद १०४३/२०६१

सूरसागर में दोहों के बहुविध प्रयोग मिलते हैं। यथा—

(क) निकसि कुँवर खेलन चले, रँग होरी
मोहन नंद किसोर, लाल रँग होरी
कंचन माँट भराइ कै, रँग होरी
सौंधें भरचौ कमोर, लाल रँग होरी २८६६।३४८४

यह दोहा ही है—

निकसि कुँवर खेलन चले, मोहन नंदकिसोर
कंचन माँट भराइ कै, सौंधैं भरचो कमोर

(ख) इसी प्रकार दूसरा उदाहरण लें—

या गोकुल के चौहटै, रँगभीजी ग्वालिनि
हरि सँग खेलैं फाग, नैन सलोने रीं रंगरँची ग्वालिनि

डरति न गुरुजन लाज कौं, रँगभीजी ग्वालिनि
मोहन कैं अनुराग, नैंन सलोने री रँगरांची ग्वालिनि

२८६७।३४८५

इसमें यह दोहा है—

या गोकुल के चौहटैं, हरि सँग खेलैं फाग
डरति न गुरुजन लाज कौं, मोहन कैं अनुराग

(ग) खेलत हैं अति रसमसे, रँगभीने हो
अति रस केलि विलास, लाल रँगभीने हो
जागत सब निसि गत भई, रँगभीने हो
भले जु आए प्रात, लाल रँगभीने हो

शुद्ध रूप में दोहा यों हुआ—

खेलत हैं अति रसमसे, अति रस केलि विलास।
जागत सब निसि गत भई, भले जु आए प्रात॥

(घ) पद २८६४।३४८२ में दोहा के हर दल के आगे 'मनोरा झूमक रो' जोड़ दिया गया है। इसमें कुल ११ दोहे हैं।

गोकुल-सकल गुवालिनी, घर घर खेलत फाग, मनोरा झूमक रो।
तिनमैं राधा लाड़िली, जिनकौ अधिक सुहाग, मनोरा झूमक रो।

(ङ) मानौ ब्रज तैं करिनि चलि, मदमाती हो।
गिरिधर गज पै जाइँ, ग्वालि मदमाती हो।
कुल अंकुस मानैं नहीं, मदमाती हो।
संकर-बेद तुराइ, ग्वालि मदमाती हो—२८६२।३४८०

शुद्ध दोहा यों है—

मानौ ब्रज तैं करिनि चलि, गिरिधर गज पै जाइँ।
कुल-अंकुस मानैं नहीं, साँकर वेद-तुराइ।

(च) कभी कभी विषम चरणों के अंत में दो मात्राएँ बढ़ाकर अधिक दोहा बना दिया गया है, यथा—

मोर मुकुट कछनी कसे (री), पीतांबर कटि सोभ ।
नैंन चलावै फेरि कै (री), निरखि होत मन लोभ ।

—२८७४।३४९२

और कभी कभी सम चरणों के आदि में दो मात्राएं जोड़ दी गई है, यथा—

हम तुमसौं विनती करैं, (जनि) आँखिनि भरो गुलाल ।
सह्यौ परत हम पैं नहीं, (तेरो) निपट अनोखौ ख्याल ।

२८८२।३५००

शुद्ध दोहे हों या उनके अन्य बहुविध रूप हों, सभी सूर नवीन कृत हैं। इन्हें मैंने सूर नवीन के खाते में डालना ही उचित समझा है। हाँ, सूरपचीसी वाला पद महाकवि सूर का ही है।

(६) सूरसागर में अनेक ऐसे छंद हैं, जो शुद्ध न होकर संकर हैं, जिनमें दो दो छंदों का मिश्रण हैं। उदाहरण के लिए पद ५८६।१२०७ और ११७५।१७९३, ३०९०। ३७०८ लें। इनमें पहले दो दो चरण रोला के हैं, तदनंतर दोहा है—

तब पठयौ ब्रज दूत, सुनी नारद मुख बानी ।
बार-बार रिषि काज, कंस अस्तुति मुख बानी ।।

धन्य धन्य मुनिराज तुम, भलौ मंत्र दिय मोहि ।
दूत चलायौ तुरत हीं, अबहिं जाइ ब्रज होहि ।।

इसी प्रकार के पद वे है जो नंददास के भँवर गीत में प्रयुक्त हैं। दो चरण रोला के, दो दल दोहा के, तदनंतर १० मात्राओं का पुछिल्ला। यथा—

नब सत साजि सिंगार, अंग पाटंबर सोहैं ।
इक तैं एक अनूप, रूप त्रिभुवन मन मोहैं ।।

इंदा विंदा राधिका, श्यामा कामा नारि ।
ललिता अरु चंद्रावली, सखिनि मध्य सुकुमारि ।।

सबै व्रजनागरी १६१८।२२३६

नंददास का अनुकरण करने में पूर्ववर्ती होने के कारण महाकवि सूर की हेठी हो सकती है, पर परवर्ती होने से सूर नवीन की कोई हेठी नहीं होती।

(७) कवित सवैयों का प्रचलन सं० १६४० के आसपास से होता है। सूरसागर में अनेक कबित्त मिलते हैं, जैसे —

अरुझी कुंडल लट, बेसरि सौं पीत पट,
बनमाल बीच आनि, उरझे हैं दोउ जन
प्राननि सौं प्रान, नैन नैननि अँटकि रहे,
चटकीली छवि देखि, लपटात श्याम घन
होड़ा होड़ी नृत्य करैं, रीझि रीझि अंक भरैं,
ताता थेई थेई उघटत है हराषि मन
सूरदास प्रभु प्यारी, मंडली जुवति भारी,
नारि कौ अंचल लै लै, पोंछत हैं स्रमकन

—सूरसागर ११४९।१७६७

मैंने सभी कवित सवैये सूर नवीन के खाते में डाल दिया है। इनमें स्पष्ट ही रीतिकाल का स्वर अनुगूंजित है।

(८) सूर नवीन ने कूटों में साहित्य लहरी की रचना की है। सूर सारा-वली में भी कूट हैं। अतः सूर नवीन की कूट-प्रियता स्पष्ट है। सुर सागर में भी सौ के लगभग कूट हैं। सूर नवीन की कूट-प्रियता को देखते हुए मैंने सूरसागर के इन कूटों को भी इन्हीं सूर नवीन की रचना मान लिया है। वैसे महाकवि सूर में भी कूट का कियदंश होना अस्वीकार नहीं किया जा सकता। कूटों की परंपरा किंचित अंश तक पहले से चली आ रही थी। हो सकता है कुछ हलके फुलके छोटे-छोटे कूट महाकवि सूर के भी हों, जिनसे प्रेरणा लेकर सूर ने अपना कूट-महल निर्मित किया है। दो चार ऐसे कूटों को छोड़ शेष समस्त कूटों को मैंने सुर नवीन का ही स्वीकार किया है। कुछ हलके-फुलके कूट जो महाकवि सूर के हैं, निम्नांकित हैं—

(क) पद १६९।७८७ में मुरारि के वाल-वेष का वर्णन हैं। इसमें १४ चरण है। केवल तेरहवें चरण के एक अंश में कूट है—

त्रिदस-पति-पति-असन कौं, अति जननि सौं करे आरि
त्रिदस = देवता। त्रिदस-पति = इंद्र। त्रिदस-पति-पति = गिरिधर कृष्ण।

(ख) देखौं माई दधि-सुत मैं दधि जात

एक अचंभो देखि सखी री, रिपु मैं रिपु जु समात
दधि पर कीर, कीर पर पंकज, पंकज के द्वै पात

यह सोभा देखत पसु-पालक, फूले अँग न समात १७२।७९०
दधि-सुत = समुद्र का बेटा चंद्रमा = चंद्रमा रूपी मुख।

रिपु मैं रिपु जु समात = मुख रूपी चंद्र में, कर रूपी कमल प्रविष्ट हो रहा है। कमल और चंद्र मैं अमैत्री भाव है, दोनों परस्पर रिपु हैं।

तृतीय चरण में रूपिकातिशयोक्ति हैं। कीर = शुक, चोंच के समान नासिका। पंकज = कमल के समान नेत्र। पंकज के द्वै पात = पंखड़ी के समान दोनों पलकें।

(ग) दधि-सुत जामे नंद-दुवार १७३।७९१

आठ चरणों के इस पद में केवल 'दधि-सुत' में कूट है। यहाँ दधि-सुत का अर्थ है मोती।

(घ) सखि री नंद-नंदन देखु १७०।७८८, पद में कुल १२ चरण हैं। सातवें चरण में कूट है।

स्वाति-सुत-माला विराजत, श्याम तन इहि भाइ
स्वाति-सुत = मोती।
इस प्रकार कुछ कूट महाकवि सूर के भी हैं।

(९) सूरसागर में एक ही कथा पहले गेय पदों में वर्णित है, फिर प्रबंध रूप में वही कथा दुहरा दी गई है। यह तथ्य सूर के अध्येताओं के विस्मय का कारण है। सूर नवीन गेय पदों के अतिरिक्त इन लघु प्रबंधों के भी रचयिता हैं। मैंने ऐसे समस्त लघु प्रबंध सूर नवीन के खाते में डाल दिए हैं।

(१०) सूर नवीन ने सूर सारावली की रचना करके अपनी प्रबंधप्रियता प्रमाणित कर दी है। यह फुटकरिया कवि ही नहीं हैं, योजनावद्ध काव्य-रचयिता भी हैं। योजना-वद्धता का प्रमाण साहित्य लहरी तो है ही, स्कंधात्मक सूरसागर भी है। सूर सागर में पदों में भी यत्र-तत्र सुष्ठु कथा-योजना है। मैं ऐसी समस्त पद-वद्ध कथाओं को सूर नवीन की कृति मानता हूँ। मैं यह नहीं मानता कि सूर-सागर का प्रामाणिक रूप कोई गीति-वद्ध-पद-कथा है। जहाँ ऐसी कथाएं हैं, वहाँ अनेक पदों में सूरजदास और सूरश्याम छाप भी मिलती है, जो इन अध्येताओं के विस्मय का कारण है। वे इन कथाओं को महाकवि सूर की रचना मान बैठे हैं, इसीलिए यह विस्मय है। वस्तुतः ऐसी सभी रचनाएँ सूर नवीन की हैं। महाकवि सूर की रचनाएँ विशुद्ध, निर्मल, कांतिमान, पानिपयुक्त, मौक्तिक माला हैं।

(११) इस शल्य-क्रिया में कुछ आधार भाषा का भी लिया गया है। सूर

नवीन अकबरी दरबार में गायक रह चुके थे। अतः यह फारसी के संपर्क एवं संस्पर्श में आ चुके थे। वैसे अरबी फारसी के शब्द मुसलमानों के भारत आगमन के साथ ही हिंदी में अपनी घुस-पैठ बनाने लगे थे और कुछ तो इतने सामान्य हो गए हैं कि इन्हें विदेशी समझने का भ्रम तक नहीं होता। फिर भी सूरसागर के पदों में यत्र-तत्र अप्रचलित या अति-अल्प प्रचलित अरबी फारसी के शब्द आ गए हैं। ये सब अकबरी दरबार के प्रभाव हैं। ऐसे पदों में से एक लें—

हरि हौं ऐसो 'अमल' कमायौ
'साबिक जमा' हुती जो जोरी, 'मिनजालिक' तल ल्यायौ
'वासिल बाकी', 'स्याही मुजमिल', सब अधर्म की बाकी
चित्रगुप्त सु होत 'मुस्तौफी', सरन गहूँ मैं काकी
'मोहरिल' पाँच साथ करि दीने, तिनकी बड़ी बिपरीति
'जिम्मे' उनके, माँगैं मोतैं, यह तो बड़ी अनीति
पाँच पचीस साथ अगवानी, सब मिलि काज बिगारे
सुनो 'तगीरी' बिसरि गई सुधि, मो तजि भए नियारे
बढ़ो तुम्हार 'बरामद' हूँ को, लिखि कीनो है 'साफ'
सूरदास की यहै बीनती, 'दस्तक' कीजै 'माफ'। १४३

ऐसा ही यह पद भी है—

साँचो सो लिखहार कहावै
काया-ग्राम 'मसाहत' करि कै, 'जमा' बाँधि ठहरावै
मन-महतो करि 'कैद' अपने में, ज्ञान-'जहतिया' लावै
माँड़ि माँड़ि खरिहान क्रोध को, 'पोता' भजन भरावै
बट्टा काटि 'कसूर' भरम को, 'फरद' तले लै डारे
निहचै एक 'असल' पै राखै, टरै न कबहूँ टारे
करि 'अवारजा' प्रेम प्रीति को, 'असल' तहाँ 'खतियावै'
दूजे 'करज' दूरि करि दैयत, नैंकु न तामैं आवै
'मुजमिल' जोरै ध्यान 'कुल्ल' को, हरि सौं तहं लै राखै
निर्भय रूपै लोभ छाँड़ि कै, सोई 'बारिज' राखै
'जमा' 'खरच' नीकै करि राखै, लेखा समुझि बतावै
सूर आयु 'गुजरान' 'मुसाहिब', लै 'जवाब' पहुँचावै। १४२

पद १३७२/१९९० में एक शब्द 'गोसमावल' आया है—

पाग ऊपर 'गोसमांवल', रँग रंग रची बनाइ

यह दोहा है। 'ऊपर' को 'उपर' पढ़कर गति ठीक की जा सकती है। 'गोसमावल' फारसी का तद्भव शब्द है। इसका तत्सम रूप है 'गोशमायल'। 'गोश' का अर्थ है—कान। 'मायल का अर्थ है—मिला हुआ। 'गोश' और 'मायल' अपने यौगिक रूप में एक नया अर्थ देते हैं—पगड़ी में लगी हुई मोतियों की लड़ी, जो लटककर कान से मिल रही हो या कान को छू रही हो।

मैं इस या ऐसे ही अन्य पदों को सूर नवीन की संपत्ति स्वीकार करता हूं।

(१२) कभी-कभी एक ही पदावली या पद दो-दो तीन-तीन पदों में एक रूप में ही दुहरा या तेहरा उठा है। ऐसी स्थिति में ये दोनों या तीनों पद एक ही कवि के माने गये हैं। यथा—

(क) १. भई जाइ वै स्याम सुहागिनि, बड़भागिनि कहवावैं
सूरदास वैसी प्रभुता तजि, हम पै कब वै आवैं। २४०५/३०२३

२. धन्य धन्य अंखियाँ बड़भागिनि

× × ×

सूर श्याम अति बिवस भए हैं, कैसे रहत लुभाने। २४०६/३०२४

३. ये अँखियाँ बड़भागिनी, जिनि रीझे श्याम

× × ×

सूरदास जो संग रहैं, तेऊ मरैं झाँखि। २४०७/३०२५

तीनों पदों में 'बड़भागिनी' आँखों के लिए प्रयुक्त है। पद २४०५, २४०७ में कवि छाप 'सूरदास है और २४०६ में सूरस्याम। अत: तीनों को सूर नवीन कृत स्वीकार किया गया है। यदि तीनों पदों में सूर या सूरदास छाप होती, तो इन्हें महाकवि सूरदास की ही रचना स्वीकार किया गया होता।

(ख) (i) इन नैननि सों री सखी मैं मानी हारि

× × ×

सूरज० प्रभु जहँ जहँ रहैं, तहँ तहँ ये संग। २३८७/३००५

(ii) इन नैननि सों मानी हारि

× ×

सूरदास लोभिनि के लीने, सिर पर सही जकत की गारि २३८८/३००३

'मानी हारि' की आवृत्ति के कारण मैं इन दोनों पदों को एक ही कवि सूरजदास की रचना मानता है, यद्यपि दूसरे पद में कवि छाप सूरदास है।

(१३) इसी प्रकार कभी-कभी शब्द-विकृति के सहारे पद पृथक्करण में सहायता मिली हैं। सूर नवीन ने शब्दों का अंग-भंग करने में निष्ठुरता, निर्दयता, निर्ममता नहीं मानी है—

(i) आपुहिं खात, प्रसंसत आपुहिँ, माखन रोटी बहुत 'प्रियो'। १६८/३८६
(ii) सूरज प्रभु की लहै जु जूठनि, लारनि ललित 'लपोटी'। १६४/७८२
(iii) मुक्तमाल विसाल उर पर कछु कहौं 'उपमाइ'। २३४/८५२
(iv) आपुन खात, नंद मुख नावत, सो छवि कहत न 'बनिया'। २३८/८५६
(v) सूर स्याम लए जननि खिलावति, हरष सहित मन 'मोदा'। २३९/८५७

अंग भंग प्रायः तुकों में हुआ है। 'विनती' को 'बीनती' कर देना सूर नवीन के लिए सहज है।

(१४) कभी कभी रागोल्लेख के सहारे भी पृथक्करण किया गया है।

इस पृथक्करण के सहारे मैंने पाया है कि सूरसागर के वर्तमान रूप में महाकवि सूर का कर्तृत्व एक तिहाई और सूर नवीन का दो तिहाई है—ठीक दूना।

६. सूर के चित्र

सूरदास का प्रथम प्रचारित चित्र काशी नागरी प्रचारिणी सभा का है। यह चित्र सभा के प्रकक्ष में अन्य कवियों के चित्रों के साथ लगा हुआ है। सूर संबंधी ग्रंथों में पहले यही चित्र लगा रहता था। यह चित्र कितना प्रामाणिक है, नहीं कहा जा सकता।

स्वर्गीय डा० वासुदेव शरण अग्रवाल ने किसनगढ़ राज्य की चित्रशाला में सूरदास का एक चित्र देखा था। उन्होंने इसकी अनुकृति कराई थी, जो राष्ट्रीय संग्रहालय दिल्ली में सुरक्षित है। इसकी अनुकृति भारत कला भवन काशी में भी है। डा० अग्रवाल ने इस चित्र का प्रचार सूर के प्रामाणिक चित्र के रूप में किया। इन्होंने इस चित्र के आधार पर एक बड़ा तैल चित्र मथुरा के व्रज साहित्य मंडल के लिए तयार कराया था। यह चित्र अब भी वहाँ सुरक्षित है। जब मीतल जी को अपने सूर संबंधी ग्रंथों में सूर का प्रामाणिक चित्र देने की आवश्यकता प्रतीत हुई, तब इसी चित्र का उपयोग किया गया। १९५१ ई० से मीतल जी के सूर संबंधी

ग्रंथों में यही चित्र आ रहा है। यही चित्र सूर स्मारक मंडल आगरा से प्रकाशित 'सूर सौरभ' के मुख पृष्ठ पर भी आ रहा है।

द्वारकादास परीख ने जलालपुर (गुजराती) के एक मकान की भीत पर अंकित सूर के चित्र की अनुकृति तैयार कराई थी। इसमें सूर के साथ कुंभनदास, कृष्णदास अधिकारी, परमानंददास के भी चित्र हैं। वे सभी गो० विट्ठलनाथ के सामने करबद्ध मुद्रा में खड़े हैं। सूर का यह चित्र आचार्य पंडित सीताराम चतुर्वेदी ने सूर ग्रंथावली में दिया है। चतुर्वेदी जी और डा० गोवर्धननाथ शुक्ल इसे सूर का प्रामाणिक चित्र मानते हैं। राय कृष्णदास, उनके पुत्र राय आनंदकृष्ण और डा० जय सिंह नीरज इसे १८वीं शती का काल्पनिक चित्र मानते हैं।

इधर डा० जय सिंह नीरज ने 'राजस्थानी चित्रकला और हिंदी कृष्णकाव्य' पर शोध करके डाक्टरेट की उपाधि प्राप्त की है। उन्होंने मेवाड़ शैली में चित्रित सूरसागर के पदों की अच्छी छानबीन की है। इन चित्रों में नीचे एक अंश में सूर के विभिन्न चित्र भी हैं। सबसे पुराना चित्र सं० १६५० का है। यह 'अपुनपौ आपुन ही विसरयो' पद पर है। यह चित्र 'उत्तर प्रदेश' मासिक के वर्ष ८, अंक १२, मई १९८० में छपा। मूल चित्र जयपुर में कुँ० संग्राम सिंह के संग्रह में था, जो अब वहाँ से कहीं स्थानांतरित हो गया है। डा० नीरज ने इसकी पारदर्शी बनवाई थी, जो उनके पास है। सूर के अन्य चित्र १६५० के बाद के हैं।

'सूर सौरभ' में भी सूर के पदों पर आधारित कई चित्र छपे हैं यथा— वर्ष १ के अंक १, ३, ४; वर्ष २ के अंक १; वर्ष ३ के अंक १ में सूर सागर के पदों पर आधृत रंगीन चित्र आर्टपेपर के पूरे एक एक पृष्ठ पर दिए गए हैं। इन सभी में नीचे दाहिने कोने पर सूर के लघु चित्र हैं। इनमें मुद्राएँ भिन्न हैं, पर रूप एक ही हैं।

कला-पंडित लोग विचार करें कि ये चित्र एक ही सूर के हैं या किसी दूसरे सूर के भी। हो सकता है एक चित्र अष्टछापी सारस्वत सूर का हो, एक ब्रह्मभट्ट सूर नवीन का।

—: ० :—

महाकवि सूरदास

१. सूर-प्रशस्ति-संग्रह

(१)

उक्ति चोज अनुप्रास, बरन अस्थिति अति भारी
बचन[*] प्रीति निर्वाह, अर्थ अद्भुत तुक धारी
प्रतिबिंबित दिवि दृष्टि, हृदय हरि लीला भासी
जनम करम गुन रूप, सबै रसना परकासी
विमल बुद्धि गुन और की, जो यह गुन श्रवननि करै
सूर कबित सुनि कौन कवि, जो नहिं सिर चालन कर

—भक्तमाल ७३

(२)

किधौं सूर को सर लग्यो किधौं सूर को पीर
किधौं सूर को पद लग्यौ, बेध्यो सकल शरीर

—तानसेन

(३)

सूरदास बिनु पद रचना को, कौन कबहिं कहि आवै

—हरी राम व्यास

(४)

परमानंद अरु सूर मिलि, गाई सब ब्रज रीति
भूलि जाति विधि भजन की, सुनि गोपिन की प्रीति

—ध्रुवदास भक्त नामावली (सं० १७००)

(५)

सूर[*] सूर [*]तुलसी ससी, उडुगन केसवदास
अब के कवि खद्योत सम, जहँ तहँ करहिं प्रकास

—शिवसिंह सरोज

१, ४, ५, ६, ७, ८ भारतेंदु के लेख में अवतरित।

(६)

हरि पद पंकज मत्त अलि, कविता रस भरपूर
दिव्य चक्षु कबि-कुल-कमल, सूर नौमि श्री सूर

(७)

उत्तम पद कवि गंग के, कविता को बलवीर
केसव अर्थ गँभीर को, सूर तीन गुन धीर

(८)

मन समुद्र भयो सूर को, सीप भए चख लाल
हरि मुक्ताहल परत ही. मूँदि गए ततकाल

(९, १०)

सूर सूर हू तें अधिक, निसि दिन करत प्रकास
जाको मति हरि-चरन में, ताकों देत विलास
सारद बैठो कंठ तिहि, निसि दिन करै कलोल
हरि लीला रस पद कथत, नित नए सूर अमोल
—प्राणनाथ कवि कृत अष्टसखामृत (सं० १६८० वि०)

(११)

जो तन लाग्यो सूर सर. गई अविद्या भाग
जरे दोष-दानव सबै, हरि-पद भौ अनुराग
—व्यासदास कृत लीलामृत (१८ वीं शती)

(१२)

कविता करता तीनि हैं, तुलसी केसव सूर।
कविता खेती इन लुनी, सीला बिनत मँजूर।

(१३)

तत्व तत्व सूरा कही, तुलसी कही अनूठी।
बची खुची कबिरा कही, और कही सब झूठी।

२. ६, १०; ११ डा० प्रभुदयाल मीतल के सूर सर्वस्व में अवतरित।
१२, १३. हिन्दी नवरत्न में अवतरित

(१४)

महामोह मद छाइ, अंधकार सब जग कियो।
हरि-जस सुभ फैलाइ, सूर सूर-सम तम हरयो।

(१५)

वल्लभ सागर, विट्ठल जाहि जहाज बखान्यो।
जग-कवि-कुल मद हरयौ, प्रेम नीके पहिचान्यो।
एक वृत्ति नित, सवा लाख हरि पद रचि गाए।
श्रीवल्लभ वल्लभ अभेद, करि प्रगट जनाए।
जा पद बल अबलौं नर सकल, गाइ गाइ हरि जस जियो।
अघ निकर सूर कर सूर पथ, सूर सूर जग मैं उयो।

—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (भक्तमाल उत्तरार्द्ध)

(१६)

मतिराम, भूषण, बिहारी, नीलकंठ, गंग,
बेनी, शम्भु, तोष, चिन्तामणि, कालिदास की
ठाकुर, नेवाज, सेनापति, सुकदेव, देव
पजन, घनानंद सु घनस्याम, दास की
सुंदर, मुरारी, बोधा श्रीपति हूं, दयानिधि
युगल, कविंद, त्यों गोविंद केसोदास की
भनै रघुराज और कबिन अनूठी उक्ति,
मोहि लगी झूठी, जानि जूठी सूरदास की

—रीवां नरेश महाराज रघुराज सिंह

(१७)

सूरदास ने विरच सूरसागर अति भारी
कृष्ण-भक्ति की ललित लहर जग में बिस्तारी
लिया विषय जो हाथ, दूर तक उसे निबाहा
एक न छोड़ा भाव, सब्द सागर अवगाहा

१४. राधा कृष्ण दास के सूरदास में अवतरित

कर अमित विषय वर्णन बिसद, सभी परम सुंदर कहे
अब कवियों के हित में सकल, इस कवि के जूठे रहे

(१८) —मिश्रबंधु, हिंदी नवरत्न

ब्रजभाषा-कवि-मंडल-मंडन सूर महाकवि
कृष्ण प्रेम परकास करन, कँधौं दूजो रवि
उपमा रूपक-व्यंग्य, लक्ष्य-ध्वनि-कोविद नागर
जगत उजागर रच्यो, सवा-लछ पद को सागर
या सागर में भरचो भक्ति-जल, विमल अगाधा
भाव-भँवर बिच झलक, दिखावैं माधव-राधा
रसिक-रँगीले मीन, लीन जहँ रहैं निरन्तर
लखैं अगोचर रूप, पलक बिच, परैं न अंतर
रचनाकौसल देखि, सुकविहू होत विघूनित
पद-सायक ते आहत पाये केते मूर्छित
गूँथी वत्सल भाव-कंज-कलियन की माला
साँचेहु तो सँग सूर, सदा खेल्यो नँदलाला

—वियोगी हरि—कविकीर्तन २९, ३० ,३१

२. महाकवि सूर के जीवन-चरित के सूत्र

महाकवि सूर ने स्व-जीवन के सम्बन्ध में कोई अंतः साक्ष्य नहीं छोड़ा है। कुछ पदों में उन्होंने अपने अंधे होने की बात अवश्य कही है।

महाकवि सूर के जीवन चरित निर्माण के लिए वल्लभ संप्रदाय संबंधी साहित्य ही सहायक होता है। वे सभी बहिरंग साक्ष्य हैं। इनमें सर्वाधिक महत्व का श्रोत चौरासी वैष्णवन की वार्ता के अंतर्गत सूरदास की वार्ता और उस पर गो० हरिराय कृत भावप्रकाश नामक टिप्पणियाँ हैं।

(क) सूरदास की वार्ता : विश्लेषणात्मक अध्ययन

वार्ता-साहित्य

पुष्टिमार्गीय साहित्य में वार्ताओं का बहुत महत्व है। ये वार्ताएं दो हैं 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' और 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता। चौरासी वैष्णवन की वार्ता वल्लभ सम्प्रदाय के प्रवर्तक महाप्रभु वल्लभाचार्य के ८४ शिष्यों की वार्तायें हैं और दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' गोसाईं विट्ठलनाथ के २५२ शिष्यों की। चौरासी वैष्णवन की वार्ता की अंतिम चार वार्तायें अष्टछाप के प्रथम

चार कवियों—सूरदास, परमानन्द दास, कुंभनदास और कृष्णदास अधिकारी की वार्तायें हैं। दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता की प्रथम चार वार्तायें अष्टछाप के अंतिम चार कवियों-चतुर्भुजदास नन्ददास—छीत स्वामी, गोविन्द स्वामी की वार्तायें हैं।

समस्त वार्ता-साहित्य के रचइता या वक्ता गोसाईं गोकुलनाथ जी हैं। कालांतर में गोस्वामी हरिराय ने इनपर पूरक टिप्पणियां जोड़ दी थीं। इन पूरक टिप्पणियों को भाव प्रकाश कहा जाता है। ये टिप्पणियाँ बड़े काम की हैं। गोस्वामी गोकुलनाथ जी का जन्म संवत् १६०८ में एवं देहावसान संवत् १६९७ में हुआ था। गोस्वामी हरिराय जी गोस्वामी गोकुलनाथ जी के बड़े भाई गोविन्दराय जी के पौत्र एवं कल्याण राय के पुत्र थे। इनका जन्म संवत १६४७ में एवं निधन संवत १७७३ वि० में हुआ था।

चौरासी वैष्णवन की वार्ता की दो प्राचीन प्रतियाँ हैं, जिनके सहारे समस्त प्रकाशित वर्तायें सम्पादित हुई हैं। प्राचीनतम हस्तलेख संवत् १६९७ का हैं। इसी वर्ष वार्ताओं के कर्ता गोस्वामी गोकुलनाथ जी का निधन हुआ था। ये वार्ताएँ अपने मूल रूप में हैं। दूसरा हस्तलेख संवत १७५२ का है। इसमें 'भावप्रकाश' वाली गोस्वामी हरिराय जी की टिप्पणियाँ भी हैं। स्पष्ट है कि भावप्रकाश का परिवर्द्धन १६९७ एवं १७५२ के बीच किसी समय हुआ। भाव प्रकाश युक्त कोई भी हस्तलेख १७५२ के पहले का प्राप्त नहीं है।

'वार्ता' के अन्य अनेक अर्थों के अतिरिक्त हिन्दी शब्दसागर में निम्नांकित और अर्थ दिये हुए हैं :—

१. जनश्रुति, अफवाह।
२. सम्वाद, वृत्तांत, हाल।
३. विषय, मामला, प्रसंग, बात।
४. कथोपकथन, बातचीत।

इन पुष्टिमार्गीय वार्ताओं में 'वार्ता' से क्या अभिप्राय है? जन साधारण कथा-वार्ता का प्रयोग करते हैं। वार्ता कथा का ही सूचक है। ऊपर उद्धृत चारों अर्थों में से प्रथम तीन का लगाव किसी न किसी प्रकार 'वार्ता साहित्य' की वार्ता से है।

पुष्टिमार्गीय वार्तायें जनश्रुति हैं, वृत्तांत हैं, प्रसंग हैं। एक एक प्रसंग को लेकर एक एक लघु कथा है। जिसे अंग्रेजी में (anecdote) अनेकडोट कहते हैं,

वही ये वार्तायें हैं। इनमें किसी भक्त का पूरा जीवनचरित नहीं है। उसके जीवन की घटित कुछ घटनाओं की ही कथा इनमें है। एक एक भक्त की कई कई वार्तायें दी गई हैं, जो परस्पर असम्बद्ध हैं।

सूरदास की वार्ता : प्रकाशित सामग्री

सूरदास की वार्ता के विश्लेषण के लिये मेरे सामने इस समय निम्नांकित सामग्री है।

१. अष्टछाप—सम्पादक डा० धीरेन्द्र वर्मा, प्रकाशक रामनारायण लाल, पब्लिशर और बुकसेलर इलाहाबाद। द्वितीय सस्करण १६३६ ई०। इसका प्रथम संस्करण १९२९ ई० में हुआ था। हिन्दी के विद्यार्थी के सामने अष्टछाप की वार्ताएँ पहली बार एक स्थान पर सुनियोजित ढंग से डा० धीरेन्द्र जी वर्मा द्वारा प्रस्तुत की गईं। डा० वर्मा ने इस संकलन को प्रस्तुत करने में अपने ही उद्देश्य बनाये थे।

(क) सत्रहवीं सदी के ब्रजभाषा गद्य का उदाहरण सर्वसाधारण के लिये सुलभ करना।

(ख) सूरदास आदि कुछ हिन्दी कवियों की जीवनियों के इन प्रायः समकालीन जीते जागते वर्णनों से हिन्दी प्रेमियों का घनिष्ट परिचय कराना।

अभी तक जो वार्ता साहित्य प्रकाशित हुआ था, वह पुष्टिमार्गीय भक्तों के लिये धार्मिक दृष्टि से प्रस्तुत किया गया था। उसमें साहित्यिक दृष्टि नहीं थी।

डाकोर से १९६० वि० में इन वार्ताओं के जो संस्करण प्रकाशित हुये थे, वर्मा जी ने अपना संस्करण उक्त संस्करणों के आधार पर प्रस्तुत किया था। सं० १९४० का प्रकाशित ८४ वार्ता का एक और मथुरा संस्करण भी वर्मा जी द्वारा प्रयुक्त हुआ था। डाकोर और मथुरा संस्करणों में कोई महत्व का अंतर उन्हें नहीं मिला था।

डा० वर्मा वाले इस संकलन में 'भावप्रकाश' नहीं है, केवल वार्तायें है। अतः इसके आधार का आधार सं० १६९० वाला या उसकी परम्परा का कोई हस्तलेख है। इसका आधार संवत १७५२ वाला हस्तलेख नहीं है।

२. अष्टछाप—सम्पादक पो० कंठमणि शास्त्री काँकरोली, प्रकाशक विद्या विभाग काँकरौली। इसका प्रथम संस्करण संवत १९९८ वि० में हुआ था। दूसरा संस्करण मेरे सामने है, जो सम्वत २००९ वि० में हुआ है। वह संवत १६९७ की लिखित 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' एवं १७५२ वाली 'भाव प्रकाश' से युक्त

प्रति के आधार पर सम्पादित है। १७५२ वाली प्रति में जो अंश बढ़े हैं, पतले टाइप में हैं, साथ ही कोष्टक के अन्तर्गत हैं। इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि १६६७ वाली प्रति में क्या था और १७५२ वाली प्रति में कितना अंश बढ़ा। पुस्तक सुसम्पादित है।

डा० वर्मा वाली पोथी केवल संकलित है, सम्पादित नहीं।

३. चौरासी वैष्णवन की वार्ता

सम्पादक और प्रकाशक—द्वारकादास परीख, मंत्री अष्टछाप स्मारक समिति, मथुरा। इसका भी द्वितीय संस्करण ही मेरे सामने है, जो सं० २०१० वि० में बड़ौदा में मुद्रित हुआ था। यह प्रति सं० १७५२ वाले हस्तलेख के आधार पर सम्पादित है। इसमें प्रत्येक पृष्ठ के अंत में वार्ताओं का अविकल गुजराती अनुवाद भी दिया हुआ है। इससे यह ज्ञात नहीं होता कि कितना अंश पुराना है, कितना नया बढ़ा।

सूरदास की वार्ता अलग से भी प्रकाशित है।

१. सूरदास की वार्ता—सं० प्रभुदयाल मीतल, १९५१ ई०, अग्रवाल प्रेस, मथुरा।

२. सूरदास की वार्ता—सं० डा० प्रेमनारायण टंडन, नंदन प्रकाशन, १९६८ ई०। १०२ पृष्ठ।

मेरे सामने ये दोनों ग्रंथ इस समय नहीं हैं।

विश्लेषण

(क) १६६७ वाले हस्तलेख या सं० डा० धीरेन्द्र वर्मा वाले अष्टछाप में कुल छह वार्तायें हैं।

प्रसंग १—बल्लभ सम्प्रदाय में सूर की दीक्षा

एक समय महाप्रभु बल्लभाचार्य उज्जैन से ब्रज में आये। उन्होंने आगरा के बीच गऊघाट पर डेरा डाला। सूरदास जी यहाँ पहले ही से रहते थे और सूरस्वामी कहलाते थे। इनके शिष्य भी अनेक थे। सूर बहुत अच्छा गाते थे और दास्य भाव के पद भी रचते थे। महाप्रभु के आगमन की चर्चा सुन सूरदास जी के मन में उनसे मिलने की इच्छा उत्पन्न हुई। वे उनसे मिलने गये। महाप्रभु की इच्छा से सूर ने दो पद गाये।

१. हौं हरि सब पतितन को नायक

२. प्रभु मैं सब पतितन को टीकौ।

सुनकर महाप्रभु ने कहा—'सूर ह्वै के ऐसे घिघियात काहे को हो। कछू भगवल्लीला वर्णन करि।' सूर ने निवेदन किया कि मुझे भगवल्लीला का कोई ज्ञान नहीं। तब महाप्रभु के आज्ञानुसार सूर स्नान करके आये और महाप्रभु ने उन्हें नाम सुनाया और उनसे भागवत दशमस्कंध की अनुक्रमणिका कही।

सूर को नवधा भक्ति सिद्ध हो गई और भगवल्लीला का स्फुरण हुआ। तब उन्होंने निम्नांकित पद गा सुनाया।

चकई री चलि चरण सरोवर, जहाँ न प्रेम वियोग।

बाद में सूर ने नंद-महोत्सव का वर्णन किया और महाप्रभु के सामने यह पद गाया—

ब्रज भयो महरि के पूत, जब यह बात सुनी।

तदनंतर सूर ने अपने सभी शिष्यों को पुष्टि संपदाय में दीक्षित करा दिया। महाप्रभु ने पुरुषोत्तम सहस्रनाम सुनाया। और धीरे-धीरे सूर ने श्रीमद्भागवत की कथा प्रथम स्कंध से द्वादश स्कंध तक कही। तब महाप्रभु गऊघाट से व्रज आये। तब सूर भी उनके साथ यहाँ आ गये।

प्रसंग २—सूरदास का गोकुल और गोवर्धन आगमन

महाप्रभु वल्लभाचार्य के साथ सूरदास जी पहले गोकुल आये। गोकुल का दर्शन करके उन्होंने बाललीला का यह पद सुनाया—

सोभित कर नवनीत लिये।

गोकुल के पश्चात सूर महाप्रभु के साथ गोवर्धन आये, गिरिराज के ऊपर स्थित श्री नाथ जी का उन्होंने दर्शन किया और निम्नांकित पद गाकर सुनाया—

१. अब हौं नाच्यौ बहुत गोपाल।

२. कौन सुकृत इन ब्रजवासिन कौ।

महाप्रभु ने जिस रूप में पुष्टिमार्ग का प्रकाश किया है, उसी के अनुसार सूरदास जी ने पद किये हैं।

प्रसंग ३—अकबर से भेंट

सूरदास जी ने 'सहस्रावधि' पद किये जो प्रसिद्ध हुये। देशाधिपति (अकबर)

ने सूरदास की प्रसिद्धि सुनी। भगवदिच्छा से सूरदास की भेंट बादशाह अकबर से हुई। अकबर के अनुरोध पर सूरदास ने यह पद गाया—

मना रे तू करि माधौ सों प्रीति।

बादशाह ने अपनी प्रशस्ति में कुछ सुनना चाहा, तब सूर ने गाया—

नाहिन रह्यौ मन में ठौर।

इस पद में आया हैं—'सूर ऐसे दरस कारन मरत लोचन प्यास।

देशाधिपति ने पूछा—"सूर तुम तो लोचन-हीन हो, तुम्हारे लोचन कैसे प्यासे मरत हैं।" पर सूर कुछ बोले नहीं। देशाधिपति ने पुनः पूछा, "सूर बिना देखे उपमा कैसे देते हो"। पर उसने स्वयं यह कहकर अपना समाधान कर लिया कि इनके लोचन तो सदैव परमेश्वर के पास हैं। उहाँ देखत हैं, सो वर्णन करत हैं। देशाधिपति ने उन्हें बहुत कुछ देना चाहा, पर उन्होंने अंगीकार नहीं किया और विदा होकर श्री नाथ जी के द्वार आये।

प्रसंग ४—मनुष्य जीवन और चौपड़

सूर एक बार किसी के साथ कहीं जा रहे थे। कई आदमी चौपड़ खेल रहे थे। इस पर इनके साथी ने कहा—देखो ये लोग चौपड़ में इतने लीन हैं कि आने वालों तक का इन्हें पता नहीं। इस पर सूर ने यह पद कहा—

मन तू समझि सोच विचार।

इस पद में उन्होंने मनुष्य जीवन को चौपड़ के समान खेलने की बात कही है।

प्रसंग ५—सूर का गोकुल आना-जाना

सूरदास जी श्री नाथ जी के पास बहुत दिन तक रहे। बीच बीच में ये श्री गोकुल जी नवनीत प्रिय जी के दर्शन को भी आते-जाते। एक बार जब वे गोकुल आये, तब गोसांई (विट्ठलनाथ) जी ने एक पालना बनाया—

पेंख पर्यंक शयनं।

सूर ने इसे गाया और इसी के आधार पर निम्नांकित पद गाए—

(१) बाल विनोद आँगन में की डोलनि।

(२) गोपाल दुरे हैं माखन खात।

(३) कहाँ लगि बरनौं सुन्दरताई ।

(४) देखि सखी एक अद्भुत रूप ।

फिर सूर श्री नाथ जी द्वार लौट गये ।

प्रसंग ६—सूर का गोलोकवास

सूर ने जब अपना निधनकाल निकट आया समझ लिया, तब वे रासभूमि परासौली में आये और श्री नाथ जी को दंडवत करके उन्हीकी ओर मुख करके लेट रहे ।

श्री नाथ जी के शृंगार के समय सूरदास खड़े-खड़े कीर्तन किया करते थे । पर उस दिन गोसाइँ जी ने उन्हें अनुपस्थित देख समझ लिया कि सूर का अवसान समय है । तब गोसाइँ जी ने कहा पुष्टि मार्ग को जहाज जात है । जाको कछू लेनो होय, सो लेउ । सेवक लोग सूरदास के पास परासौली चले गये । राजभोग की आरती के अनंतर गोसाइँ जी भी परासौली आ गये । गोसाइँ जी के साथ रामदास भीतरिया, कुंभनदास, गोविंद स्वामी, चतुर्भुज दास आदि थे । गोस्वामी जी ने आने पर यह पूछा—सूर जी कैसे हैं ? तब सूरदास जी ने यह पद गाया—

देखौ देखौ हरि जू को एक सुभाव

चतुर्भुजदास ने कहा—'सूरदास जी, आपने भगवद्यश बहुत वर्णन किया, पर आचार्य महाप्रभून का यश कभी नहीं वर्णन किया । इस पर सूरदास जी ने कहा—"मैंने सब महाप्रभून को ही जस वर्णन कियो है, कछू न्यारो देखूँ, तो न्यारो करूँ ।' फिर भी सूर ने यह पद गाया ।

भरोसो दृढ़ इन चरनन केरो ।

इस पद के चतुर्थ चरण में आया हैं—"सूर कहा कहि दुविधि आँधरो ।" तदनंतर यह पद गाया—

भज सखी भाव भाविक देव ।

फिर गुसाइँ जी ने पूछा, "सूरदास जी चित्त-वृत्ति कहाँ है ।' तब सूरदास जी ने यह पद गाया—

बलि बलि बलि हौं कुमरि राधिका, नंद-सुवन जासों रति मानी

तदनंतर गुसाइँ जी ने कहा, 'सूरदास जी नेत्र की वृत्ति कहाँ है ।' तब सूरदास जी ने यह पद गाया—

खंजन रूप नैन रस माते।

इतना कह सूर दास जी ने शरीर त्याग दिया।

(ख) सं १७५२ वाले हस्त लेख में बढ़े प्रसंग

सं० १७५२ वाली प्रति में निम्नांकित प्रसंग हैं।

१. सूरदास की वल्लभ सम्प्रदाय में शरणागति—डा० धीरेन्द्र वर्मा के अष्टछाप के समान।

२. सूरदास जी का गोकुल तदनंतर श्री नाथ जी (गोवर्धन) आना—डा० धीरेन्द्र वर्मा के अष्टछाप के समान। यहाँ कांकरोली संस्करण में १७५२ वाली प्रति के आधार पर अंत में यह और उल्लेख है कि महाप्रभु ने समय-समय पर गोवर्धनधर के यहाँ कीर्तन करने का आदेश दिया। उस समय शयन हो चुका था। सूर ने मान के ये पद गाये।

१, बोलत काहे न नागर बैना।

२. सुखद सेज में पौढ़े रसिक वर।

३. पौढ़े लाल राधिका उर लाइ।

३. चौपड़ वाला प्रसंग—डा० धीरेन्द्र वर्मा के अष्टछाप में यह चौथा प्रसंग है। वहाँ तीसरा प्रसंग अकबर से भेंट वाला है। यह प्रसंग दोनों में समान है।

४. अकबर से भेंट—धीरेन्द्रवर्मा के अष्टछाप में यह तीसरा प्रसंग है। यह प्रसंग दोनों में समान है। काँकरोली वाले अष्टछाप में निम्नांकित बातें अधिक हैं।

(क) प्रारम्भ में ही उल्लेख है कि महाप्रभु वल्लाभाचार्य जी सूरदास को सागर कहते थे। जिसमें सब पदार्थ है, वह सागर है।

अंत में यह कथा और है।

(ख) अकबर ने यह घोषणा की कि जो सूर के पद लायेगा उसे रुपया और मोहर पुरस्कार में दी जायँगी। लोभवश बहुत से लोग पद बना लाये। पर अकबर ने उन्हें जल में डुबो दिया जो गल गये, वे नकली समझे गये; जो नहीं गले, वे असली माने गये।

५. गोकुल में आना जाना—यह प्रसंग दोनों ग्रन्थों में समान है। काँकरोली वाले अष्टछाप में निम्नांकित पद हैं।

१. बालविनोद आँगन में की डोलनि (दोनों में)।

२. गोपाल दुरे हैं माखन खात (दोनों में)।

३. देखो माई हरि जू की लोटनि (अधिक)।

४. मैया मोहि बड़ो करि लै री (अधिक)।

५. बलि बलि जाउँ मधुर सुर गावहु (अधिक)।

६. बाल बिनोद खरे जिय भावत (अधिक)।

७, खेलत गृह आँगन गोविंद (अधिक)।

८. कहाँ लगि बरनौं सुन्दरताई (दोनों में)।

९. देखि सखी इक अद्भुत रूप (दोनों में)।

६ गोकुल में नवनीत प्रिय जी का नग्न शृंगार—यह वार्ता यहाँ अधिक है और १७५२ वाले हस्तलेख के अनुसार है। गोसाईं जी के बालको के आग्रह से सूरदास जी गोकुल में चार दिन रुक गये। यहाँ गिरधर जी, गोविंदराय जी, बालकृष्ण जी, गोकुलनाथ जी, इन चार भाइयों का उल्लेख है। आषाढ़ की गर्मी के दिन थे। बालकों ने नवनीत प्रिय जी को कोई वस्त्र पहनाये बिना शृंगार किया और सूरदास जी से कीर्तन करने के लिये कहा। तव सूरदास जी ने दिव्यदृष्टि से सब जानकर यह पद गाया।

देखे री हरि नंगम नंगा।

७. गोपाल जी द्वारा सूरदास को पानी पिलाया जाना– सूरदास जी के पास एक ब्रजवासी लड़का गोपाल रहा करता था, जो उनका सब काम काज किया करता था। एक दिन सूरदास महाप्रसाद लेने बैठे और गोपाल से झारी में पानी रख देने के लिये कहा।

पर गोपाल गोबर काढ़ने चला गया और कुछ अन्य वैष्णवों के साथ बात करने में फँस गया और पानी देना भूल गया। इधर सूर को जब प्यास लगी, गले में कौर अटका, तब स्वयं गोपाल आकर उन्हें मन्दिर की सोने की सुराही में पानी दे गये। गोपाल ब्रजवासी को जब ध्यान आया, वह लौटा, तब उसे सूर को निवृत देखकर परम आश्चर्य हुआ और इस चमत्कार का ज्ञान सभी को हुआ। यह वार्ता अधिक है।

८. कपटी बनिये की कथा– श्री नाथ जी के मन्दिर के नीचे गिरिराज की तलहटी में गोपालपुर गांव है। वहाँ एक बनिया रहता था। वह ऊपर से वैष्णव

बना हुआ था, जिससे सारे वैष्णव सीधे उसके यहां से सामान खरीदें। उसने कभी भी श्री नाथ जी का दर्शन नहीं किया था। इसी प्रकार धोखाधड़ी करते वह ६० वर्ष का हो गया। एक दिन उसने सूर से कहा, "सब वैष्णव तो मेरी दूकान से सीधा लेते हैं; मेरा क्या अपराध है जो आप मेरी दुकान पर कभी नहीं आते।" सूरदास ने कहा, "तुम वैष्णव नहीं हो, तुमने कभी श्री नाथ जी का दर्शन तक नहीं किया।" बनिया डरा और उसने श्री नाथ जी का दर्शन करा देने के लिये कहा। पर सूर के कई दिन के प्रयत्न के बाद भी बहानेबाजी करता रहा। जब सूर ने उसकी पोल खोल देने की धमकी दी और यह पद गाया—

आज काम, कालि काम, परसों काम करनो

तब वह श्री नाथ जी के दर्शनार्थ गया और वैष्णव हो गया। उसने श्री नाथ जी के निमित्त बहुत कुछ दिया। और अंत में सूर ने यह पद सिखाया—

कृष्ण सुमिरि तन पावन कीजै।

यह पद सूर साठी के नाम से प्रसिद्ध है।

यह वार्ता अधिक है।

९. संत-समागम—एक बार दस पन्द्रह वैष्णव गोकुल से श्री नाथ जी आये और सूरदास जी के यहां संत-समागम हुआ। उस समय सूर ने संत माहात्म्य सूचक निम्नांकित पद गाये—

१. हरिजन संग छिनक जो होई।
२. प्रभु जन पर प्रसन्न जब होई।
३. हरि के जन की अति ठकुराई।
४. जा दिन संत पाहुने आवत।

सब वैष्णव परम प्रसन्न हुये और उन्होंने ज्ञान, योग, परमतत्व, ठाकुरजी का प्रेमस्वरूप बतानेवाला कोई पद गाने के लिये कहा, तब सूरदास जी ने निम्नांकित पद गाया:—

जोग सों कोउ नाहीं हरि पाये।

यह वार्ता अधिक है।

१०. 'सूरश्याम' छाप के पद—सूरदास ने सवा लाख कीर्तन रचने का संकल्प किया था। उनमें से एक लाख जब पूरे हो गये, तब प्रभु की इच्छा उन्हें अपनी सेवा में बुला लेने को हुई और उन्होंने २५ हजार पद अपनी ओर से पूरे किये। इन पदों में 'सूरश्याम' छाप है।

यह वार्ता अधिक है।

११. निधन वार्ता—दोनों में समान है।

काँकरोली वाले अष्टछाप में बीच की पाँच वार्तायें ६, ७, ८, ९, १० अधिक हैं। पर इनकी वार्ता-संख्या नहीं दी गई है। अलग करने के लिये वार्ता प्रसंग मात्र लिख दिया गया है। प्रथम पांच वार्ताओं को क्रमशः प्रथम, द्वितीय आदि कहा गया है और ग्यारहवीं वार्ता को वार्ता षष्ठ कहा गया है, यद्यपि है वह ग्यारहवीं। डा० धीरेन्द्र वर्मा वाले अष्टछाप में इन्हें 'प्रसंग', काँकरोली वाले अष्ठछाप में इन्हें 'वार्ता' एवं परीख जी वाले 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' में इन्हें 'वार्ता प्रसंग' कहा गया है। इसमें वार्ता प्रसंगों की संख्या क्रमवार ग्यारह तक दी गई है।

भावप्रकाश से ज्ञात सूर सम्बन्धी नवीन सामग्री

सूरदास की वार्ता के प्रारम्भ में विशद रूप से भावप्रकाश वाली टिप्पणी है। इससे निम्नांकित सूचनायें ज्ञात होती हैं:—

१. सूरदास सारस्वत ब्राह्मण थे।

२. यह दिल्ली के पास सीही ग्राम है, जहाँ रहते थे। सीही दिल्ली से चार कोस दूर है। सीही में जनमेजय ने सर्पयज्ञ किया था।

३. सूरदास ठाकुर जी के अष्टसखाओं में से कृष्ण सखा के प्राकट्य हैं।

४. लीला कुंज में इनका नाम 'चंपकलता' सखी है।

५. सूरदास जी जन्मान्ध थे। इन्हे केवल भौंह थी। नेत्रों का आकार तक न था।

इस भाव प्रकाश से सूर के प्रारंभिक जीवन का ज्ञान होता है। इसका उपयोग जीवन चरित्र में किया गया है।

देशाधिपति वाली चौथी वार्ता में भावप्रकाश से निम्नांकित नवीन बातें ज्ञात होती हैं:—

१. देशाधिपति अकबर था।

२. भेंट मथुरा में हुई थी।

३. अकबर पूर्व जन्म में बाल मुकुंद ब्रह्मचारी था। एक दिन गाय का बिना छना दूध पी गया। उसमें एक बार भी पेट में चला गया। इस दोष से म्लेच्छ हुआ।

अंतिम वार्ता के भावप्रकाश से अष्टछापी कवियों के आवास का पता चलता है। गिरिराज गोवर्धन के आठ द्वार हैं। आठों सखाओं ने अपने-अपने द्वार पर ही देह छोड़ी है।

१. गोविन्द कुंड के ऊपर एक द्वार है। उसके सामने परासोली चन्द्र सरोवर है। यहाँ सूरदास जी रहते थे।

२. अप्सरा कुंड स्थित द्वार पर छीत स्वामी।

३. सुरभि कुंड स्थित द्वार पर परमानन्द दास।

४. कदम खंडी द्वार पर गोविंद स्वामी।

५. रुद्र कुंड स्थित द्वार पर चतुर्भुजदास।

६. बिलछू द्वार पर कृष्णदास अधिकारी।

७. मानसी गंगा पर नन्ददास।

८. आन्योर के सम्मुख द्वार स्थित जमुनावतो में कुम्भनदास।

इसी अंतिम प्रसंग में सूर की चार छापों का उल्लेख है।

१. सूर—आचार्य महाप्रभु का दिया नाम।

२. सूरदास—गोसाईं विट्ठलदास का दिया नाम।

३. सूरजदास—स्वामिनी जी द्वारा दिया नाम।

४. सूरश्याम—स्वयं प्रभु द्वारा रचित २५ हजार पदों में यह छाप है।

सूरदास की वार्ता में आये पदों की अनुक्रमणिका

	पद संख्या संकेत
१. अब हौं नाच्यो बहुत गोपाल	१५३
२. आज काम, कालि काम, परसों काम करनो	
३. कहाँ लगि बरनौं सुन्दरताई	
४. कृष्ण सुमिरि तन पावन कीजै (सूर साठी)	
५. कौन सुकृति इन ब्रजवासिन को, वदत विरंचि मुनि सेस	५६६४ ग्रं,
६. खंजन नैन रूप रस माते	३२८५
७. खेलत गृह आँगन गोविंद	७१५
८. गोपाल दुरे हैं माखन खात	९०१
९. चकई री चलि चरन सरोवर, जहाँ न प्रेम वियोग	३३७
१०. जा दिन संत पाहुने आवत	३६०
११. जोगं सों कोउ नाहीं हरि पाये	४५१२
१२. देखि सखी इक अदभुत रूप	

१३. देखे री हरि नंगम नंगा
१४. देखो, देखो, हरि जू को एक सुभाइ
१५. देखो माई हरि जू की लोटनि १९९ ग्रं०
१६. नाहिन रह्यो मन में ठौर
१७. पौढ़े लाल राधिका उर लाइ प० २५८
१८ प्रभु जन पर प्रसन्न जब होइ
१९. प्रभु हौं सब पतितन को टीको १३८
२०. बलि बलि जाउं मधुर सुर गावहु ७९७
२१. बलि बलि बलि हौं कुंवरि राधिका, नंद सुवन जासों रति मानी
२२. बाल बिनोद आँगन की डोलनि ७३९
२३. बाल बिनोद खरे जिय भावत ७२०
२४. बोलत काहे न नागर बैना वर्षोत्सव द्वितीय भाग ८७९२
२५, ब्रज भयो महरि के पूत जब यह बात सुनी ६४२
२६. भज सखि भाव भाविक देव ५३९५ ग्रं०
२७. भरोसो दृढ़ इन चरनन केरो ५८८३ ग्रं०
२८. मन तू समुझि सोच विचार सूरसुधा २९
२९. मन रे करि माधव सों प्रीति ३२५
३०. मैया मोहि बड़ो करि लै री ७९४
३१. यह सब जानो भक्त के लच्छन
३२. सुखद सेज में पौढ़े रसिक बर
३३. सोभा आज भली बनि आई
३४. सोभित कर नवनीत लिये ७१७
३५. हरि के जन की अति ठकुराई ४०
३६ हरिजन संग छिनक जो होई
३७ हौं हरि सब पतितन को नायक १४३

केवल संख्यायें सभा संस्करण की हैं। ग्रं. – पं० सीताराम चतुर्वेदी संपादित सूर ग्रंथावली है।

इन सैंतीस पदों में १२ पद सभा के सूरसागर में नहीं मिले, पर ये सभी द्वारिकादास परीख द्वारा संपादित चौरासी वैष्णवन की वार्ता द्वितीय संस्करण (सं० २०१०) मे समग्रत: दिए गए हैं, इसके प्रथम संस्करण (सं०२००५) में पदों के केवल प्रतीक दिए हुए थे।

(ख) चौरासी वैष्णवन की वार्ता की प्रामाणिकता पर पुनर्विचार

द्वारकादास परीख अष्टछाप स्मारक समिति मथुरा के मंत्री थे और सूरदास के विशेषज्ञ थे। इन्होंने सं० २००५ वि० में चौरासी वैष्णवन की वार्ता का संपादन प्रकाशन किया था। इसका आधार सं० १७५२ की लिखी हुई प्रति थी, जो हरिराय जी के भाव प्रकाश से युक्त है। इस वार्ता को मुख पृष्ठ पर गो० हरिराय जी प्रणीत कहा गया है। इसका दूसरा संस्करण सं० २०१० वि० में हुआ था, जिसकी एक प्रति मेरे पास है और जिसका उल्लेख प्रस्तुत लेख में किया जा रहा है।

विद्या विभाग कांकरोली ने इन वार्ताओं को 'प्राचीन वार्ता रहस्य' नाम से खंडशः निकालना प्रारम्भ किया था। इसके द्वितीय भाग को 'अष्टछाप' कहा गया है। ये सं० १६९७ की लिखित चौरासी वैष्णवन की वार्ता के आधार पर संपादित हैं। साथ ही सं० १७५२ की प्रति से संवादित भी है। १७५२ वाले बढ़े अंश कोष्टक में दिए गए हैं। इस तरह स्पष्ट हो जाता है कि इसमें कौन-सा अंश १६९७ का है, कौन-सा १७५२ का बढ़ा अंश है। परीख जी वाली पोथी में यह बिलगाव है ही नहीं, यद्यपि दोनों संस्करणों की सामग्री प्रायः एक ही है।

[१]

मैंने दोनों संस्करणों को मिलाया है और मुझे इनमें कुछ सूक्ष्म अंतर मिले हैं, यद्यपि ऐसे किसी अंतर का अवकाश न होना चाहिए।

(१) १६९७ वाले हस्तलेख में सूरदास की वार्ता के अन्तर्गत कुल ९ प्रसंग या वार्ताएं हैं। पहली वार्ता में गऊघाट पर बल्लभचार्य से सूरदास की भेंट और उनका बल्लभ संप्रदाय में दीक्षित होना वर्णित है। दूसरी वार्ता में सूरदास का महाप्रभु के साथ गोकुल तदनन्तर गोवर्धन का जाना वर्णित है। परीख जी के संस्करण में ये दोनों प्रसंग प्रथम प्रसंग में ही समाविष्ट हैं। दोनों संस्करणों का आधार एक ही है, फिर यह अंतर क्यों और कैसे ?

(२) कंठमणि जी के प्राचीन वार्ता रहस्य भाग २ या अष्टछाप में चौथा प्रसंग अकबर-भेंट का है। परीख जी वाले संस्करण में यह तीसरा प्रसंग है। कंठमणि जी के यहाँ अकबर भेंट वाले प्रसंग चार के ही अंत में अकबर द्वारा सूर के पदों के संकलन वाला प्रकरण है। परीख जी के यहाँ यह लघु प्रकरण अलग से एक प्रसंग मान लिया गया है—प्रसंग सं० ४। इस प्रकार यहाँ आते-आते दोनों पुनः एक जैसी स्थिति में आ जाते हैं। दोनों ग्रंथों का आधार १७५२ का हस्तलेख है, फिर यह अंतर क्यों ?

(३) दोनों संस्करणों में प्रसंग ५ एक ही है। इसमें सूरदास के यदाकदा गोकुल आने का विवरण है। ऐसे ही एक अवसर पर उन्होंने अनेक पद गाए हैं। दोनों संस्करणों में यहाँ पदों में बहुत विभेद है।

कंठमणि जी वाले संस्करण में निम्नांकित अवतरण है—

१. वाल विनोद आंगन की डोलनि।
२. गोपाल दुरे हैं माखन खात।
३. देखो माई हरि जू की लोटनि।
४. मैया, मोहि बड़ो करि लै री।
५. वलि वलि जाउं मधुर सुर गावहु।
६. वाल विनोद खरे जिय भावत।
७. खेलत गृह आँगन गोविंद।
८. कहाँ लगि बरनौं सुन्दरताई।

ये आठो पद १६९७ वाले हस्तलेख में हैं। १७५२ बाले में क्यों नहीं हैं, कहाँ उड़ गए?

दोनों संस्करणों में ये पद समान रूप से हैं—

(१) प्रेङ्ख पर्यङ्क शयने (गो० विट्ठलनाथ कृत संस्कृत पद)
(२) प्रेंख पर्यंक गिरिधरन सोहै
(३) देखि सखी इक अदभुत रूप
(४) सोभा आजु भली बनि आई

(४) कंठमणि संस्करण के अंतिम प्रकरण ६ में सूर की मरणबेला पर चतुर्भुजदास पूछते हैं—

सूरदास जी, तुमने बोहोत भगवद् जस वर्णन कियो। सहस्रावधि पद किए। परि कछू श्री आचार्य जी महाप्रभुन कोहू वर्णन कियो है? —पृष्ठ १०५

परीख संस्करण में इसका यह पाठ है—

"सूरदास की परम भगवदीय हैं और सूरदास जी ने श्री ठाकुरजी के लक्षावधि पद किए हैं। परन्तु सूरदास जी ने श्री आचार्य जी महाप्रभु को जसबरनन नाहीं कियो"
—पृष्ठ ७८२

दोनों में जो अन्तर है, सो तो है ही। यह 'सहस्रावधि' 'लक्षावधि' में कैसे बदल गया? 'अंतरं महदन्तरम्'। कंठमणि जी नें पादटिप्पणी में 'सहस्रावधि

के स्थान पर 'लक्षावधि' पाठभेद होने का उल्लेख किया है। सूर की वार्ता में और भी स्थलों पर यह शब्द 'सहस्रावधि' के रूप में ही प्रयुक्त है।

कंठमणि जी के यहाँ द्वितीय वार्ता के अन्त में यह उल्लेख है—

"पाछे सूरदास जी ने (नित्य प्रातः काल के जगाइबे तें लेकें सेन पर्यन्त के) सहस्रावधि पद किये ।।

—पृष्ठ ३८

इसका परीख-पाठ यों है—

"सो पाछें या प्रकार सों कीर्तन सूरदास जी ने नित्य प्रातः काल के जगायवे ते लेके सेन प्रयंत के हजारन किए।"

—पृष्ठ ७४६

यहाँ सहस्रावधि का 'हजारन' ही हुआ है; 'लाखन' नहीं; गनीमत है।

(५) शास्त्री संस्करण में अकबर-भेंट-प्रसंग के प्रारंभ में ही यह वाक्य है—

"सो सूरदास जी ने लक्षावधि पद किए, सो सब जगत में प्रसिद्ध भए। सो सूरदास जी के पद देशाधिपति ने सुने।"

—पृष्ठ ४४

परीख संस्करण में यह अंश यों है—

"तैसे ही सूरदास ने सहस्रावधि पद किए हैं ।।"

—पृष्ठ ७५०

पाद टिप्पणी में शास्त्री जी ने भी यह अंश पृष्ठ ४५ पर उद्धृत किया है। यहाँ 'सहस्रावधि' ही है। फिर यह उलट-पलट कैसा ?

[२]

मैंने सूरदास और सूर नवीन के सम्बन्ध में जो यह अध्ययन प्रस्तुत किया है, उसमें भी सूरदास की यह वार्ता यत्र-तत्र बाधक हो रही है, जिसका विवरण यों है—

१. 'भरोसो दृढ़ इन चरणन केरो' पद १६९७ वाले हस्तलेख में छठीं वार्ता में है। मैं इस पद को महाकवि अष्टछापी सूर की रचना नहीं मानता। चतुर्भुजदास का यह कथन ठीक है कि अष्टछापी सूर ने सहस्रावधि पद रचे, पर उन्होंने अपने गुरु महाप्रभु वल्लभाचार्य का गुणानुवाद नहीं किया। सूर का यह जबाब भी ठीक है कि मैं गुरु गोविंद दोनों को एक मानता हूँ, न्यारा-न्यारा नहीं। अतः जो गुणानुवाद गोविंद का है, वही उनका भी। मैं समझता हूँ बात यहीं खतम हो

गई। प्रस्तुत पद सूर नवीन का है और इसमें वल्लभ गो० गोकुलनाथ के लिए प्रयुक्त है।

(२) प्रथम वार्ता के अन्त में एक अनुच्छेद है—

"पाछें श्री आचार्य जी महाप्रभु ने सूरदास जी को पुरुषोत्तम सहस्रनाम सुनायो। तब सूरदास जी को (हृदय में) श्री भागवत की स्फूर्ति भई (लीला स्फुरी सो सूरदास ने प्रथम स्कंध की भागवत सों द्वादश स्कंध पर्यन्त कीर्तन किए। तामें अनेक दानलीला, मानलीला आदि वर्णन किए)। पाछे जो पद किए सो श्री भागवत अनुसार किए।"

—पृष्ठ २७

१६९७ वाले हस्तलेख में केवल 'भागवत अनुसार' है। १७५२ वाले में यह द्वादश स्कंधात्मक हो गया है। मेरी स्थापना है कि अष्टछापी सूरदास ने कृष्ण की केवल ब्रजलीला, मथुरालीला, भ्रमर गीत गाए। उनका सीमा-विस्तार भागवत दशम स्कंध पूर्वार्ध तक ही है। द्वादश स्कंधात्मक सूरसागर सूरनवीन की रचना है।

(३) द्वितीय वार्त्ता के अंत में है—

"पाछें सूरदास जी ने (नित्य प्रातःकाल के जगाइबे तें लेके सेन पर्यन्त के) सहस्रावधि पद किए।

कोष्टकांकित अंश १६९७ वाले हस्तलेख में नहीं है। १७५२ वाले में है। यह नित्य कीर्तन के पदों की ओर संकेत करता है और प्रखंड ५ में ऊपर वर्णित द्वादश स्कंध वाले रूप से सहज ही भिन्न है।

(४) बनिये वाला प्रकरण १६९७ में नहीं है, १७५२ में है, इसका प्रकरण आठवाँ है। इसमें 'कृष्ण सुमिर तन पावन कीजे' वाला पद सूरसाठी नाम से प्रसिद्ध है। इसमें चौपाई की ६० अर्द्धालियाँ हैं। चौपाई में लिखित पदों को प्रायः सभी विद्वानों ने महाकवि सूर की रचना मानने से अस्वीकार किया है। मैं भी इन्हीं पंडितों का पछलगा हूं और सूर साठी को सूर नवीन की रचना मानता हूँ। भले ही इसमें "सूर" छाप है—

श्री भागवत परम हितकारी। द्वारे रहत हरि सूर भिखारी॥ ५९

(५) सूरश्याम छाप वाले २५ हजार पदों की कथा १६९७ वाले हस्तलेख में नहीं है, १७५२ वाले हस्तलेख में यह १०वाँ प्रसंग है। मेरी स्थापना है कि सूरश्याम

छाप सूरजचंद (सूरजदास) या सूर नवीन की है। प्रसंग के चमत्कार वाली बात को भक्तों के लिए छोड़िए, वैज्ञानिक दृष्टि से विचार कीजिए तो इसका अर्थ यही हुआ कि सूरश्याम छाप वाले पद सूर नवीन के हैं (भगवान कृष्ण के रचे नहीं)। स्वयं सूरदास की वार्ता इन पदों को अष्टछापी सूर की रचना नहीं मानती। हम भी इन्हें अष्टछापी सूर की रचना नहीं मानते और वार्ता को यहाँ पर प्रमाण मानते हैं। सूरश्याम छाप के कुछी पद महाकवि सूर के हैं।

(३)

इन विसंगतियों को ध्यान में रखते हुए मैं भी डा० व्रजेश्वर वर्मा के इन निष्कर्षों से सहमत हूँ—

१. "अद्यावधि वार्ताओं के रचयिता और रचनाकार के विषय में कोई मत निश्चित रूप से स्थापित नहीं हो सका है।"

—सूरदास, पृष्ठ २३

वर्मा जी पुनः लिखते हैं कि प्राचीन वार्ता रहस्य भाग २ का संपादन सं० १७५२ वाले हस्तलेख के आधार पर क्यों हुआ, सं० १६९७ वाले हस्तलेख का ही आधार क्यों नहीं लिया गया ?—

"ऐसा क्यों किया गया इसका कोई कारण नहीं बताया गया है। वस्तुतः हिन्दी साहित्य के इतिहास के वैज्ञानिक अध्ययन की दृष्टि से इस वार्ता साहित्य के स्वतंत्र रूप से अध्ययन, समीक्षण और संस्करण की आवश्यकता है।"

—सूरदास, पृ० २४

३. महाकवि सूरदास : जीवन-परिचय

१. जाति, जन्म-स्थान और जन्मांधता

सूरदास का जन्म स्थान एक सारस्वत ब्राह्मण परिवार में हुआ था। सारस्वत ब्राह्मण सरस्वती नदी से सम्बन्धित हैं और पंजाबी हैं। इनके माता-पिता के नाम की कोई सूचना सुलभ नहीं है। यदुनाथ जी ने अपने संस्कृत ग्रंथ 'वल्लभ दिग्विजय' (१६५८ वि०) में लिखा है कि अड़ैल से व्रज जाते समय महाप्रभु वल्लभाचार्य ने सारस्वत सूरदास को अनुगृहीत किया था—

"ततोऽलर्कपुरे समागतः। ततो ब्रज समागमने सारस्वत सूरदासोऽनुगृहीतः॥"

सूरदास का जन्म सीहीं नामक ग्राम में हुआ था। सीही दिल्ली के पास चार कोस की दूरी पर आधुनिक हरियाना में स्थित है। पुराने ग्रंथों में इसका

उल्लेख गामका, सीहोरा, शेरगढ़ नामों से भी हुआ है। सीही में ही महाराज परीक्षित के पुत्र जन्मेजय ने सर्प-यज्ञ किया था। गो० गोकुलनाथ के समकालीन वृन्दावन निवासी प्राणनाथ कवि ने अष्टसखामृत में लिखा है—

श्री वल्लभ प्रभु लाडिले, सीही-सर जलजात
सारसुती-दुज-तरु-सुफल, सूर भगत विख्यात

भाव प्रकाश के अनुसार सूरदास जन्मांध थे—

'सो सूरदास जी जन्मत ही सों नेत्र नाहीं हैं। और नेत्रन को आकार गठेला कछू नाहीं; ऊपर भोंह मात्र है। सो या भाँति सों सूरदास जी को स्वरूप है।"

कुछ लोग इन्हें जन्मांध नहीं मानते। यदि ऐसा भी हो तो यह शैशवावस्था में ही अंधे हो गए रहे होंगे, वृद्धावस्था में इनके अंधा होने की बात सोची भी नहीं जा सकती।

२. जन्म काल

महाप्रभु वल्लभाचार्य का जन्म-दिन सं० १५३५ में बैशाख कृष्ण ११ है। पंचम गृह के द्वारकेश जी कृत 'भाव संग्रह' (सं० १८००) में लिखा है कि "सो सूरदास जी श्री आचार्य महाप्रभुन तें दस दिन छोटे हते।" अतएव सूरदास जी का जन्मकाल सं० १५३५ में वैशाख सुदी ५ निश्चित होता है। महाप्रभु वल्लभाचार्य के वंशज श्री गोपिकालंकार गट्टू जी काव्योपनाम 'रसिकदास' ने भी अपने निम्नांकित पद में सूरदास जी की यही जन्मतिथि दी है—

प्रगटे भक्त सिरोमनि राय
माधव सुक्ल पंचमी ऊपर, छट्ठ अधिक सुखदाय
संवत पंद्रहा पेंतिस वर्षे, कृष्ण-सखा प्रगटाय
'रसिकदास' मन आस पूरण ह्वै, सूरदास भुव आय

३. प्रारम्भिक जीवन

सूरदास के पिता निर्धन थे। उनकी गृहस्थी कष्टकर ही थी। सूर के तीन और बड़े भाई भी थे। अंधे सूर का भार परिवार के लिए दुःखद ही था। इन्हें नेत्र हीन देखकर उस ब्राह्मण ने अपने मन में बहुत सोच किया और दुःख पाया। उसने सोचा एक तो विधाता ने हमको निष्कंचन किया, दूसरे घर में ऐसा पुत्र जन्मा। अब कौन इसकी टहल करेगा और कौन इसकी लाठी पकड़ेगा। ऐसी स्थिति

में सूर को वात्सल्य स्नेह नहीं मिला और यह उपेक्षित रूप में पलते रहे। इस प्रकार धीरे-धीरे यह छह वर्ष के हो गए और इन्हें यह अनुभूति भी हो गई कि घर में इन्हें कोई नहीं चाहता।

एक दिन किसी धनीमानी खत्री यजमान ने सूर के पिता को दो मोहरें दीं। प्रसन्न हो उसने इन्हें एक कपड़े में बाँधकर ताक में रख दिया। रात में चूहे उस पोटली को उठा ले गए और घर की छत में डाल दिया। सबेरे सूर के बाप ने देखा, पोटली अपने स्थान पर नहीं है। तब वह अत्यन्त दुखी हुआ। उस दिन परिवार में भोजन नहीं बना। सूर ने कहा यदि हमें घर छोड़कर चले जाने की अनुमति दे दी जाय तो मैं बता दूँ कि मुहरें कहाँ हैं। माता-पिता, भाई सभी ने अनुमति दे दी। सूर ने बता दिया, छत के पास दीवाल में बिल है। चूहा थली उठा ले गया है। बिल के मोहड़े पर ही वह थैली है। अस्तु, बाप को थैली मिल गई, बेटा घर छोड़कर विलीन हो गया—केवल छह वर्ष की वय में।

सूर भगवान का नाम लेते हुए, लाठी का सहारा लिए हुए घर से चल पड़े। सीही से चार कोस दूर एक गाँव था। गाँव के बाहर एक तालाब था। तालाब के भीटे पर एक पीपल का वृक्ष था। सूरदास उसी पीपल की छाया में बैठ गए और तालाब का पानी पिया। संयोग से उस गाँव का ब्राह्मण जमींदार वहाँ आ निकला। उसकी गाएँ खो गई थीं। वह उन्हीं को खोजता हुआ वहां आया था। सूर ने बता दिया कि यहाँ से कोस भर दूर एक गाँव है। वहाँ के जमींदार के आदमी रात में तुम्हारी दस गाएं छोर ले गए हैं। जमींदार की घुड़साल के पीछे तुम्हारी गाएँ बँधी हैं। वह ब्राह्मण उस गाँव गया और अपनी दसों गाएँ लाया। वह सूर को दो गायें देने लगा, पर बालक अंधा सूर उन्हें लेकर क्या करता? वह तो भगवान के भरोसे निकला था। अस्तु जो भी हो, सूर को अपने शकुन-विचार की बदौलत उस ब्राह्मण जमींदार की छत्र-छाया मिली। उसने उसी पीपल के पेड़ के नीचे सूर के लिए छप्पर डलवा दिया। सूर के दिन शकुन-विचार से बीतने लगे।

धीरे-धीरे सूर के पास वस्त्र, द्रव्य, वैभव इकट्ठा होने लगा। यह 'स्वामी' कहलाने लगे। कुछ लोग इनके सेवक भी होने लगे। सूर में पद बनाने की शक्ति आ गई। गाना-बजाना, कथा-कीर्तन होने लगा। यहाँ रहते-रहते बारह वर्ष बीत गए। अब सूर १८ वर्ष के हो गए। रात में एक बार सूर का मन फिर उचटा। सबेरे इन्होंने अपने माता-पिता को बुलाकर, उन्हें सारी संपदा सौंप दी और एक वस्त्र पहन, लाठी ठेघते हुए पुनः नये स्थान की खोज में चल पड़े। कुछ सेवक भी इनके साथ चल पड़े।

४. रुनकता में सूर

सूर चलते-चलते मथुरा में आए। कुछ दिनों ये विश्रान्त घाट पर रहे। पर यह सोचकर कि नगर की भीड़-भाड़ में जंजाल ही जंजाल है, वे पुनः नए स्थान की खोज में चल पड़े। अब यह मथुरा और आगरा के बीच रुनकता के पास यमुना तट पर स्थित गऊघाट पर आए। यह यहाँ स्थान बनाकर रहने लगे।

सूरदास सुकंठ थे, शकुन-विचार में कुशल थे। अतः यह प्रसिद्ध हो गए। अनेक लोग इनके शिष्य हो गए, यह स्वामी तो थे ही। धीरे-धीरे यहाँ रहते-रहते इन्हें बारह-तेरह वर्ष बीत गए और इनकी वय ३२ वर्ष की हो गई। यह रेणुका-क्षेत्र सूर की साधना-भूमि रही।

यह सब विवरण गो० हरिराय का दिया हुआ है। इसके आगे वार्ता प्रारंभ होती है। सूरदास की इन वार्ताओं में केवल दो महत्वपूर्ण हैं। एक तो पहली वार्ता, जिसमें उनकी भेंट महाप्रभु वल्लभाचार्य से हुई है। दूसरी महत्वपूर्ण वार्ता अन्तिम वार्ता है, जिसमें इनके निधन का वर्णन है। शेष वार्ताएँ न भी होतीं, तो कोई विशेष हानि नहीं थी।

५. वल्लभ संप्रदय में दीक्षा

इसी समय सं० १५६७ में महाप्रभु वल्लभाचार्य अरइल से ब्रज आते समय गऊघाट पर उतरे। उनकी ख्याति सूर के कानों में तभी पड़ गई थी, जब वे मथुरा में विश्रांत घाट पर कुछ समय के लिए रुके थे। जब महाप्रभु गऊघाट पर उतरे, तब सूर के किसी सेवक ने महाप्रभु के आने की सूचना उन्हें दी। सूरदास ने समय देखकर महाप्रभु का दर्शन किया। महाप्रभु को भी सूर की ख्याति की सूचना हो गई थी। उन्होंने कहा, 'सूरदास कुछ भगवद्यश वर्णन करो'। तब सूरदास ने यह पद सुनाया—

हौं हरि सब पतितन को नायक।

महाप्रभु को सूर की यह दैन्यवाणी पसंद नहीं आई। उन्होंने कहा--"सूर है, तो ऐसो क्यों घिघात है ? कछु भगवद-लीला वर्णन करि।" इस पर सूर ने कहा—महराज मैं तो कछु समझता नहीं।"

इस पर महाप्रभु ने सूर को स्नान करके आने का आदेश दिया। सूरदास जब यमुना स्नान करके लौटे, तब पहले तो महाप्रभु ने उन्हें नाम सुनाया पीछे समर्पण कराया। फिर भागवत दशम स्कंध की अनुक्रमणिका सुनाई। इससे सारी

कृष्ण-लीला उनके हृदय में समुपस्थित हो गई और उन्होंने कृष्ण जन्म पर नंद महोत्सव सम्बन्धी यह पद गाया—

ब्रज भयो महरि के पूत, जब यह बात सुनी
सुनि आनंदे सब लोक, गोकुल गनक गुनी

यह पद सुन आचार्य महाप्रभु परम प्रसन्न हुए और उन्होंने सूरदास को पुरुषोत्तम सहस्र नाम सुनाया। सूर के प्रायः सभी शिष्य केवक भी महाप्रभु से शिष्य हो गए।

दो चार दिन गऊ घाट पर रहकर महाप्रभु गोकुल आए। साथ ही सूरदास जी भी आए। गोकुल का दर्शन करके सूरदास जी ने महाप्रभु को यह प्रसिद्ध पद सुनाया—

सोभित कर नवनीत लिए

६. गोवर्धन आगमन

कुछ समय तक गोकुल में रहने के उपरांत महाप्रभु सूर के सहित गोकुल से गोवर्धन आ गए। महाप्रभु के मन में सूर के भावी जीवन के लिए एक सुनिश्चित एवं निश्चिन्त योजना बन गई और उन्होंने उन्हें गोवर्धन पर्वत-स्थित श्रीनाथ जी की कीर्तन-सेवा में नियोजित कर दिया।

सूरदास जी गोवर्धन में आन्योर से पूर्व स्थित परासौली में चन्द्र सरोवर पर रहने लगे और गोवर्धन स्थित श्रीनाथ जी के कीर्तन में दिन बिताने लगे। यहाँ यह ३० वर्ष की वय में आये थे और ७२ वर्षों तक रहे। इस बीच उन्होंने नित्य प्रातःकाल के जगाइबे से लेकर शयन पर्यन्त तक के सहस्रावधि पद किए और उन्हें श्रीनाथ जी को सुनाए।

आचार्य महाप्रभु सूरदास जी को 'सागर' कहा करते थे। जिसमें सब पदार्थ हों, वह सागर। सूरदास के पदों में सब कुछ था। इसीलिए वे सागर कहलाते थे।

महाप्रभु का देहासान ५२ वर्ष की वय में सं० १५८७ वि० में हुआ। अतः सूरदास जी उनके संपर्क में कुल २० वर्षों तक (१५६७ से १५८७ तक) रहे। फिर १५८७ से १५९९ तक १२ वर्ष पर्यंत वे महाप्रभु के बड़े पुत्र गोपीनाथ जी के साथ रहे। गोपीनाथ जी के अचानक दिवंगत हो जाने पर उनके अनुज गोसाईं विट्ठलनाथ जी वल्लभ संप्रदाय के आचार्य एवं अधिष्ठाता हुए। इनके साथ सूर के ४०-४१ वर्ष बीते।

७. अष्टछाप

सं० १६०७ वि० में गोसाइं विट्ठलनाथ ने अष्टछाप की स्थापना की और इसमें अपने पिता-श्री के चार प्रमुख शिष्य-कवियों—कुंभनदास, सूरदास, कृष्णदास अधिकारी एवं परमानन्द दास तथा अपने चार शिष्यों गोविंद स्वामी, छीत स्वामी, चतुर्भुजदास और नन्ददास को सम्मिलित किया। ये सभी श्रीनाथ जी के कीर्तनियाँ थे। प्रारंभ में विष्णुदास छीपा अष्टछाप में रखे गए थे। नन्ददास के स्थायी रूप से गोवर्धन में आ जाने पर वे उनके स्थान पर अष्टछाप में सन्निविष्ट हो गए।

८. अकबर से भेंट

संवत १६२१ वि० में तानसेन अकबरी दरबार में आए। तब तक सूरदास के पद जगत-प्रसिद्ध हो गए थे। तानसेन ने एक बार दरबार में सूरदास का कोई पद गाया, जिसे सुनकर देशाधिपति को इनसे मिलने की इच्छा हुई। यह भेंट मथुरा में आयोजित हुई। सूर ने अकबर के सामने भक्ति और वैराग्य सम्बन्धी जो पद गाया, उसे सुनकर वह परम प्रसन्न हुआ। तदनंतर उसने अपनी प्रशंसा में कुछ सुनना चाहा। तब सूर ने कहा—

> नाहिन रह्यो मन में ठौर
> नन्दनन्दन अछत कैसे आनिए उर और
> चलत चितवत दचौस जागत, सुपन सोवत राति
> हृदय तें वह मदन-मूरति, छिन न इत उत जाति
> कहत कथा अनेक ऊधो, लोक लोभ दिखाइ
> कह करूं चित प्रेम पूरति, घट न सिंधु समाइ
> स्याम गात, सरोज आनन, ललित गति, मृदु हास
> 'सूर' ऐसे दरस बिनु, ए मरत लोचन प्यास

बादशाह समझ गया, ए मेरा यश क्यों गावेंगे, ए तो परमेश्वर के जन हैं। तब बादशाह ने पूछा—"सूरदास जी, तुम्हारे लोचन तो हैं नहीं, सो कैसे प्यासे मरत हैं?" इस पर सूर ने कहा—"वैसे तो लोचन सभी के हैं, पर कितने जन हैं, जिनके लोचन प्रभु-दर्शन की प्यास में मरते हों? जो नेत्र भगवान के दर्शन के प्यासे हैं, वे तो सदा भगवान के पास ही रहते हैं। वे स्वरूपानंद का रस-पान छिन-छिन करते रहते हैं, फिर भी सदा प्यासे मरते रहते हैं।"

फिर बादशाह ने पूछा—"सूरदास, बिना देखे उपमाएँ कैसे देते हो?" सूर

ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया। बादशाह स्वयं समझ गया। इनके लोचन तो भग-वान के पास रहते हैं, जो वहाँ देखते हैं, वर्णन करते हैं।

बादशाह ने सूर को दो चार गाँव, धन-दौलत देना चाहा, पर सूर को इनसे क्या करना था? उन्होंने सब कुछ अस्वीकार कर दिया।

डा० प्रभुदयाल मीतल के अनुसार सूर और अकबर की यह महान भेंट सं० १६२३-२४ में मथुरा में हुई थी। उस समय गोसाईं विट्ठलनाथ जी द्वारिकापुरी की यात्रा पर गए थे। और उनके बड़े पुत्र श्री गिरिधर जी श्रीनाथ जी को गोवर्धन से मथुरा सतघरा में लाए थे। इस अवसर पर सूरदास जी २२ दिनों तक मथुरा में रहे थे। इसी अवसर पर अकबर की भेंट सूर से हुई थी। दीन दयालु गुप्त के अनु-सार यह भेंट सं० १६३६ के लगभग हुई थी।

इस मिलन के अनंतर अकबर ने सूर के पदों के संकलन कराने की व्यवस्था की थी। ये पद फारसी लिपि में लिखे गए थे।

सूरदास जी आजीवन चंद्र सरोवर पर ही बने रहे। यदाकदा वे मथुरा और गोकुल भी चले जाया करते थे। गोसाईं विट्ठलनाथ जी इन्हें पुष्टिमार्ग का जहाज कहा करते थे।

६. निधन

गो० विट्ठल नाथ श्रीनाथ जी का श्रृंगार किया करते थे। उस समय सूरदास जी कीर्तन किया करते थे। एक दिन सूरदास जी कीर्तन करते हुए न दिखे, तब गोसाईं जी ने एक सेवक से पूछा। उसने कहा कि आज मंगल आरती का दर्शन करके, सभी सेवकों से हरिस्मरण करके, सूरदास चंद्र सरोवर चले गए। गोसाईं जी ने समझ लिया कि अब सूर का अन्तकाल आसन्न है, इसीलिए वे परासोली चले गए हैं। गोसाईं जी ने सभी भक्तजनों को ललकारा, पुष्टिमार्ग का जहाज जा रहा है, जिसे जो कुछ लेना हो ले लो। मैं भी राजभोग की आरती करके आता हूँ।

राजभोग की आरती करके गोसाईं विट्ठल नाथ परासोली आए। साथ में भीतरिया रामदास, कुंभनदास, गोविंद स्वामी, चतुर्भुज दास आदि भी परासोली आए। गोसाईं जी के सानिध्य में सूरदास जी ने शरीर छोड़ा। इनका अंतिम पद है 'खंजन नैन रूप रस माते' यह गाते-गाते उनके प्राण छूटे।

गोसाईं विट्ठल नाथ ने १६४० में गोकुल में छप्पन भोग की भावना मात्र की थी। इसका वर्णन सूरदास ने ज्यौनार रूप में किया है। गो० विट्ठल नाथ का निधन सं० १६४२ में हुआ। सूर का निधन सं० १६४०-४२ के बीच माना जा सकता है।

मीतल जी ने सूरदास का निधन १०५ वर्ष की वय में सं० १६४० में होना माना है।

४. महाकवि सूर की एकमात्र कृति : सूरसागर

महाकवि सूर के नाम पर सूर सम्बन्धी सभी शोध एवं समीक्षा ग्रन्थों में अनेकानेक ग्रन्थों की चर्चा है। पर मेरी छानबीन से इनकी केवल एक रचना सिद्ध होती है, वह है, सूरसागर। वह सूरसागर भी केवल कृष्ण लीला तक सीमित है। शेष सभी ग्रन्थ या तो ब्रह्मभट्ट सूरदास के हैं या अन्यों के। उनकी चर्चा यथास्थान की गई है। अनावश्यक पुनरावृत्ति न हो, इसीलिए यहाँ उनकी चर्चा नहीं की जा रही है।

महाकवि सूरदास वल्लभ संप्रदाय में दीक्षित होने के पहले से कवि थे। यह दास्य एवं दैन्य भाव की पद-रचना करते थे। गऊ घाट पर महाप्रभु वल्लभाचार्य से भेंट होने पर इन्होंने ऐसे ही दैन्यभाव के दो पद उन्हें सुनाए थे। बाद में महाप्रभु की प्रेरणा से इन्होंने भागवत-वर्णित दशमस्कंध की कृष्ण-कथा को आधार मानकर कृष्ण लीला के पद रचने शुरू किए। कृष्ण-जन्म-लीला का उनका स्वतः स्फूर्त पहला पद है—

ब्रज भयो महरि के पूत, जब यह बात सुनी

महाप्रभु इनके काव्य-कौशल और संगीत से तुष्ट हुए और इन्हें गोवर्द्धन पर्वत पर स्थित श्री नाथ जी की कीर्तन-सेवा में लगा दिया। यहाँ पर यह मन्दिर की सेवा के अनुकूल पद-रचना करके कीर्तन किया करते थे, जिनको मन्दिर के लिखिया लिख लिया करते थे। गायकों में केवल सूर ही नहीं थे, अन्य वल्लभ संप्रदायी भक्त कवि कुंभनदास, परमानंददास, कृष्णदास अधिकारी आदि भी थे, जिनमें कालांतर में गोविंद स्वामी छीत स्वामी, चतुर्भुजदास, नंददास आदि भी सम्मिलित हो गए। पहले इन सबके पद एक ही संग्रह में संकलित होते गए। कालांतर में जब इनकी संख्या प्रचुर परिमाण में हो गई, तब इन्हें तीन वर्गों में बाँट दिया गया—

(१) नित्य कीर्तन के पद– ऐसे पद जो प्रतिदिन मंगला आरती से लेकर शयन आरती तक अष्टकाल की सेवा के अनुसार गाए जाते थे।

(२) वर्षोत्सव के पद—ऐसे पद जो वर्ष के विभिन्न उत्सवों जैसे कृष्ण जन्माष्टमी, दशहरा, दीवाली, होली, रामनवमी, नृसिंह चतुर्दशी आदि-आदि के अवसरों पर गाए जाते थे।

(३) वसंत धमार के पद—ये भी वर्षोत्सव के ही पद हैं, पर इस अवसर के पद संख्या में बहुत हो गए थे, अतः इन्हें अन्य वर्षोत्सवों से छाँटकर एक अलग ही विभाग बना दिया गया।

कालांतर में सूर के पदों के अलग-अलग छोटे-बड़े संग्रह बने। कुछ संग्रह लीला क्रम से बने होंगे, कुछ राग रागिनी क्रम से भी संकलित हुए होंगे। पहला संग्रह सूर के जीवनकाल में ही सं० १६३९ में हो गया था, जिसमें १२७ पद संकलित हैं। यह हस्तलेख जयपुर के पोथीखाने में है। इसमें अन्य भक्त-कवियों के भी कुछ पद संकलित हैं। यह सूर सागर नहीं है। केवल पद-संग्रह है।

सूरदास को महाप्रभु वल्लभाचार्य 'सागर' कहा करते थे। यह उल्लेख वार्ता में है—

" और सूरदास सों श्री आचार्य जी महाप्रभु आप 'सागर' कहते। सो सागर काहे तें कहियत हैं? जामें सब पदारथ होइ, ताको सागर कहिए।'—वार्ता चतुर्थ।

कालांतर में, संभवत. सूर की मृत्यु के अंनतर, वल्लभ सम्प्रदाय के लोगों ने ही सूर के समस्त पदों को कृष्ण लीला के क्रम से व्यवस्थित किया और सूर के महाप्रभु वल्लभाचार्य द्वारा दिए गए 'सागर' नाम पर ग्रंथ का नाम 'सूरसागर' रख दिया।

२ राग कल्द्रुपम में सूर सागर

सं० १८९७ वि० में कृष्णानंद व्यासदेव राग सागर ने कलकत्ता से राग कल्पद्रुम के अंतर्गत सूरसागर का प्रकाशन किया। रागकल्पदुम पहले छोटे-छोटे खंडों में मुद्रित प्रकाशित हुआ था। बाद में इन्हीं छोटे-छोटे मुद्रित अंशों को जोड़ कर के चार बड़ी जिल्दें बना दी गईं। चौथी जिल्द सूरसागर की है। ये सभी संस्करण लीथो में छपे थे।

सूरसागर के इस प्रथम संस्करण में चार ग्रन्थ संकलित हैं—

१. सूरसागर सारावली, २. सेवाफल, ३. नित्य कीर्तन के पद, ४. सूरसागर।

इनमें सूरसारावली का प्रथम मुद्रण सं० १८९८ में कार्तिक शुक्ल ८, रविवार के हुआ और सूरसागर का मुद्रण सं० १८९९ में चैत मास में १९ मार्च १८४२ को पूर्ण हुआ।

सं० १९७१ में रागकल्पद्रुम के तीन खंडों का पुनर्मुद्रण कलकत्ता से हुआ। सूरसागर वाला चतुर्थ खंड पुनर्मुद्रित नहीं हुआ।

३. सूरसागर के संस्करण

सं० १९२० में नवलकिशोर प्रेस लखनऊ ने कलकत्ता वाले सूरसागर का पहली बार पुनर्मुद्रण किया। इस प्रेस से इस सूरसागर के कुल आठ संस्करण हुए हैं।

प्रथम संस्करण —सं० १९२० वि० (लीथो में)
द्वितीय संस्करण – सं० १९३१ वि०
तृतीय संस्करण—
चतुर्थ संस्करण
पंचम संस्करण—सं० १९३९ वि० (१८८२ ई०)
षष्ठ संस्करण
सप्तम संस्करण
अष्टम संस्करण—सं० १९५९ वि० (१९०२ ई०)

राग कल्पद्रुम के अन्तर्गत प्रकाशित सूरसागर शीघ्र ही, दुर्लभ क्या, अलभ्य हो गया था। इस अभाव की पूर्ति नवलकिशोर प्रेस ने उसे यथावत बिना किसी प्रकार के परिवर्तन किए हुए छापकर की।

कलकत्ता के राष्ट्रीय पुस्तकालय में रागकल्पद्रुम है, जो फट-फुट गया है। यहाँ १८९८ से १९०० तक के कई लघु खंड भी अलग-अलग हैं। उक्त पुस्तकालय के हिंदी-विभागाध्यक्ष स्व० डॉ० कृष्णाचार्य ने अपने एक लेख में रागकल्पद्रुम के सभी खंडों का संक्षेप में परिचय दिया है। उक्त लेख बिजनौर से प्रकाशित 'सूर साहित्य संदर्भ' में 'उन्नीसवीं शती में प्रकाशित सूरसागर' शीर्षक से छपा है। प्रभु दयाल जी मीतल ने भी ' सूरसागर का प्रारंभिक प्रकाशन' शीर्षक एक लेख लिखा है, जो 'हिंदुस्तानी' के सूर-विशेषांक में प्रकाशित हुआ है। यह लेख बाद में 'सूर सर्वस्व' में सम्मिलित कर लिया गया है।

प्रभुदयाल जी मीतल ने वृन्दावन के गो० दामोदराचार्य से लेकर राग-कल्पद्रुम के अन्तर्गत प्रकाशित सूर सागर का दर्शन किया था। यह संस्करण अब दर्शन के लिए भी दुर्लभ है।

लखनऊ वाला सूरसागर भी अब दुर्लभ हो गया है। १६०२ ई० में इसका अंतिम (आठवाँ) संस्करण छपा था। १८९६ ई० में राधाकृष्ण दास द्वारा संपादित सूरसागर का स्कंधात्मक संस्करण वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई से प्रकाशित हुआ। यह संस्करण अधिक जनप्रिय हुआ और लखनऊ वाले सूरसागर का मुद्रण ही बन्द हो गया।

इलाहाबाद के भारती भवन पुस्तकालय में लखनऊ संस्करण की दो प्रतियाँ हैं। एक तो १८८२ ई० का पंचम संस्करण है; जिसमें कुल ९७८ पृष्ठ है। ६१ पृष्ठों तक सूरसारावली और सेवाफल है और पृष्ठ ६२-२७३ में 'नित्य कीर्तन' है। तदनंतर पृष्ठ २७३-६७८ तक सूरसागर है। दूसरी पोथी में पृष्ठ संख्या कम है, पर आकार बड़ा है। इसका मुख पृष्ठ नहीं है, इससे प्रकाशन-काल ज्ञात नहीं हो सका, पर ग्रंथ पूर्ण है। यह दूसरे-तीसरे या चौथे संस्करणों में से किसी संस्करण की प्रति हो सकती है।

कलकत्ता एवं लखनऊ संस्करणों में विनय के पद न तो ग्रंथ के आदि में है, न अन्त में। ये रासलीला के पदों के उपरांत और मथुरा गमन के पहले सन्निविष्ट हैं। स्पष्ट है कि ग्रंथ संपादित नहीं है। राग सागर जी को जैसी भी सामग्री मिली, उन्होंने वैसे ही उसे दे दिया।

लखनऊ वाले संस्करण के द्वारा सूरसागर के लीलात्मक स्वरूप का किंचित बोध हो जाता है। पर वह भी घालमेल से रहित नहीं है।

४. लीलात्मक संस्करणवाले हस्तलेख

कलकत्ता और लखनऊ संस्करणों में केवल दशम स्कंध पूर्वार्द्ध की कथा है— जन्म बधाई से लेकर भ्रमर गीत तक। इसे ही लीलात्मक संस्करण की सीमा समझना चाहिए। सभा की खोज में लीलात्मक संस्करण के जो भी हस्तलेख प्राप्त हैं, संतोष-जनक नहीं हैं, प्रायः खंडित हैं। इनका विवरण निम्नवत है।

१. खोज रि० १९२६ / ४१६ एफ—पन्ना २७५। लिपिकाल सं० १८९९ वि०। प्राप्ति स्थान—पं० शिवनारायण बाजपेयी, बाजपेयी का पुरवा, पोस्ट—रिसैया,

जिला—बहराइच। यह वस्तुतः कलकत्ता या लखनऊ संस्करण की मुद्रित प्रति की प्रतिलिपि है। यह ग्रंथारंभ के इस अवतरण से स्पष्ट है—

"अथ श्री सूरदास जी कृत सूरसागर सारावली तथा सवा लाख पद के सूची-पत्र श्री कृष्णानन्द व्यासदेव रागसागर संग्रह कृत लिख्यते।"

लखनऊ संस्करण में यही निम्नवत है—

"अथ श्री सूरदास कृत सूर सागरावली तथा सवा लाख पद के सूचीपत्र श्री कृष्णानन्द व्यासदेव रागसागर संग्रह कृत तथा राग कल्पद्रुम लिख्यते।"

लखनऊ संस्करण में 'तथा राग कल्पद्रुम' अधिक है।

२. खोज रि० १९२३ / ४१६ जे। केवल १०३ पन्ने। अपूर्ण।

३. खोज रि० १९२६ / ४७१ एम। पन्ने २२४। लिपिकाल १८२७ बि०। अपूर्ण। कृष्ण जन्म से लेकर व्रज में रहने तक की लीलाओं का वर्णन है। लिखक ने अन्त में लिख दिया है—

"जितना पाया उतना लिखा।"

४. खोज रि० १९२६ / ४७१ एन। केवल ८० पन्ने। इसमें श्री कृष्ण जन्म, गोपियों के प्रति प्रेम, गोपियों का विरह एवं ऊधो संदेश वर्णित है।

५. खोज रि० १९२९/३१९ बी। पत्र १४३। लिपिकाल सं० १७९७ वि०। प्रथम पद 'हरिमुख देखिए वसुदेव' है। अन्त में विनय के पद हैं—

१. द्वै मैं एकौ तौ न भई

२. गरब गोपालहिं भावत नाहीं

३. हरि जू मोते और न पापी

६. खोज रि० १९३२ / २१२ आई। पत्र ११०। खंडित।

इसमें राधा कृष्ण का शृंगार, भक्ति, प्रेम आदि स्फुट विषय सम्बन्धी पदों का चयन है।

प्रथम पद है—

- जब वसुदेव देवकी ब्याहीं, भई अनाहद बानी हो

७. खोज रि० १९४१ / २६४ ग। पत्र ९८। संकलित पद संख्या ६३८। पहला पन्ना नहीं है।

८. खोज रि० १९४१ / २९४ झ । पन्ना ६१७ । अपूर्ण । यह काशी नागरी प्रचारिणी सभा में है । हस्तलेख दो भागों में है । पहले भाग में दशम स्कंध पूर्वार्द्ध की लीलाएँ हैं । दूसरे भाग में विष्णुपद हैं, जिनमें अनेक लीलाओं के चुने पद संगृहीत हैं । प्रारम्भ का एक पन्ना नहीं है । सभा के सूरसागर में जिन हस्तलेखों की सहायता ली गई है, उनमें इसकी संख्या १७ है ।

आठों हस्तलेखों में ग्रंथारंभ कृष्ण जन्म से होता है । यही इनके लीलात्मक संस्करण होने का सूचक है । इनमें स्कंधात्मक विभाग नहीं है ।

५. सूरदास की वार्ता में सूर सागर के स्कंधात्मक रूप का उल्लेख नहीं

चौरासी वैष्णवन की वार्ता के १६९७ वाले हस्तलेख में यह लेख है—

> "पाछे श्री आचार्य जी महाप्रभुन ने सूरदास जी कों
> पुरुसोत्तम सहस्र नाम सुनायो । तब सूरदास जी कों
> श्री भागवत की स्फूर्ति भई । पाछे जो पद किए सो
> श्री भागवत अनुसार किए ।"

सूरदास की प्रथमवार्ता के अन्त में यहाँ भागवत दशम स्कंध के लिए ही आया है ।

चौरासी वैष्णवन की वार्ता के १७५२ वाले हस्तलेख में यह अंश यों है—

"पाछें श्री आचार्य जी महाप्रभुन ने सूरदास जी को पुरुषोत्तम सहस्र नाम सुनायो । तब सूरदास जी कों (के हृदय में) श्री भागवत की स्फूर्ति भई (लीला स्फुरी सो सूरदास ने प्रथम स्कंध की भागवत से द्वादश स्कंध पर्यंत कीर्तन किए । तामें अनेक दानलीला मानलीला आदि वर्णन किए हैं) । पाछे जो पद किए सो श्री भागवत अनुसार किए ।"

इन अवतरणों से स्पष्ट है कि १६९७ तक सूरसागर दशमस्कंध तक ही सीमित था या इसका लीलात्मक स्वरूप ही था, सं० १७५२ तक इसका स्कंधात्मक स्वरूप बन गया था । १६९७ वाले हस्तलेख में इसके द्वादश स्कंधात्मक स्वरूप का कोई उल्लेख नहीं है ।

इस सम्बन्ध में उदय शंकर शास्त्री सूर ग्रन्थावली पंचम भाग में मुद्रित 'सूर सागर की सामग्री का संकलन और उसका संपादन, शीर्षक अपने लेख में लिखते हैं—

"सं० १७४० से प्राप्त होने वाले सूरसागर के स्कंधात्मक हस्तलेख निश्चय

ही सूरदास जी के निधन के ठीक एक सौ वर्ष बाद के लिखे हुए हस्तलेख हैं, जिससे यह अनुमान तो स्वाभाविक ही है कि सूरसागर का स्कंधात्मक रूप परवर्ती है। बारह स्कंधों की पद-रचना का उल्लेख वार्ता की सबसे प्राचीन सं० १६९७ वाली प्रति में नहीं है। यह पाठ 'भाव प्रकाश' वाली वार्ता का है, जो बाद का है।"

—सूर ग्रंथावली पांचवाँ भाग, पृष्ठ ३१०३।

डा० ब्रजेश्वर वर्मा स्वीकार करते हैं कि सूरदास की वार्ता में सूरसागर के द्वादश-स्कंधात्मक स्वरूप का उल्लेख है—

(१) "आचार्य जी ने सूरदास जी को 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' सुनाया, तब उन्हें सम्पूर्ण भागवत स्पष्ट हो गई और उन्होंने उसीके अनुसार भागवत के द्वादश स्कंधों पर पद बनाए।"

—सूरदास पृ० २५

(२) "वार्ता में कहा गया है कि सूरदास ने श्री मद्भागवत के द्वादश स्कंधों पर पद रचना की।"

— सूरदास पृ० ४४

पीछे सूरदास की वार्ता से इस प्रकरण के जो अवतरण दिए गए हैं, उनसे डा० ब्रजेश्वर का यह कथन भ्रमात्मक सिद्ध होता है। वार्ता के १६९७ वाले हस्तलेख में द्वादश स्कंध की चर्चा नहीं है। यह १७५२ वाले हस्तलेख में है, वह भी गोस्वामी हरिराय के भाव प्रकाश में।

६. सूरश्याम एवं सूरजदास छाप के पद

१६९७ वाले हस्तलेख में सूरश्याम वाला प्रकरण नहीं है। १७५२ वाले हस्तलेख में यह है। इसके अनुसार, सूरसागर के सूरश्याम छाप वाले पद महाकवि सूर के नहीं हैं, स्वयं श्रीकृष्ण द्वारा विरचित हैं और सूर सागर में उन्हीं के द्वारा सन्निविष्ट कर दिए गए हैं। यदि हम श्रीकृष्ण की अलौकिकता पर विश्वास न करें, और इस सूरश्याम को हाड़-मांस का कोई मनुष्य मानें, तो यह ब्रह्मभट्ट सूरजचंद या सूरजदास से भिन्न और दूसरा कौन हो सकता है, जिसे स्वयं श्रीकृष्ण ने 'सूरसुश्याम' कहा है।

महाकवि सूरदास की चार छापें हैं—१. सूर, २. सूरदास, ३. सूरजदास, ४. सूरश्याम। इनका उल्लेख चौरासी वैष्णवन की वार्ता के १६९७ वाले हस्तलेख के अन्तर्गत सूरदास की छठीं वार्ता के भावप्रकाश में हुआ है। कहा गया है कि 'सूर' महाप्रभु वल्लभाचार्य द्वारा दिया हुआ, सूरदास गोसाईं विट्ठलनाथ द्वारा दिया

हुआ, 'सूरजदास' राधा जी द्वारा दिया हुआ नाम है एवं 'सूरश्याम' स्वयं कृष्ण द्वारा निर्मित २५ हजार पदों में प्रयुक्त छाप है।

साहित्य लहरी (सं० १६७७ वि०) वाले परिचय-पद में सूर नवीन के कृष्ण द्वारा तीन नाम रखे जाने का यह उल्लेख है—

नाम राखे मोर सूरजदास सूर सु श्याम

कृष्ण ने तीन नाम रखे—(१) सूरजदास, (२) सूर, (३) सूरश्याम।

इस परिचय-पद से ज्ञात हुआ कि सूरदास की वार्ता में भाव प्रकाश के चार नामों वाला यह अंश उस समय जोड़ा गया, जब महाकवि सूरदास के लीलात्मक सूरसागर में सूर नवीन के स्कंधात्मक सूरसागर का घालमेल कर दिया गया।

सूरजदास और सूरश्याम छाप वाले अधिकांश पद सूर नवीन के हैं। कुछ पद महाकवि सूर के भी इन छापों से मिलते हैं, जैसा कि १६३९ वाले जयपुर हस्तलेख से स्पष्ट है।

७. लीलात्मक संस्करण का पद-परिमाण

लखनऊ या कलकत्ता संस्करण में पदों की जो संख्या दी गई है, वह अशुद्ध है। पं० उमाशंकर जी शुक्ल ने इसमें संकलित समस्त पदों की गणना करके इसकी समस्त पद-संख्या ३३५८ निर्धारित की है।

इन संस्करणों में भी सूरजदास एवं सूर श्याम छाप वाले प्रचुर पद मिलते हैं। अतएव इन्हें भी अष्टछापी सूरदास का सूरसागर कह पाना सम्भव नहीं। सूरजदास और सूरश्याम के पदों को निकाल देने पर इसके वास्तविक पद-परिमाण का कुछ अनुमान किया जा सकता है।

सूरसागर के लीलात्मक स्वरूप वाले हस्तलेखों पर विचार करते हुए श्री प्रभुदयाल जी मीतल लिखते हैं—

"लीलात्मक प्रतियों में पदों की संख्या दो हजार से भी कम होती है, जबकि स्कंधात्मक प्रतियों में पाँच हजार तक पद मिल जाते हैं। इनमें प्रक्षिप्त पद पर्याप्त संख्या में सम्मिलित कर दिए गए हैं।"

—सूर सर्वस्व, पृष्ठ १९२।

उदय शंकर शास्त्री भी सूर ग्रंथावली पंचम भाग में संकलित अपने लेख 'सूरसागर की सामग्री का संकलन और उसका संपादन' में लिखते हैं—

"संग्रहात्मक प्रतियों में से कोई भी प्रति २००० पदों से अधिक की उपलब्ध नहीं है, जबकि स्कंधात्मक प्रतियाँ २००० से ५००० पदों तक की प्राप्त हैं। ये प्रतियाँ सं० १७६३ से १९३० तक की लिखी हुई हैं।"

—सूर ग्रंथावली, पंचम खंड, पृष्ठ ३१०५।

८. लीलात्मक संस्करण के प्रकाशन के वर्तमान उपक्रम

१९६५ ई० में कलकत्ता के बिनानी ट्रस्ट से मथुरा के पं० जवाहरलाल चतुर्वेदी द्वारा संपादित सूर सागर का प्रथम खंड प्रकाशित हुआ। इसमें लीला-क्रम के अनुरूप जन्मलीला से माखन चोरी तक के केवल ४९४ पद हैं। प्रकाशक श्री गोवर्धनदास बिनानी के निधन हो जाने के कारण यह प्रयास यहीं समाप्त हो गया। चतुर्वेदी जी मानते थे कि सूरसागर का प्रारम्भिक रूप संग्रहात्मक या लीलात्मक ही था, स्कंधात्मक रूप संग्रहात्मक रूप से सौ सवा सौ वर्ष बाद का है। चतुर्वेदी जी का यह संस्करण १६ खंडों में मुद्रित होने वाला था। अंततः इसका पूर्ण रूप क्या होता, नहीं कहा जा सकता। चतुर्वेदी जी स्कंध १—९, ११—१२ का क्या करते, यह अज्ञात है।

अखिल भारतीय विक्रम परिषद काशी ने 'सूर ग्रंथावली' के रूप में अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य किया है। यह ग्रंथावली सटीक है। इसमें सूरसागर की टीका पहली बार की गई है। इसमें सूरसागर को लीलाक्रम से प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है, पर इसमें स्कंध १—९, ११-१२ बने हुए हैं। स्पष्ट है इस दृष्टि से यह प्रयास सफल नहीं कहा जा सकता। यह ग्रंथावली पाँच खंडों में प्रकाशित है।

प्रथम, द्वितीय खंड — १९७४ ई०
तृतीय खंड — १९७६ ई०
चतुर्थ खंड — १९७८ ई०
पंचम खंड — १९७९ ई०

महाकवि सूर के संग्रहात्मक या लीलात्मक सूरसागर का प्रकाशित होना अभी बाकी है। इस सम्बन्ध में डा० ब्रजेश्वर वर्मा का यह कथन उल्लेखनीय है—

"उपलब्ध प्रतियों के आधार पर प्रायः यह अनुमान है कि लीला-क्रम वाला रूप ही सूरसागर का वास्तविक रूप है और उसी की परम्परा प्राचीनतम है। नवल-किशोर प्रेस का संस्करण लीला-क्रम का ही है, यद्यपि कदाचित उसे उसका प्रतिनिधि नहीं कहा जा सकता।"

—सूरदास, पृष्ठ ४९।

सूर नवीन

चंद्र भट्ट कुलहंस, ग्वालियर रामदास-सुत
अकबर के गायक सुकंठ, व्रज मंडल सों हित
गोकुलनाथ गोसाइं 'वल्लभ' के सिख प्यारे
एक-लक्ष पद-बंद रचे हरि लीला वारे
स्कंधात्मक भागवत सूरसागर रचि भारी
तासु सार सारावलि में भरि, भजे मुरारी
कूट काव्य में कुसल, रची साहित लहरी है
हरि में डूबी डीठि, सूर की गति गहरी है
सूरज ह्वै गए सूरदास अरु सूरश्याम हैं
स्याम-पुष्टि सों पुष्ट, सूर यह पूर्णकाम हैं

अति विसद सरस पद रचि मधुर, सूर सूर सों मिलि रहिय
ये पानी में के लोन भे, जो बिलगाइ, विदग्ध-हिय

१. सूर नवीन के जीवन-चरित के स्रोत :

(क) साहित्य लहरी

साहित्य लहरी के महाकवि सूर की रचना समझे जाने के कारण

सरदार कवि ने साहित्य लहरी की टीका सं० १९०४ वि० में काशी नरेश महाराज ईश्वरीनारायण सिंह की प्रेरणा से की—

सोरठा—काशी नाथ उदार, उद्दत उद्दित नंद है
ताकी शरण विचार, रहत सदा सरदार कवि
दोहा—मतन मतन ते सूर कवि, सागर कियो उदार
बहुत यतन ते मथन करि, रतन लहे सरदार ।। १
तिन पर सुचि टीका रची, सुजन जानिबे हेतु
मनु सागर के तरन को, सुन्दर सोभा सेतु ।। २
संवत वेद[४] सु सून्य[०] ग्रह[९], औ आतमा[१] विचार
कातिक सुदि एकादसी, समुझि शुद्ध बर बार ।। ३

ग्रंथारंभ में शीर्षक है—"सूरदास का दृष्टिकूट सटीक" । ग्रंथांत में है—
"इति श्री सुकवि सरदार कृता साहित्य लहरी समाप्ता ।"

सरदार कवि ने ग्रंथारंभ में स्पष्ट ही इस ग्रंथ को 'सूरदास का' लिखा है। साथ ही इसमें जो कुल ११० पद हैं, उनमें से १७ में सूरदास, ४८ में सूर, १९ में सूरश्याम और २१ पदों में सूरज छाप है। तीन पद छाप-हीन हैं। सूर, सूरदास, सूरश्याम, सूरज ये सभी छापें महाकवि सूरदास की समझी जाती रही हैं। अतः इस ग्रंथ को महाकवि सूर की रचना समझने का भ्रम हो जाना सहज सम्भव है।

इन कारणों के अतिरिक्त साहित्य लहरी के प्रसिद्ध महाकवि सूर की रचना समझे जाने का एक और बड़ा कारण है। वंश-परिचय वाले पद के अन्त में दो पंक्तियाँ हैं—

मोहि मनसा इहै ब्रज की बसै सुख चित थाप
थपि गुसाईं करी मेरी आठ मद्धे छाप

सं० १६०२ में विट्ठलनाथ जी ने अष्टछाप की स्थापना की थी। विट्ठलनाथ जी गोसाइँ जी के नाम से प्रसिद्ध हैं। 'गोसाइँ' का अर्थ विट्ठलनाथ कर लेना और 'आठ मद्धे छाप' को अष्टछाप समझ लेना सहज स्वाभाविक है।

ऐसी स्थिति में साहित्य लहरी को महाकवि सूरदास की रचना समझ लेने की भूल तो हुई, पर बहुत भूल नहीं हुई। इस भूल का प्रारम्भ साहित्य लहरी के गोपीनाथ पाठक के लाइट प्रेस बनारस में १८६९ ई० में प्रकाशित होने के साथ होता है। १८६९ ई० से १९४४ ई० तक यह भूल बराबर सत्य के रूप में स्वीकृत होती चली आई। १९४४ ई० में पहली बार डा० ब्रजेश्वर वर्मा ने अपने शोध-प्रबन्ध 'सूरदास' में इस भूल की ओर संकेत किया और कहा कि यह प्रसिद्ध अष्टछापी सूर की रचना नहीं है।

२. साहित्य लहरी में स्व-जीवन संबंधी कवि के आत्म-कथन

साहित्य लहरी में ऐसे दो पद हैं, जिनसे इसके रचयिता के सम्बन्ध में अभिज्ञता होती है। पद-संख्या १०९ में ग्रंथ के नाम, ग्रंथ रचना का हेतु, ग्रंथकार का नाम एवं ग्रंथ का रचनाकाल दिया गया है। पद-संख्या ११० में कवि ने आत्म-परिचय दिया है, जिसे मिश्रबंधु से लेकर आज तक के अन्य सूर-अध्येता क्षेपक घोषित करते आए हैं। इसी पद में कवि के सूर, सूरजदास और सूरश्याम छापों का उल्लेख है और इसी में उलझाव वाला यह चरण है—

थपि गुसाइँ करी मेरी आठ मध्ये छाप

३. ग्रंथ-नाम : साहित्य लहरी

रचना काल सूचक इस पद के अंतिम डेढ़ चरण हैं—

·······················विचारि सूर नवीन
नंदनंदन दास हित, साहित्य लहरी कीन।

इनसे तीन सूचनाएँ मिलती हैं—

१. ग्रंथ का नाम 'साहित्य लहरी' है।
२. ग्रंथ का रचयिता 'सूर नवीन' है।
३. ग्रंथ की रचना 'नंदनंदन दास' के लिए हुई।

सरदार कवि की टीका जब लाइट प्रेस बनारस से १८६९ ई० में प्रथम बार प्रकाशित हुई, तब इसका नाम था 'सूरदास के दृष्टिकूट'। जब यह नवलकिशोर प्रेस लखनऊ से छपने लगी, तब इसका नाम हो गया 'श्री सूरदास का दृष्टिकूट'।

सरदार कवि की यह टीका दो भागों में है, प्रथम भाग में साहित्य लहरी है, दूसरे भाग में सूरसागर से संकलित कुछ कूट पद हैं। साहित्य लहरी में तो दृष्टिकूट हैं ही। साहित्य लहरी और सूरसागर के कूटों के रचयिता को अभिन्न मानकर सरदार ने ग्रंथ का नाम 'सूरदास के दृष्टिकूट' रख दिया।

१८९२ ई० में खड्ग विलास प्रेस बाँकीपुर, पटना से इस ग्रंथ का भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र वाला संस्करण 'साहित्य लहरी' नाम से छपा था। इसके बाद १९३९ ई० में महादेव प्रसाद वाला संस्करण भी साहित्य लहरी नाम से छपा। अब इसके जितने भी आधुनिक संस्करण हुए हैं, सब में इसका नाम साहित्य लहरी ही है।

४. साहित्य लहरी के रचयिता सूर नवीन

साहित्य लहरी के रचयिता ने अपने को 'सूर नवीन' कहा है। साहित्य लहरी के अध्येताओं ने इस पर ध्यान नहीं दिया है। प्रभुदयाल जी मीतल का ध्यान इस पर गया था, पर वे भटक गए। उन्होंने 'नवीन' को 'सूर' से हटाकर 'विचार' से सटा दिया। अस्तु सूर 'नवीन' नहीं रह गऐ, विचार नवीन हो गए। उनका कहना है :—

(१) साहित्य लहरी केवल शृंगार रस का ग्रंथ नहीं है। इसमें अलंकार, नायिका भेद और भाव भेदादि का सम्मिलित रूप से क्रमबद्ध कथन पहली बार हुआ है।

(२) यह कथन सामान्य रूप से न होकर दृष्टिकूट रूप में हुआ है।

(३) एक ही दृष्टिकूट में दो दो काव्यांगों का क्रम से वर्णन और पद के अंत में उक्त काव्यांगों का उल्लेख करना कवि की प्रतिभा का दयोतक है।

(४) इस प्रकार की रचना साहित्य लहरी के पहले नहीं हुई थी।

इन नवीनताओं के कारण मीतल जी का निष्कर्ष है—

"इस ग्रंथ की रचना द्वारा सूरदास ने निश्चय ही कवियों के समक्ष एक 'नवीन विचार' प्रस्तुत किया था।"

ऊपर वर्णित बातें साहित्य लहरी की नवीनताएँ हो सकती हैं, पर इनमें कोई 'नवीन विचार' नहीं है। मीतल जी ने 'विचार' को संज्ञा मान लिया है, यह वस्तुतः 'विचारि' है और पूर्वकालिक क्रिया है। इसका अर्थ है 'विचार

करके।' इस प्रकार 'नवीन' पर ध्यान जाते हुए भी, वह न जाने के बराबर हो गया। ऐसा क्यों हुआ? इसका स्पष्ट कारण यह है कि मीतल जी इसे अष्टछापी सूर की रचना मानते आए हैं। यह धारणा उनमें इतनी अधिक दृढ़तापूर्वक बद्धमूल हो गई है कि अन्य नवीन विचारों के लिए उनके मन के द्वार बन्द हो गए हैं। वे यदि नवीन को सूर का विशेषण मान लेते हैं, तो यह किसी परवर्ती सूर की रचना सिद्ध हो जायगी, जिसका सिद्ध होना उन्हें अभीष्ट नहीं।

प्रियतम छवि नैनन बसी, पर छवि कहाँ समाय

अस्तु बेचारा 'सूर नवीन' आकर भी लौट गया।

आज से प्रायः पन्द्रह वर्ष पूर्व आचार्य पं० विश्वनाथ प्रसाद जी मिश्र ने अपनी बैठक में मेरा ध्यान इस सूर नवीन की ओर आकृष्ट किया था। मिश्र जी कहना चाहते थे कि साहित्य लहरी महाकवि सूर की रचना नहीं है। बहुत बाद की नवीन रचना है। वे यह भी कहना चाहते थे कि यह संभावतः सरदार कवि की ही रचना है, उन्हीं की करतूत है। मैंने प्रतिवाद किया था कि साहित्य लहरी भले ही अष्टछापी सूर की रचना न हो, पर यह सरदार की रचना तो नहीं है। उनसे बहुत पहले की रचना है।

'हिन्दी साहित्य का अतीत' भाग १ में मिश्र जी इस सम्बन्ध में लिखते हैं—

(१) 'इस पद में 'सूर नवीन' और 'नंदनंदनदास' दो पदों पर 'अधिक विचार करने की आवश्यकता है। जिन सूर ने साहित्य लहरी का निर्माण किया, वे कोई 'नवीन सूर' हैं।

(२) मेरा अनुमान है कि साहित्य लहरी का निर्माण या तो सरदार कवि के कुछ पहले हुआ या सरदार कवि के समय में ही हुआ। इस दृष्टि से विचार करने पर साहित्य लहरी का निर्माण-काल १९१७ जान पड़ता है। 'रस' का अर्थ 'नौ' लेना चाहिए। हिन्दी के कवि 'रस' का अर्थ नौ भी लेते रहे हैं। सरदार कवि का कविताकाल सं० १९०२ से १९४० तक माना गया है।'

आचार्य प्रवर भूल गए कि सरदार कवि की टीका का समय संवत १९०४ कातिक सुदी ११ है।

संवत बेद[४] सु सून्य[०] ग्रह[९], औ आतमा[१] बिचार

कातिक सुदि एकादसी, समुझि सुद्ध बर बार

जिस ग्रंथ की टीका सं० १६०४ में लिख दी गई हो, उसका रचनाकाल सं० १६१७ कैसे हो सकता है ?

आचार्य मिश्र ने यद्यपि साहित्य लहरी के रचयिता सूर को 'नवीन' माना और मीतल जी (१९६१ ई०) से तीन वर्ष पहले सं० २०१५ (१९५८ ई०) में उनका ध्यान इस 'नवीन' पर गया, पर वे कोई सुनिश्चित विचार नहीं दे सके।

इन दो महारथियो के अतिरिक्त सूर के किसी अन्य अध्येता का ध्यान इस 'नवीन' पर नहीं गया है। अभी हाल ही में सूर के एक अधिकारी विद्वान से मैंने यों ही बात बात में कहा कि साहित्य लहरी के रचयिता ने अपने को 'सूर नवीन' कहा है, तो वे आश्चर्य चकित हो गए और पूछने लगे कि ऐसा उसने कहाँ कहा है। मैंने कहा कि उसी 'मुनि पुनि रसन के रस लेख' वाले पद में। तो उन्होंने कहा कि मेरा ध्यान इस पर नही गया था।

मेरा स्पष्ट मत है कि साहित्य लहरी अष्टछापी सूर की रचना नहीं है, यह सूर नवीन की रचना है और इसका रचनाकाल सं० १६७७ वि० है, न कि १६०७, १६१७ या १६२७, और नहीं १६७७ ही।

५. साहित्य लहरी की रचना का हेतु : नन्दनन्दनदास

सूर नवीन ने साहित्य लहरी की रचना नंदनंदनदास हित की है। इस नन्दनन्दनदास पर भी सूर के पूर्ववर्ती अध्येताओं ने विचार किया है।

कांकरोली विद्या विभाग के श्री द्वारिकादास परीख ने नंदनंदनदास का अर्थ प्रसिद्ध अष्टछापी कवि नंददास किया है। उनका मत है कि जब नंददास गोस्वामी विट्ठलनाथ की शरण में आए, तब गोस्वामी जी ने उन्हें सूरदास के सत्संग में रख दिया। तभी नंददास के पांडित्य के मद को पूर्ण करने तथा उनको मानसिक एकाग्रता प्राप्त कराने के लिए सूरदास ने साहित्य लहरी की रचना की थी।

इस पर डॉ० दीनदयाल गुप्त का मत है—

"इस अनुमान का कोई विशेष प्रमाण नहीं है, परन्तु नंदनंदनदास शब्द से नंददास का अनुमान अवश्य होता है। संभव हो सकता है कि नंददास जी अपने संप्रदाय में नंदनंदनदास के नाम से भी सम्बोधित किए जाते रहे हों, वैसे नंददास नंदनंदनदास तो थे ही।"

—अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय पृष्ठ ८७

श्री महावीर सिंह गहलोत ने परीख जी के मत का खंडन किया और नंदनंदनदास का अर्थ कृष्णदास अधिकारी किया है। डॉ० प्रभुदयाल मीतल ने गहलोत जी का खंडन किया है और कहा है—

'नंदनंदनदास का सुगम अर्थ भगवान श्रीकृष्ण के दास अर्थात् भगवद्भक्त' किया जा सकता है।"

मीतल जी का मत है कि यह कृष्णदास कृष्णदास अधिकारी तो नहीं ही हैं, यह कोई कृष्णदास या कृष्ण-भक्त हैं।

मैं इस नंदनंदनदास को व्यक्तिवाचक संज्ञा न मानकर जातिवाचक संज्ञा स्वीकार करता हूं। यह कृष्णदास 'विशेष' नहीं हैं। साहित्य लहरी का रचनाकाल सं० १६७७ सिद्ध हो जाने से 'नंदनंदनदास' में अब न तो अष्टछापी नंददास को खोज निकालना है, न अष्टछापी कृष्णदास अधिकारी को ही। फिलहाल इसका अर्थ सामान्य कृष्णभक्त ले लेना चाहिए। भविष्य में इनमें कोई विशेष कृष्णदास प्रतीयमान हों, तो कोई हर्ज नहीं।

६. साहित्य लहरी का रचनाकाल : सं० १६७७

साहित्य लहरी का रचनाकाल सूचक पद निम्नांकित है—

> मुनि पुनि रसन के रस लेख
> दसन गौरी नंद के लिखि, सुबल संवत पेख
> नंदनंदन मास, छय ते हीन तृतिया, बार—
> नंदनंदन जनम ते है बान, सुख आगार
> तृतिय ऋक्ष, सुकर्म योग, विचारि सूर नवीन
> नंदनंदन दास हित, साहित्य लहरी कीन ॥ १०९

सरदार कवि ने इसका यह अर्थ किया है—

"संवत सोरह सै सात, बैसाख मास, अक्षय तृतीया तिथि,

बुधवार, सुकर्म योग।"

सरदार कवि ने रचना का दिन बुधवार कहा है, जो ठीक नहीं। बुधवार तो कृष्ण का जन्म दिन हैं। बुध से बान अर्थात् पांच दिन बाद, रविवार को ग्रंथ पूर्ण हुआ।

सरदार ने यह अर्थ किस प्रकार किया, इसकी चर्चा नहीं की। भारतेन्दु ने अपने लेख में इस संवत की कोई चर्चा नहीं की। तासी, शिव सिंह सेंगर, ग्रियर्सन ने भी

इस संवत की चर्चा नहीं की। हाँ, राधाकृष्णदास ने साहित्य लहरी का रचनाकाल संवत १६०७ माना है और वे लिखते हैं—

"सूरदास जी ने दृष्टकूट अर्थात् चित्र काव्यों का संग्रह 'साहित्य लहरी' नामक एक ग्रंथ सं० १६०७ में बनाया है।"

बाबू साहब ने पाद टिप्पणी में रचनाकाल-सूचक पद उद्धृत कर दिया है, अर्थ नहीं किया है। साहित्य लहरी चित्र काव्यों का संग्रह नहीं है। इसमें दृष्टिकूट हैं।

मिश्रबन्धु पहले लोग हैं, जिन्होंने हिन्दी नवरत्न में इसका अर्थ किया। वे मूल पद को देकर इसका यह अर्थ करते हैं—

"मुनि = ७; रसन = ० (जिसमें कोई रस नहीं, अर्थात् जो कुछ भी नहीं, याने शून्य है); रस = ६, दसन गौरीनंद = १; = १६०७; नंदनंदन मास = वैशाख (मधु); छय ते हीन तृतिया = अक्षय तृतीया; तृतिय ऋक्ष = कृत्तिका नक्षत्र; सुकर्म जोग (देखो सरदार कृत सौर दृष्टकूट की टीका, पृष्ट ७१)। अतः विदित हुआ कि साहित्य लहरी सं० १६०७ वि० में लिखी गई।"

—हिन्दी नवरत्न, पृष्ठ २२०-२१।

आचार्य शुक्ल ने अपने सुप्रसिद्ध इतिहास में इस पद के अनुसार रचनाकाल सं० १६०७ ही स्वीकार किया है, पर उन्होंने भी अर्थ नहीं किया है। हाँ, उन्होंने 'मुनि पुनि' को 'मुनि सुनि' कर दिया है। उन्होंने सुनि का अर्थ शून्य किया और 'रसन के रस' को एक पद मानकर समग्र पद का अर्थ ६ किया।

सं० १९०४ में सरदार ने साहित्य लहरी का रचनाकाल सं० १६०७ स्वीकार किया था, तब से लेकर आचार्य शुक्ल तक यही संवत सर्व-स्वीकृत रहा। मुंशीराम शर्मा ने अपने सूरसौरभ में सर्वप्रथम इस पर पुनः विचार किया और उन्होंने 'रसन' का अर्थ २ किया—क्योंकि रसना के दो गुण हैं—(१) वाणी, (२) स्वाद। इस प्रकार उन्होंने इसका रचनाकाल सं० १६२७ स्वीकार किया। पर शर्मा जी का अभिमत उन्हीं तक सीमित रह गया। लोगों ने इसे स्वीकार नहीं किया।

१९४७ ई० में डा० दीनदयाल गुप्त ने 'अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय' में साहित्य लहरी का रचनाकाल सं० १६१७ स्वीकार किया। उन्होंने रसन' का अर्थ एक किया। मुंशीराम शर्मा ने सुबल संवत के सुबल का अर्थ 'वृषभ' किया था और कहा था कि सं० १६२७ में वृषभ संवत था। डा० दीनदयालु गुप्त ने 'सुबल' का अर्थ 'प्रभव' किया। उनके अनुसार सं० १६१७ में प्रभव संवत था।

डा० दीन दयाल गुप्त के अनुसार आज तक इन पंक्तियों का अर्थ १६१७ किया जा रहा है।

डा० ब्रजेश्वर वर्मा ने 'सूरदास' में इस पद का यह अर्थ किया है—

"इस पद से एक और संख्या निकाली जा सकती है, यथा—

मुनि = ७, पुनि (पुनः मुनि) = ७, रसन के रस = ६, और दसन गौरीनंद को = १—१६७७। यदि सूरदास के समय से इसे मिलाने का आग्रह न हो तो यह संख्या अर्थसुकरता के अधिक निकट है, क्योंकि इसमें न तो 'पुनि' को छोड़ा गया है, न 'रसन के रस' को खंडित किया गया है। ऐसा मानने से स्वतः साहित्य लहरी सूर की रचना नहीं ठहरती। परन्तु साहित्य लहरी का रचनाकाल १६७७ जितना प्राचीन भी नहीं माना जा सकता।"

—सूरदास, चतुर्थ संस्करण १६७९; पृष्ठ १०४-१०५।

मैं साहित्य लहरी का रचनाकाल न तो १६०७ मानता हूँ, न १६२७, न १६१७ ही। मैं इसका रचनाकाल सं० १६७७ ही मानता हूँ, जैसा कि डा० ब्रजेश्वर वर्मा ने संकेत किया है। फर्क इतना ही है कि डा० वर्मा सं० १६७७ पर भी स्थिर नहीं हैं, जब कि मैं इस पर पूर्ण रूप से स्थिर हूँ। वे साहित्य लहरी का रचनाकाल सं० १६७७ विक्रमी जितना भी प्राचीन नहीं मानना चाहते, पर उनके आधार क्या हैं, कुछ स्पष्ट नहीं। क्या वे कहना चाहते हैं कि यह पद क्षेपक है ?

जिन लोगों ने १६०७ अर्थ किया है, उनके अर्थों में दो दोष हैं। एक तो वे 'पुनि' को छोड़ देते हैं, दूसरे 'रसन के रस' को असंगत रूप से दो पद मानकर अर्थ करते हैं। इस असंगति की ओर आचार्य शुक्ल का ध्यान गया था। इसीलिए उन्होंने 'पुनि' का 'सुनि' कर दिया और 'रसन के रस' को एक पद मानकर इसका अर्थ ६ किया। शुक्ल जी भाषा और अर्थ के पंडित थे। इसलिए उन्होंने यह परिवर्तन किया, भले ही उन्होंने अपनी इस खटक का कोई उल्लेख नहीं किया।

साहित्य लहरी का रचयिता सूर नवीन साधारण कवि नहीं हैं। इसका एक-एक शब्द अर्थ से खाली नहीं है। 'पुनि' का प्रयोग व्यर्थ ही नहीं किया गया है, यह अव्यर्थ है। जैसा कि डा० वर्मा ने कहा है इसका अर्थ है 'पुनः मुनि = ७'।

'रसन के रस' को द्विधा विभक्त करके 'रसन' का अर्थ ०, २ या १ करना ठीक नहीं। रसन का सम्बन्ध रस से है। कवि कहना चाहता है कि काव्य के रस

नहीं, जिह्वा के रस। काव्य के रस ९ होते हैं, जिह्वा के ६। यदि 'रसन' से वह संख्याभिव्यक्ति कराना चाहता, तो वह स्पष्ट रूप से 'रसन के रस' के स्थान पर 'रसन औ रस' जैसा प्रयोग कर सकता था। कोई भी भाषा का पंडित 'रसन के रस' से दो-दो संख्याएँ निकालने की भूल नहीं कर सकता।

डा० प्रभुदयाल मीतल ने डा० माता प्रसाद गुप्त से साहित्य लहरी के रचना संवत की गणना कराई थी और सत्रहवीं शती के प्रत्येक दशक के सातवें संवत्सर की जाँच कराई थी। यह जाँच उन्होंने स्व-संपादित साहित्य-लहरी की भूमिका में पृष्ठ १६ पर दी है। प्रसंग प्राप्त चार संवतों का जाँच-विवरण यह है—

(१) सं० १६०७ की अक्षय तृतीया को		शनिवार और रोहिणी नक्षत्र था
(२) सं० १६१७	,,	रविवार और मृगशिरा ,,
(३) सं० १६२७	,,	शनिवार और कृत्तिका ,,
(४) सं० १६७७	,,	मंगलवार और मृगशिरा ,,

पद के अनुसार साहित्य लहरी की रचना जिस भी वर्ष में हुई, उस समय नंदनंदन मास या माधव मास (वैशाख) था। तिथि थी—छै तै हीन तृतिया या अक्षय तृतीया। अक्षय तृतीया वैशाख शुक्ल पक्ष में पड़ती है। दिन था—'वार, नंदनंदन जनम तें हैं बान'। नंदनंदन श्रीकृष्णचन्द्र का जन्म बुधवार को हुआ था। उससे बान अर्थात् ५ दिन बाद रविवार पड़ता है। अतः दिन रविवार था। उस दिन तृतीया रिच्छ या कृत्तिका नक्षत्र था, योग सुकर्म था।

डा० गुप्त द्वारा दी गई गणना से साहित्य लहरी में प्रदत्त तिथि, वार, नक्षत्र का कहीं भी मेल नहीं खाता—न १६०७ में, न १६१७ में, न १६२७ में, न १६७७ में ही। डा० प्रभुदयाल मीतल इस असामंजस्य को देखकर इस निर्णय पर पहुँचते हैं—

—"इस प्रकार साहित्य लहरी के रचनाकाल की समस्या का संतोषजनक समाधान गणना द्वारा भी नहीं हो पाता है। इससे यही समझा जायेगा कि या तो पद के दृष्टिकूट शब्दों में कोई भूल है अथवा गणना करने में कोई त्रुटि हुई है।"

इस निष्कर्ष पर पहुँचते हुए भी डा० मीतल मूल ग्रंथ में इस पद की टीका में रसन का अर्थ एक करते हैं और ग्रंथ का रचनाकाल सं० १६१७ ही निकालते हैं। भूमिका में वे कहते हैं कि १६०७ और १६७७ तो पूर्णतया अविचारणीय हैं

क्योंकि इनमें न तो वार का मेल होता है, न नक्षत्र का। १६१७ और १६२७ में से १६१७ की अपेक्षा १६२७ को शुद्धि के अधिक निकट समझते हैं क्योंकि उसमें शनि के साथ रवि को भी तृतीया होने की संभावना हो सकती है। फिर भी वे रचनाकाल १६१७ ही घोषित करते हैं।

सूर के पुराने अध्येताओं की दृष्टि साहित्य लहरी को अष्टछापी सूर की ही रचना समझती थी, अतः वह लाचार थी कि साहित्य लहरी का रचनाकाल अष्टछापी सूर के जीवन काल संवत १६२० या १६४० के भीतर ही निर्धारित किया जाय। पर जब हम यह स्वीकार कर लेते हैं कि साहित्य लहरी अष्टछापी सारस्वत ब्राह्मण सूर की रचना नहीं है, चंदवरदाई के वंशज ब्रह्मभट्ट सूरदास की रचना है, तब इसका रचनाकाल सं० १६७७ स्वीकार करने में कोई बाधा नहीं रह जाती। दृष्टि बदल जाने से दोष दूर हो गया, अर्थ बदल गया।

७. साहित्य लहरी के सं० १६७७ की रचना होने के दो अन्य प्रमाण

(१) गोसाईं उपाधि का काल : सं० १६३४ वि०

बिट्ठलनाथ ने सं० १६०२ में अष्टछाप की स्थापना की थी। उस समय वे 'दीक्षित' अथवा 'प्रभु चरण' कहलाते थे। सं० १६२८ में अकबर ने इन पर प्रसन्न होकर वर्तमान गोकुल की भूमि इनको दे दी और इन्होंने सं० १६२८ में गोकुल बसाया। पुराना गोकुल तो महावन है, जहाँ चौरासी खंभा है। सं० १६३४ में अकबर ने विट्ठल नाथ जी को 'गोसाईं' की उपाधि दी। ऐसी स्थिति में साहित्य लहरी का रचना-काल सं० १६३४ के बाद ही होना चाहिए। यह १६०७ या १६१७ कथमपि नहीं हो सकता।

डॉ० प्रभुदयाल मीतल इस तथ्य के आधार पर साहित्य लहरी के वंश परिचय वाले पद को अप्रामाणिक सिद्ध करना चाहते हैं, क्योंकि इसमें 'थपि गोसाईं करी मेरी आठ मध्ये छाप' आया है। मीतल जी द्वारा प्रस्तुत इस तथ्य[1] से तो यही सिद्ध होता है कि साहित्य लहरी महाकवि सूर की रचना नहीं है। और इसकी रचना सं० १६३४ के बाद किसी समय हुई। हमने अभी देखा है कि इसकी रचना सं० १६७७ में हुई।

(२) कुवलयानंद और साहित्य लहरी

संस्कृत में भरत* ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ नाट्य शास्त्र में चार अलंकारों का

१. साहित्य लहरी भूमिका पृष्ठ ४१

वर्णन किया है। पंडितराज जगन्नाथ तक आते आते अलंकारों की संख्या १८० हो गई। इस बीच दो अलंकार ग्रन्थों की बड़ी चर्चा रही है। एक है जयदेव का चंद्रालोक। चंद्रालोक में १० मयूखों के अन्तर्गत समस्त काव्यशास्त्र वर्णित है। इसके पंचम मयूख में अलंकार-कथन है। अनुष्टुप श्लोकों के पूर्वार्ध में लक्षण कहा गया है और उत्तरार्द्ध में उदाहरण है। इसी पद्धति का अवलंबन महाराज जसवंत सिंह ने 'भाषा भूषण' में किया है। चंद्रालोक में ८२ अर्थालंकारों एवं ८ शब्दालंकारों का निरूपण है। इन जयदेव का रचनाकाल स० १२५० से १३५० वि० तक माना जाता है।

दूसरा प्रसिद्ध अलंकार ग्रंथ है अप्पय दीक्षित का कुवलयानंद। यह जयदेव के चंद्रालोक के पंचम मयूख के ही आधार पर वर्णित है। अप्पय दीक्षित के इस ग्रंथ में कुछ अधिक अर्थालंकार हैं। इसमें शब्दालंकार हैं ही नहीं। इसमें अर्थालंकारों की संख्या १०० है। अप्पय दीक्षित का समय सं० १६००-१६७० माना जाता है और कुवलयानंद का रचनाकाल स० १६५० के लगभग है। यह महाकवि सूर के किंचित परवर्ती है।

साहित्य लहरी मुख्यतया अलंकार ग्रंथ है। इसमें भी कुल १०० अर्थालंकार कथित हैं, जो उसी क्रम से हैं, जिस क्रम से वे अप्पय दीक्षित के कुवलयानंद में कथित हैं। इसमें भी शब्दालंकार नहीं है।

इससे एक बात स्पष्ट है कि साहित्य लहरी की रचना जयदेव के चंद्रालोक के आधार पर न होकर, अप्पय दीक्षित के कुवलयानंद के आधार पर हुई। जब आधार ग्रंथ ही स० १६५० के लगभग रचा गया, तब इसके आधार पर रचित ग्रंथ स० १६५० के बाद ही रचा गया और यह काल सं० १६७७ है।

मीतल जी ने अत्यन्त ईमानदारी से इस तथ्य की ओर संकेत किया है। पर वह असमंजस की स्थिति में बने हुए हैं और वे सोचते हैं कि बढ़े हुए १८ अलंकारों को महाकवि सूर ने अन्य स्रोतों से भी लिया हो सकता है और साहित्य लहरी पर हो सकता है कि कुवलयानंद का प्रभाव न ही हो। मीतल जी यह कुतर्क इसीलिए करते हैं कि वे साहित्य लहरी को महाकवि सूर की रचना मानते हैं और इसके विरुद्ध वे नहीं जाना चाहते[1]।

---

१. साहित्य लहरी, भूमिका—पृष्ठ ५५-६०

लाचार होकर मीतल जी कहते हैं—

"यदि साहित्य लहरी पर कुवलयानंद का ही प्रभाव माना जाये, तब इसके रचयिता सूर को अष्टछापी सूरदास और अप्पय दीक्षित का परवर्ती कोई १८वीं शताब्दी का कवि मानना होगा।

× × ×

यदि डॉ० ब्रजेश्वर जी वर्मा के अनुमान के अनुसार साहित्य लहरी के रचयिता को सूरजचंद ब्रह्मभट्ट मानते हैं, तब वंश परिचय के पद को भी प्रामाणिक मानना होगा।"

हमें तो मीतल जी की लाचारी वाली यह बातें ही ठीक लगती हैं और मैं मानता हूँ कि साहित्य लहरी की रचना सं० १६७७ में हुई और इसके रचयिता सूरजचंद ब्रह्मभट्ट थे, जो चंदबरदाई के वंशज थे।

८. साहित्य लहरी के रचयिता का आत्म-परिचय

'साहित्य लहरी' के रचयिता ने ग्रंथ की समाप्ति के अनंतर एक सीधे सादे पद में अपना परिचय दे दिया है, जिसमें उसने अपने को ब्रह्मभट्ट और चन्द्रवरदाई का वंशज कहा है। चौरासी वैष्णवन की वार्ता के अंतर्गत सूरदास की वार्ता में कवि को सारस्वत ब्राह्मण स्वीकार किया गया है। भारतेंदु बाबू हरिश्चन्द्र स्वयं वल्लभ संप्रदाय के थे। अतः वे सूर को सारस्वत ब्राह्मण मानते थे। परन्तु उन्होंने सरदार कवि के सूरदास के दृष्टिकूटों की टीका में इस पद को देखा, तब उनकी दृष्टि बदल गई और उन्होंने सूर को चंद्र बरदाई का वंशज ब्रह्मभट्ट स्वीकार कर लिया। भारतेंदु की देखादेखी सर जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन और बाबू राधाकृष्ण दास ने भी सूर को चन्द्रवरदाई का वंशज ब्रह्मभट्ट स्वीकार किया।

१९०९ ई० में मिश्रबंधुओं का हिन्दी नवरत्न प्रकाशित हुआ। इसमें उन्होंने सूरदास को सारस्वत ब्राह्मण स्वीकार किया और साहित्य लहरी में दिए हुए कवि परिचय वाले पद को क्षेपक घोषित कर दिया। तब से आजतक यह पद क्षेपक ही घोषित किया जाता रहा है। मिश्रबंधुओं को यह नहीं सूझा कि यदि यह पद महाकवि सूर का नहीं है, तो साहित्य लहरी भी उनकी नहीं हो सकती। पर साहित्य लहरी तो तब तक निर्विवाद रूप से महाकवि की रचना के रूप में स्वीकृत रही है। साहित्य लहरी के कर्तृत्व पर महाकवि सूर के चश्मे से देखने की ही दिव्यादिव्य दृष्टि लोगों को प्राप्त रही है। अतः लोग इसे महाकवि सूर की रचना मानते रहे हैं और कवि-परिचय वाले पद को क्षेपक। यह केवल चश्मे का भेद रहा है।

मैं डा० ब्रजेश्वर वर्मा की भाँति साहित्य लहरी को महाकवि सूर की रचना नहीं मानता। इसे सूर की मृत्यु के ३७ वर्षों बाद की रचना स्वीकार करता हूँ। अत: कवि के आत्म परिचय वाले पद को क्षेपक 'नहीं मानता, साहित्य लहरी के रचयिता का ही रचा हुआ मानता हूँ और इसे सत्य स्वीकार करता हूँ। दृष्टि बदल जाने से अंतरं महदंतरं हो गया है। एक सूर के स्थान पर दो सूरदास दिखाई पड़ने लगे हैं। एक हैं अष्टछापी सारस्वत सूरदास, दूसरे हैं चन्द्रवरदाई के वंशज ब्रह्मभट्ट सूरदास।

यह पद रोला छंदों में विरचित है। इसमें कुल ३४ चरण हैं। यह सरल भाषा में, सरल शैली में है और प्रसाद गुण पूर्ण है। साहित्य लहरी के अन्य पदों के समान यह कूट नहीं है। सरदार की रचना के काशी संस्करण (१८६९ ई०, सं० १९२६ वि०) में यह पद १०९ संख्या पर, लखनऊ संस्करण में ११० संख्या पर एवं भारतेन्दु कृत साहित्य लहरी में ११८ संख्या पर है। प्रभुदयाल मीतल वाले संस्करण में इसे परिशिष्ट २ में डाल दिया गया है। क्षेपक मानते हुए भी किसी ने इसे पूर्णतया त्यक्त नहीं किया है, कहीं न कहीं स्थान अवश्य दे दिया है। अत: अध्येताओं के लिए यह पद सुरक्षित बना हुआ है और उन्हें सरदार या भारतेन्दु के संस्करणों की खोज की झंझट नहीं उठानी पड़ रही है।

साहित्य लहरी के रचयिता सूर ने पहले अपना वंश परिचय दिया है—

> प्रथम ही प्रथ जगा ते, भे प्रगट अदभुत रूप
> ब्रह्मराव विचारि, ब्रह्मा नाम राख अनूप
> पान पय देवी दियो, शिव अदि सुर सुख पाइ
> कहा दुर्गा पुत्र तेरो, भयो अति सुख पाइ
> पारि पाइन सुरन के, सुर सहित अस्तुति कीन

महाराज पृथु ने एक महान यज्ञ किया। इस यज्ञ से एक अद्‌भुत रूप वाला बालक उत्पन्न हुआ। ब्रह्मा ने अत्यन्त विचारपूर्वक उसका नाम 'ब्रह्मराव' रख दिया। देवी दुर्गा ने इस अज्ञात बालक को अपना दूध पिलाया। इससे शिव आदि सभी देवताओं को परम सुख प्राप्त हुआ। देवताओं ने कहा, देवि दुर्गा, अब यह तुम्हारा पुत्र हुआ। उन्होंने यह आशी: भी दिया—यह बहुत-बहुत सुख पावे। तब देवी दुर्गा ने इस बालक ब्रह्मराव को देवताओं के चरणों में डाल दिया और इस बालक ने सुन्दर स्वर में देवताओं की स्तुति की।

ब्रह्मभट्टों के पुरखा ब्रह्मराव के उत्पत्ति की यह कथा स्कंदपुराण के ब्रह्मखंड के अन्तर्गत भट्टोपाख्यान में यों वर्णित है—

विधेर्यज्ञावसानेतु प्रज्वलद्वह्नि वेदितः
प्रादुरासीत् पुमान कश्चित् ज्वलदग्नि-सम-प्रभः ॥ १५

विधि के यज्ञ के अवसान पर प्रज्वलित वह्नि-वेदी से कोई पुरुष प्रादुर्भूत हुआ, जो ज्वलित अग्नि के समान प्रभामय था।

सजात मात्रोहि विधेरेवं, कृत्वासंस्तुतिं जगौ।
ब्रह्माणं रौत्यतः ख्यात्वा, ब्रह्मराव सविश्रुतः ॥ १७ ॥

उत्पन्न होते ही उस पुरुष ने ब्रह्मा की इस प्रकार स्तुति की और तदनन्तर वह विश्व में ब्रह्मराव नाम से प्रख्यात एवं विश्रुत हुआ।

पाययमास प्रीत्या च स्तुतं स्तन्य पयोऽमृतम्
देवी पुत्र इति ख्यातः ततो जातो जगत्त्रये ॥ ३०

तब देवी ने प्रीतिपूर्वक उसे अपने स्तन का अमृतोपम दूध पिलाया। उसी समय से तीनों लोकों में वह ब्रह्मराव देवी-पुत्र के रूप में प्रख्यात हुआ।*

अपने वंश के मूल संस्थापक ब्रह्मराव की उत्पत्ति का यह वर्णन कर लेने के उपरान्त कवि कहता है—उसी ब्रह्मराव के वंश में प्रसिद्ध चंदबरदाई हुए—

तासु वंस प्रसंस में, भो चंद चारु नवीन ॥
भूप पृथ्वीराज दीनो, तिन्हैं ज्वाला देस।
तनय ताके चार, कीनो प्रथम आप नरेस ॥
दूसरे गुनचंद, ता सुत सीलचंद स्वरूप।
वीरचंद प्रताप पूरन, भयौ अदभुत रूप ॥
रनथंभौर हमीर भूपति, संग सुख अवदात।

तो ब्रह्मराव के वंश में प्रसिद्ध चंदबरदाई हुआ, जो दिल्ली नरेश प्रसिद्ध पृथ्वीराज चौहान का सखा, सामंत, मंत्री और कवि था। पृथ्वीराज ने प्रसन्न होकर चंदबरदाई को पंजाब प्रांतांतर्गत ज्वाला देश दे दिया। चंदबरदाई तो दिल्ली में ही पृथ्वीराज के साथ रह गया। उसने अपने चार पुत्रों में से सबसे बड़े पुत्र को ज्वाला देस का राजा बना दिया।

चंदबरदाई का दूसरा पुत्र गुणचंद्र था। गुणचंद्र का पुत्र शीलचंद्र हुआ। शीलचंद्र के वंश में वीरचंद्र हुआ जो पूर्ण प्रतापी एवं अद्भुत रूप वाला हुआ। यह

---

* मीतल जी ने ये उद्धरण साहित्य-लहरी की भूमिका में पृष्ठ ३७ पर दिए हैं।

वीरचंद्र रणथंभौर के प्रसिद्ध राजा वीर हम्मीर का संगी था और उनके साथ में उसने पूर्ण सुख भोगा था।

अपनी वंशावली को आगे बढ़ाता हुआ कवि कहता है—

तासु वंस अनूप भो, हरिचंद अति विख्यात।
आगरे रह गोपचल में, रहौ ता सुत वीर
पुत्र जनमे सात ताके, महा भट गभीर

रणथंभौर वाले वीरचंद के वंश में अत्यन्त विख्यात हरिचंद हुआ। यह गोपाचल (ग्वालियर) में आकर रहने लगा था। इस हरिचन्द का एक पुत्र था। यह वीर था और आगरे में रहा करता था। कवि ने हरिचंद के इस वीर पुत्र का कोई नाम नहीं दिया है।

इसके पश्चात् कवि ने आगरा वाले इस वीर के सात बेटों की चर्चा की है, जिनमें से अंतिम वह स्वयं था—

पुत्र जनमे सात ताके, महा भट गंभीर ॥
कृत्तचंद, उदारचंद, जो रूपचंद सुभाइ
बुद्धिचंद प्रकाश चौथो, चंद भे सुखदाइ
देवचंद प्रबोध संसृत चंद ताकौ नाम
भयौ सातौ नाम सूरजचंद, मंद निकाम

आगरा वाले इस वीर के सातों पुत्रों के नाम ये हैं—१. कृतचंद्र, २. उदारचंद, ३. रूपचंद, ४. बुद्धिचंद, ५. देवचंद, ६. प्रबोधचंद और ७. सूरजचंद। ये सभी महा भट थे। इनमें अंतिम सूरजचंद ही साहित्य लहरी का रचयिता है। इसने अपने को विनम्रता-वश मंद और निकाम कहा है।

सो समर कर साहि तें, सब गए विधि के लोक
रहौ सूरजचंद दृग तें हीन, भर वर सोक
परौ कूप, पुकार काहू सुनी ना संसार
सातएँ दिन आइ जदुपति, कियो आप उधार

सूरजचंद के छहो बड़े भाई बादशाह से युद्ध करते समय मारे गए। रह गया सूरजचंद दृग से हीन, शोक संतप्त। वह कूप में गिर गया, कूप में पड़ा-पड़ा वह

पुकारता रहा, पर किसी ने उसकी आवाज नहीं सुनी। सातवें दिन स्वयं यदुपति ने उसकी पुकार सुनी और कुएँ से उसका उद्धार किया।

दिव्य चख दै कही, सिसु सुन, माँग वर जो चाइ
हौं कही, प्रभु, भगति चाहत, सत्रु नास सुभाइ
दूसरो ना रूप देखौं, देखि राधा-श्याम
सुनत करुनासिंधु भाख्यौ, एवमस्तु सु धाम
प्रबल दच्छिन विप्रकुल तें, सत्रु ह्वैहैं नास
अखिल बुद्धि, विचार, विद्या, मान मानै मास
नाम राखे हैं सु सूरजदास, सूर, सु स्याम
भए अंतरध्यान, बीते पाछली निसि जाम

यदुपति ने कवि को दृष्टि दी और कहा—"पुत्र, जो चाहो वरदान माँग लो।" तब कवि ने कहा—"प्रभु, सर्व प्रथम मैं आपकी भक्ति चाहता हूँ, तदनंतर अपने सहज शत्रुओं का विनाश। जिन नेत्रों से मैंने राधा और श्याम को देख लिया, अब उन्हीं नेत्रों से इस भौतिक संसार को पुनः न देखूं।"

करुणासिंधु ने कवि की यह बात सुनते ही कहा—"एवमस्तु। दक्षिण के प्रबल ब्राह्मण-कुल से तुम्हारे शत्रुओं का नाश होगा। तुम्हें समस्त विद्या, बुद्धि, विचार, सम्मान प्राप्त हो।" इसके पश्चात् प्रभु ने कवि के तीन नाम रख दिए—सूरजदास, सूर, सूरश्याम। रात का पिछला पहर आते ही, सबेरा होने के पहले ही, परम प्रभु अंतरध्यान हो गए।

मोहि मनसा इहै व्रज की, बसैं सुख चित थाप
थपि गुसाइँ करी मेरी आठ मद्धै छाप
विप्र प्रथ जगा को है, भाव भूर निकाम
सूर है नँदनंद जू को, लियो मोल गुलाम

तब कवि की इच्छा एकाग्र-चित्त होकर सुखपूर्वक व्रज-वास करने की हुई। वह व्रज मंडल में आ गया। व्रज मंडल में आ जाने पर कवि ने वल्लभ संप्रदाय के सुप्रसिद्ध गोसाइं गोकुलनाथ 'वल्लभ' से वल्लभ-संप्रदाय में दीक्षा ले ली और गोसाइं जी ने श्रीनाथ जी के अष्ट कीर्तनियों में इन्हें सम्मिलित कर लिया। यह घटना संवत १६६७ की है।

अंत में कवि पुनः कहता है—"मैं प्रभु के यज्ञ से उत्पन्न ब्रह्मराव का वंशज विप्र हूँ, भगवान के भूरि भक्तिभाव से भरपूर हूँ, निकाम हूँ (निष्काम हूँ, संसार के लिए व्यर्थ हूँ)। मैं नंद के नंद, आनंदकंद, श्रीकृष्णचंद्र का जरखरीद गुलाम हूँ। वे मुझे जैसा चाहें, रखें।"

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने अपने सूरदास वाले लेख में पहले इस पद का सारांश दिया है। तदनंतर इसे समग्रतः अवतरित करके लेख को समाप्त कर दिया है। सारांश देते समय उन्होंने ग्यारह पाद टिप्पणियां भी दी हैं। इन टिप्पणियों में से कुछ अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। उन्होंने टिप्पणी ४ में पृथ्वीराज का समय सन ११७६ दिया है और टिप्पणी ५ में हम्मीर का समय सन १२६० दिया है। छठी टिप्पणी में कहा है कि "संभव है कि हरिचंद के पुत्र का नाम रामचंद्र रहा हो, जिसे वैष्णवों ने अपनी रीति के अनुसार रामदास कर लिया हो।

शत्रु-नाश पर भारतेन्दु की टिप्पणी है—"शत्रुओं से लौकिक अर्थ लीजिए तो मुगलों का कुल, यदि अलौकिक अर्थ लीजिए तो काम-क्रोधादि।"

इसी प्रकार दक्षिण के विप्र कुल का भी लौकिक अलौकिक अर्थ किया गया है—"सेवा जी के सहायक पेशवा का कुल, जिसने पीछे मुसलमानों का नाश किया। अलौकिक अर्थ लीजिए तो सूरदास जी के गुरु श्री वल्लभाचार्य दक्षिण ब्राह्मण कुल के थे।"

दसवीं टिप्पणी में गोसाइं का अर्थ "श्रीविट्ठलनाथ जी, श्री बल्लभाचार्य के पुत्र" किया गया है।

ग्यारहवीं टिप्पणी में 'आठ मध्ये छाप', का अर्थ अष्टछाप करके, अष्टछाप के कवियों की नामावली दे दी गई है।

भारतेन्दु ने इस पद को प्रामाणिक माना है, पर उन्होंने अपने युग के अनुरूप इसमें अष्टछापी सूर के ही दर्शन किए तथा साहित्य लहरी को महाकवि सूर की ही रचना स्वीकार किया।

६. थपि गोसाईं करी मेरी आठ मध्ये छाप

'साहित्य लहरी' की यह पंक्ति इसे महाकवि सूर की कृति कहे जाने में सबसे अधिक सहायक रही है। भारतेन्दु ने गोसाइं का अर्थ गोसाइं बिट्ठलनाथ

किया और 'आठ मध्ये छाप' का अर्थ 'अष्टछाप में' किया। तभी से यही अर्थ मान्य रहा है।

मैं गोसाइँ का अर्थ गोसाइँ गोकुलनाथ स्वीकार करता हूँ। यह गोसाइँ गोकुलनाथ महाप्रभु वल्लभाचार्य के पौत्र एवं गोसाइँ विट्ठलनाथ के चतुर्थ पुत्र थे। यह अपने युग के परम प्रतापी पुरुष थे और इनका एक नाम 'वल्लभ' भी था। इस प्रकरण पर आगे विस्तार पूर्वक विचार किया गया है।

अब रहा 'आठछाप'। गोसाइँ विट्ठलनाथ ने श्रीनाथ जी के कीर्तन और शृंगार की विशेष व्यवस्था की थी। स० १६०३ में उन्होंने प्रभात में मंगल आरती से लेकर रात में शयन आरती तक के आठ सेवा-कालों के लिए आठ भक्त कवियों की कीर्तन-सेवा नियत कर दी थी। अपनी-अपनी ओसरी पर यह लोग कीर्तन-सेवा किया करते थे। इन आठ भक्त कवियों में चार महाप्रभु वल्लभाचार्य के शिष्य थे—१. कुम्भनदास, २. सूरदास, ३. कृष्णदास अधिकारी, ४. परमानन्ददास; और चार गोसाइँ विट्ठलनाथ के शिष्य थे—१. गोविंद स्वामी, २. छीत स्वामी, ३. चतुर्भुजदास, ४. नन्द दास।

आठ कीर्तनियों की यह परम्परा बहुत दिनों तक चलती रही। गोसाइँ गोकुलनाथ ने अष्ट कीर्तनियों के मंडल में सूर नवीन को सं० १६६७ में दीक्षा देने के उपरांत सम्मिलित कर लिया और यह सूर भी श्रीनाथ जी के कीर्तनियाँ हो गए।

इस अवरोधक चरण का यही समाधान सम्भव है।

(ख) सूर सारावली

१. सूरसारावली के महाकवि सूर की रचना समझे जाने के कारण

सूर सारावली का प्रथम प्रकाशन रागकल्पद्रुम के अन्तर्गत कार्तिक सुदी ८ रविवार, सं० १८९८ वि० को हुआ। रागकल्पद्रुम का प्रकाशन १८९८ से लेकर १९०६ वि० तक अनेक छोटी-छोटी पुस्तकों के रूप में हुआ था। बाद में इन्हें चार बड़ी जिल्दों में बाँध दिया गया था। चतुर्थ जिल्द में सूरसागर के प्रारम्भ में सूर सारावली संलग्न है।

इसके प्रारम्भ में यह लेख है—

"अथ श्री सूरदास जी कृत सूर सागर सारावली तथा सवा लाख पद के सूचीपत्र श्रीकृष्णानन्द व्यासदेव रागसागर संग्रह कृत तथा राग कल्पद्रुम लिख्यते।"

अंत की पुष्पिका इस प्रकार है—

"इति सूरदास जी कृत संवत्सर लीला तथा सूरसारावली तथा सवा लाख पद के सूचीपत्र समाप्तम्।"

इस पुष्पिका के अनंतर निम्नांकित सामग्री है—

(क) 'हरि हरि हरि हरि सुमिरन करो' के टेक के बाद राजा परीक्षित का वैराग्य, उनको उपदेश देने के लिए शुकदेव जी का आगमन, भगवत नाम महिमा, व्यास संवाद, व्यास अवतार वर्णन। फिर सूरदास के कतिपय पद।

(ख) इसके बाद सेवाफल है।

(ग) फिर 'भरोसो दृढ़ इन चरनन केरो' पद है।

इन सब के पश्चात पुनः यह पुष्पिका है—

"इति श्री रागसागरोद्भव रागकल्पद्रुम **सूरसागरस्य सूरसारावली** समाप्तम्॥ संवत् १८९८ कार्तिक शुदी ८ रवौ श्री कृष्णानंद व्यासदेव रागसागर-स्येदं मुद्रांकित।"

प्रारंभ में 'अथ श्री सूरदास जी कृत' है, पुष्पिका में "इति सूरदास जी कृत" है। सूरसागर के रचयिता सूरदास के अतिरिक्त आज तक किसी अन्य सूरदास का अभिज्ञान हिन्दी संसार को नहीं रहा है। अतः इन दोनों स्पष्ट कथनों पर सहज विश्वास ठीक ही रहा है।

इन दोनों स्पष्ट कथनों के अतिरिक्त ग्रंथ के अंतर्गत जो कवि छापें हैं, वे इसके स्पष्ट ही महाकवि सूरदास की रचना होने का संकेत करती हैं। ग्रंथ में एक बार 'सूरदास', तीन बार 'सूरज' और नौ बार 'सूर' छाप है। ये सभी छापें महाकवि सूरदास की ही मानी जाती रही हैं। अतः इस ग्रंथ को महाकवि सूर की रचना समझने में पूर्वजों द्वारा जो भूल हुई है, वह मार्जनीय है।

कवि-छापों के अतिरिक्त निम्नांकित द्विपदी ने भी भरमाने में पूर्ण योग दिया है—

करमजोग पुनि ज्ञान-उपासन, सब ही भ्रम भरमायौ
श्री वल्लभ गुरु तत्व सुनायौ, लीला भेद बतायौ ११०२

यहां स्पष्ट रूप से गुरु का नाम वल्लभ कहा गया है। 'वल्लभ' का अर्थ यदि महाप्रभु वल्लभाचार्य कर लिया गया, तो यह सहज स्वाभाविक था। वल्लभाचार्य जी प्रसिद्ध अष्टछापी महाकवि सूरदास के गुरु थे, यह तो सभी जानते हैं।

संवत १८९८ में सूरसारावली के रचयिता के सम्बन्ध में जो भ्रम प्रारम्भ हुआ, वह सं० २००१ वि० तक बराबर बना रहा। इस ओर सबसे पहले डा० ब्रजेश्वर वर्मा ने १९४४ ई० में अपने शोध ग्रंथ 'सूरदास' में हमारा ध्यान आकृष्ट किया।

२. सूरसारावली में स्व-जीवन सम्बन्धी कवि के आत्म-कथन

'साहित्य लहरी' के ही समान 'सूरसारावली' में भी इसके रचयिता ने अपने सम्बन्ध में कुछ कथन किए हैं। ये कथन तीन हैं।

(१) गुरु परसाद होत यह दरसन, सरसठ बरस प्रवीन १००२।
(२) श्री वल्लभ गुर तत्व सुनायो, लीला-भेद बतायो ११०२।
(३) ता दिन ते हरि लीला गाई, एक लक्ष पद-बन्द
ताकौ सार सूर सारावलि, गावत अति आनन्द ११०३।

सूर के पुराने अध्येताओं ने इनके जो अर्थ प्रस्तुत किये हैं, उनसे कुछ भिन्न अर्थ यहाँ प्रस्तुत किए जा रहे हैं, जिनसे सूर नवीन के सम्बन्ध में अच्छा अभिज्ञान होता है।

३. गुरु परसाद होत यह दरसन

सूरसारावली छंद ९७९ से १०१० तक राधाकृष्ण की कुंज-विहार लीला का वर्णन हुआ है।

चले धाय नव कुंज दोऊ मिलि, किसलै, सेज बिराजे
परिरंभन, सुखरास, हास मृदु, सुरति-केलि सुख साजे ९७९-
नाना बन्ध, विविध रस क्रीड़ा, खेलत स्याम अपार
रति रस तत्व भेद नहिं जानत, दंपति अंग सँभार ९८०
मोहन बेल सिंगार विटप सौं, उरझी आनँद बेल
कंचन बेल तमालै लपटी, रसिक रंग भरि रेल ९८५

सुरति-समुद्र कहत दंपति के, निरवधि रमन अपार
भयो सेष मन मूढ़, कहन कों राधाकृष्ण विहार ९९१

इसी प्रकरण में आगे चलकर कवि कहता है—

गुरु परसाद होत यह दरसन, सरसठ बरस प्रवीन
शिव विधान तप करेउ बहुत दिन, तऊ पार नहिं लीन

शिव जी ने राधा कृष्ण की जिस कुंज-विहार-लोला का पार बहु-विध एवं वहु दिन विधान पूर्वक तप करके भी नहीं पाया था, सूर ने उसी कुंज-विहार लीला का दर्शन गुरु की कृपा से सहज ही पा लिया।

बाबू राधाकृष्ण दास ने इसका अर्थ यों किया है—

"इस सूरसागर सारावली को उन्होंने एक लाख पद बनाने के पीछे अपनी सरसठ वर्ष की अवस्था में बनाया था।"

—राधाकृष्णदास ग्रंथावली, पृ० ४४८

उन्हींके अनुसरण पर मिश्रवन्धुओं ने भी सूरसारावली का रचनाकाल ६७ वर्ष की अवस्था में माना है।[1]

इसी प्रकार शुक्ल जी ने भी लिखा है—

"सूरसागर समाप्त करने पर सूर ने जो सूरसागरावली लिखी है, उसमें अपनी अवस्था ६७ वर्ष की कही है—

गुरु परसाद होत यह दरसन सरसठ बरष प्रवीन"

—हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ १६०

यह 'सरसठ बरस' सूरसारावली का रचनाकाल नहीं है। उक्त चरण में तो स्पष्ट कहा गया है—'गुरु परसाद होत 'यह दरसन'। यह "दरसन का काल है। कौन सा दरसन—'यह दरसन'। 'यह' ऊपर वर्णित राधा कृष्ण की कुंज-विहार लीला के लिए प्रयुक्त है।

राधाकृष्णदास, मिश्रवन्धु एवं आचार्य शुक्ल की इस भूल की ओर सबसे पहले डा० मुंशीराम शर्मा ने लोगों का ध्यान अकृष्ट किया और कहा कि यह ६७ वर्ष सूरसारावली का रचनाकाल नहीं है, निकुंज-लीला दर्शन का काल है। इस

१. हिन्दी नवरत्न, पृष्ठ २२०।

निकुंज-लीला का दर्शन सूर को गुरु के प्रसाद से, गुरु की कृपा से, हुआ था। डा० मुंशीराम जी के अनुसार यह दर्शन-काल सूर के वल्लभ-सम्प्रदाय में दीक्षित होने का ही काल हो सकता है।[1]

मेरा निष्कर्ष यह है कि सूर सारावली के रचयिता सूर नवीन को गुरु की कृपा से दीक्षा-काल में राधा कृष्ण की निकुंज-लीला का दर्शन हुआ। अष्टछापी सूर के दीक्षा-काल सं १५६७ में वल्लभ संप्रदाय में निकुंज-लीला का प्रवेश ही नहीं हुआ था।

४. सरसठ बरस प्रवीन

'गुरु परसाद होत यह दरसन सरसठ बरस प्रवीन' में आए सरसठ बरस को पुराने सूर-अध्येताओं ने सूरसारावली का रचनाकाल माना था। वे मानते थे कि जिस समय सूर ने सूरसारावली की रचना की थी, उस समय उनकी वय ६७ वर्ष की थी। वे सूरसारावली और साहित्य लहरी को प्रायः एक ही समय की रचना मानते थे। साहित्य लहरी का रचनाकाल १६०७ मानकर इसमें से ६७ घटाकर वे सूरदास का जन्मकाल सं० १५४० वि० अनुमानते थे।

आचार्य पं० सीताराम जी चतुर्वेदी ने इस सरसठ बरस के सम्बन्ध में अपना यह मत लिखा है—

"सूरसारावली के 'सरसठ बरस प्रवीन' का अर्थ यह नहीं है कि उनका जन्म १५६७ में हुआ था। यह तो उनकी दीक्षा का संवत है, जब (आगरा मथुरा के बीच जमुना के किनारे) गौ घाट पर उन्होंने महाप्रभु से दीक्षा ली थी। उस समय उनकी अवस्था ३२ वर्ष की थी।"

—सूर ग्रंथावली पंचम भाग, संपादक मंडल की ओर से आत्म-निवेदन, पृष्ठ 'छ'।

सरसठ को उन्होंने सं० १५६७ का उत्तरार्द्ध स्वीकार किया है। इसी प्रकार डा० प्रेम नारायण टंडन ने इसे सं० १६६७ माना है। वे सूर सारावली को 'श्री आचार्य जी की वंशावली' के रचयिता केशवकिशोर (सं० १६००-१६८० वि०) की रचना होने के भ्रम में हैं और लिखते हैं—

"हो सकता है कि केशव किशोर ने 'गुरु' शब्द का प्रयोग इन्हीं श्री गोकुलनाथ जी के लिए किया हो और उन्हीं की कृपा से संवत् १६६७ के आसपास 'निकुंज

---

१. सूर सौरभ, पृष्ठ ६३।

लीला' के दर्शन का सौभाग्य पाया हो। इस सरसठ वर्षीय उल्लेख का प्रत्यक्ष सम्बन्ध 'लीला दर्शन' से ही है, सारावली की रचना से नहीं।"

—सूर सारावली एक अप्रामाणिक रचना, पृष्ठ ४३२।

डा० टंडन ने यहाँ ६७ को सं० १६६७ का उत्तरार्द्ध स्वकार किया है।

मैं भी ६७ को सूर सारावली के रचयिता सूर की वय का द्योतक नहीं मानता। मैं भी इसे डा० टंडन के अनुसार सं० १६६७ स्वीकार करता हूँ। गो० गोकुलनाथ का जीवनकाल सं० १६०८-१६९७ वि० है। उन्होंने सं० १६६७ में सूर सारावली के रचयिता सूर को वल्लभ संप्रदाय में दीक्षित किया।

हम प्रायः शताब्दी को छोड़ देते हैं और दशाब्दी का ही उल्लेख करके काम चला लेते हैं। जैसे हम यह कहते हैं—

(क) महात्मा गांधी की हत्या ३० जनवरी ४८ को कर दी गई।

(ख) इंदिरा गांधी को ३१ अक्टूबर ८४ को उन्हीं के अंगरक्षकों ने गोली से भून दिया।

इन दोनों सनों में १९०० छूट गया है। ४८ = १९४८ और ८४ = १९८४।

इसी प्रकार ६७ में १६०० छूट गया है और यह ६७ वस्तुतः १६६७ का द्योतक है।

५. श्री वल्लभ गुरु तत्व सुनायो

सूर सारावली की एक पंक्ति है—

श्री वल्लभ गुरु तत्व सुनायो, लीला भेद बतायो॥ ११०२

इस पंक्ति में आए 'वल्लभ' को अभी तक हम पुष्टिमार्ग के प्रवर्तक, महाकवि सूरदास के गुरु, महाप्रभु वल्लभाचार्य समझते आ रहे थे। पर यह वल्लभ वस्तुतः गोसाईं गोकुलनाथ का एक अन्य नाम है। गोसाईं गोकुलनाथ गोसाईं विट्ठलनाथ के चतुर्थ पुत्र थे और संप्रदाय में परम प्रतापी व्यक्ति हुए हैं। इनका जीवनकाल सं० १६०८—१६९७ वि० है। इन्होंने सं० १६६७ में 'सूर नवीन' को अपना शिष्य बनाया था।

मैंने 'गोसाईं गोकुलनाथ वल्लभ का पद साहित्य' नामक एक लेख बहुत पहले लिखा था, जो तुलसी सत्यनारायण मानस मन्दिर वाराणसी की शोध पत्रिका 'मानस-मयूख' के सितम्बर १९६: के अंक (वर्ष २ अंक २) में प्रकाशित हुआ था। उक्त

लेख में गोकुलनाथ के वल्लभ होने के अनेक प्रमाण दिए गए हैं। अब कुछ और प्रमाण सुलभ हो गए हैं। इन्हें हम एक-एक कर आगे प्रस्तुत कर रहे हैं।

(१) डा० हरिहरनाथ टंडन ने अपने शोध-ग्रंथ 'वार्ता साहित्य' में उल्लेख किया है कि गोसाईं विट्ठलनाथ के चतुर्थ पुत्र गो० गोकुलनाथ जी, जो वार्ताओं के मूल प्रणेता या वक्ता कहे जाते हैं, वल्लभ छाप से काव्य रचना भी करते थे। डा० टंडन ने इस कथन के आधार की न तो सूचना दी है, और न कोई उदाहरण ही दिया है।

(२) वल्लभ नाम के कई कवि हुए हैं। इनका विभेद श्री द्वारिका दास परीख ने 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' भाग ३ के आदि में संलग्न '२५२ वैष्णवों की वार्ता का विश्लेषणात्मक अध्ययन' के अन्तर्गत पृष्ठ ७ पर यों कियाहै—

"गो० श्री हरिराय जी के मुख से सुने हुए ८४ एवम् २५२ वै० के लीलात्मक नामों को गो० श्रीवल्लभ ने 'श्री वल्लभदास' की छाप से गुजराती धोलों में प्रकट किए हैं। आपकी 'दास' 'श्रीवल्लभ' तथा 'श्री वल्लभदास' ऐसी तीन छापें हैं। केवल 'वल्लभ' छाप चतुर्थ पुत्र श्री गोकुलनाथ जी की है, और केवल 'वल्लभदास' छाप गो० हरिराय के एक सेवक की है।"

(३) भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र भक्तमाल उत्तरार्द्ध में कृष्णा दासी वाले छप्पय में गोकुलनाथ के वल्लभ नाम का भी उल्लेख करते हैं—

जब गोस्वामी कहँ, चतुर्थ बालक प्रगटाए
तब श्री वल्लभ गोस्वामी वर नाम धराए
कृष्णा भाख्यो, इनको गोकुलनाथ पुकारो
तासों जग में यहै नाम, सब लेत हँकारो
गोस्वामी हूँ जा कानि सों, यहै नाम भाखे तुरत
दासी कृष्णा मति रुचि भरी, गुरु-सेवा में अति निरत ॥ १३४

(४) कृष्णा महाप्रभु वल्लभाचार्य एवं गोसाईं विट्ठलनाथ की शिष्या-सेविका थी। इसकी वार्ता 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' में ४५ संख्या पर है। इसकी वार्ता में दो प्रसंग हैं। प्रथम प्रसंग इसी सम्बन्ध का है, जो यहाँ समग्रत: एवं अविकल रूप में उद्धृत किया जा रहा है।

वार्ता—प्रसंग १

सो कृष्णो रुकिमिनी बहू जी की खवासी करें। सो एक समय श्री रुकिमिनी

जी बहू जी को गर्भाधान रह्यौ। तब कृष्णो ने कही, अबके बहू जी के बेटा होइगो, तिनको नाम श्री गोकुलनाथ जी धरौंगी। सो गर्भ के दिन पूरे भए, तब श्री रुकिमिनी जी बहू जी के पेट में पीर उठी। तब कृष्णो जाइ के एक पंडित जोतिषी सों पूछे, अब मुहूर्त कैसो है ? तब जोतिषी ने कही, अबही दोइ चार दिन नीके नाहीं हैं। तब कृष्णादासी आई, श्री रुकिमिनी बहू जी के पेट पर हाथ फेरि कह्यौ, महाराज ! अबही मति पधारो, दोय चारि दिन आछे नाहीं हैं। तब तत्काल पीड़ा रहि गई। पाछे पाँच सात दिन बीते, तब कृष्णा दासी फिरि वह पंडित जोतिसी के पास जाइ पूछे जो अब मुहूर्त कैसो है ? तब वह जोतिसी ने कह्यो, आज बहोत सुन्दर दिन है, भलो मुहूर्त आज है। तब कृष्णो आई, श्री रुकिमिनी बहू जी के पेट पर हाथ फेरि कह्यौ, महाराज ! आज बहोत सुन्दर मुहूर्त है, भलो मुहूर्त आज है। अब पधारो। तब ततकाल बालक प्रगट भए। पाछे श्री गुसाइं जी ने नामकरण किये, सो वल्लभ नाम धरचो। परंतु कृष्णो ने पहले ही श्री गोकुलनाथ जी नाम धरचो है। तातें जगत में प्रसिद्ध श्री गोकुलनाथ जी नाम परचो। घर में श्रीवल्लभ कहेतें। और जन्मपत्रिका में श्री कृष्ण नाम हैं। सो श्री गुसाइं जी गोप्य राखे। सो कृष्णो की ऐसी कानि राखते और जब श्री घनश्याम जी को जन्म भयो, तब नामकर्ण समें श्री वल्लभ जी ने कही, इनको नाम श्री गोकुलनाथ जी धरो। तब श्री गुसाइं जी कही, यह नाम तो तिहारोई है। घर में वल्लभ कहेत हैं और सिगरे जगत में तो तिहारो नाम श्री गोकुलनाथ जी है। कृष्णो भगवदीय तिहारे नाम धरचो है, सो फेरचो न जाई।"

(५) विष्णुदास छीपा महाप्रभु वल्लभाचार्य के शिष्य थे। जीवन के उत्तरार्द्ध में ये गोकुल आकर गोसाइं विट्ठलनाथ जी के द्वारपाल हो गए थे। इन्होंने अनेक पदों में महाप्रभु वल्लभाचार्य और गो० विट्ठलनाथ का गुणगान किया है। निम्नांकित पद में उन्होंने गोसाइं गोकुलनाथ की स्तुति की है—

जै श्री गोकुलनाथ जू, जिन माला राखी
सकल जगत भय देखिकै, दूरहि गहे नाखी
धरम सान लजात हो, बल करि दृढ़ कीन्हों
माया मत खंडन कियो, जस जग में लीन्हों
श्री विट्ठल गृह प्रगट ह्वै, भक्तन सुख दीन्हों
नाम सुनायो ताहि को, अपुनो करि लीन्हों
'श्री वल्लभ कुल मंडन' सब ही मनभावन
सुधा वृष्टि किए रहे बरसत मानो सावन

पद परसत भव तारि के, कीन्हें जग पावन
नाम सुनत ही उद्धरे, ते बहुरि न आवन
सरन सम्हारि उधारि कै, अभय पद दीए
असुर सृष्टि तें काढ़ि के, ये अंगहि लीए
भक्ति मार्ग परकासि के, सेवा जे सिखाई
वेद स्मृति सब दृढ़ किए, भ्रम दूरि बहाई
गिरिवरधारी लाड़िलो, यह सदा सहाई
'विष्नुदास' नित प्रति रहे, चरनन लपटाई

—वार्ता साहित्य, पृष्ठ १४७।

इस पद में आए 'श्री वल्लभ कुल-मंडन' का अर्थ है—'जिन श्री गोकुलनाथ जी या श्री वल्लभ जी ने धर्म की शान और धर्म की लज्जा को माला की रक्षा करके बचाया, वे अपने कुल के मंडन हैं'।

कुछ लोग इसका यह अर्थ भी कर सकते हैं—"श्री गोकुलनाथ जी श्री वल्लभाचार्य के कुल को मंडित करने वाले हुए।"

(६) जन और भगवान दो भाई थे। ये दोनों गो० विट्ठलनाथ के शिष्य थे। इनका विवरण २५२ वैष्णवन की वार्ता में है। ये दोनों मिलकर रचना करते थे और पदों में संयुक्त छाप 'जन भगवान' रखते थे। इनका एक पद है—

श्री वल्लभ-सुत परम कृपाल
तैसेइ 'श्रीगिरिधर'[१] श्री 'गोविंद'[२], 'बालकृष्ण'[३] जू नयन विसाल
महा मोह मद दोष दुखी जन, प्रकट भए षटदर्सन ईस
जीव अनेक किए किरतारथ, कोमल कर धारत पर सीस
जा दर्सन सुर नर को दुर्लभ, सरनागत को सुलभ अपार
जन्म - मरन भव - बंधन छूटे, जिन श्रीमुख देख्यौ इक बार
श्री 'वल्लभ[४]', 'रघुपति[५]', श्री 'यदुपति[६]', मोहन मूरति श्री 'घनश्याम[७]'
'जन भगवान' जास बलिहारी, यह सुनि जपौं तिहारो नाम।

१. शिवसिंह सरोज

२. राग कल्पद्रुम, भाग २, पृष्ठ ११५–१६।

इस पद के प्रथम चरण में श्री वल्लभ-सुत गोसाइं विट्ठलनाथ का उल्लेख हुआ है। द्वितीय चरण में गोसाइं विट्ठलनाथ के प्रथम तीन पुत्रों श्री गिरिधर, श्री गोविंद (गोविंद राय) तथा श्री बालकृष्ण जी का वय-क्रम से नामोल्लेख हुआ है। सप्तम चरण में शेष चारों पुत्रों वल्लभ (गोकुल नाथ), रघुपति (रघुनाथ),

जदुपति (यदुनाथ) और घनश्याम का नामोल्लेख हुआ है। इस पद में गोकुलनाथ नाम नहीं, श्री वल्लभ नाम आया है। जो सूचित करता है कि गोकुल नाथ जी के दो प्रसिद्ध नाम थे। अपने 'वल्लभ' नाम को ही वे कवि-छाप के रूप में प्रयुक्त करते थे।

(७) इधर दो पद और मिल गए हैं, जो सिद्ध करते हैं कि गोसाइँ विट्ठलनाथ के चतुर्थ पुत्र गोसाइँ गोकुलनाथ का नाम 'वल्लभ' था। इन दोनों पदों में विट्ठलनाथ जी के सातों पुत्रों का नाम यथाक्रम आया है। एक पद 'मानिकचन्द' का है—

श्री 'लछमन' कुल गाइए, श्री 'वल्लभ' सुवन सुजान। ध्रुवक।

सोम-वंस सुख देन कौं, प्रगटे द्विज कुल-भान
गुन-निधि 'गोपीनाथ' जू, निर्गुन तेज निधान। १
'पुरुषोत्तम' आनंद में, श्री 'विट्ठल' व्रज के भूप
कोटि मदन-विधु वारने, मुख-सोभा सुख रूप। २
भूतल द्विज वपु धार के, श्रुतिपथ कियो प्रचंड
मारग पुष्टि प्रकासि के, माया मत कियो खंड। ३
श्री 'गिरिधर'[1] गुन आगरे, पूरन परमानंद
राज सिरोमनि लाडिले, करुनामय 'गोविंद'[2]। ४
बालकृष्ण'[3] मुख चंद्रमा, पंकज नैन विसाल
श्री 'वल्लभ गोकुलनाथ जू'[4], प्रिय नवनीत दयाल। ५
श्रीपति श्री 'रघुनाथ[5] जू, जगजीवन अभिराम
रूप रासि 'यदुनाथ जू[6]', कमला पूरन काम। ६
नवकिशोर 'घनस्याम जू[7]', अंग अंग सुखदाइ
बालक सब ब्रह्म जानि के, वेद विमल जस गाइ। ७
वृंदाविपिन सुहावनो, व्रजलीला सुखसार
'मानिकचंद' प्रभु सर्वदा, श्री गोकुल करत विहार। ८

—तृतीय गृह के कीर्तन प्रणाली के पद, पद ६०८।

इस पद में 'वल्लभ' और 'गोकुलनाथ' दोनों नाम एक साथ दिए हुए हैं।

(८) अष्टछाप के प्रसिद्ध कवि कृष्णदास अधिकारी का यह पद भी गोकुलनाथ के वल्लभ होने की बात पुष्ट करता है—

'श्री वल्लभ-कुल-मंडन, प्रगटे श्री 'विट्ठलनाथ'
जे जन चरन न सेवत, तिनके जन्म अकाथ। १
भक्ति भागवत सेवा, निसि-दिन करत अनंद
मोहन लीला सागर, नागर आनँद-कंद। २
सदा समीप विराजें, श्री 'गिरिधर[1]' 'गोविंद[2]'
मानिनि मोद बढ़ावैं, निज जन के रवि चंद। ३
'बालकृष्ण[3]' मनरंजन, खंजन अंबुज-नैन
मानिनि मान छुड़ावे, वंक कटाछन सैन। ४
श्री 'वल्लभ[4]' जग-वल्लभ, करुनानिधि 'रघुनाथ'
और कहाँ लगि बरनौं, जगवंदन 'यदुनाथ[6]'। ५
श्री 'घनस्याम[7]' लाल बलि, अविचल केलि कलोल
कुंचित-केस कमल-मुख, जानो मधुपन के टोल। ६
जो यह चरित बखाने, स्रवन सुने मन ल्याय
तिनके भक्ति जु बाढ़े, आनँद दचोस विहाय। ७
स्रवन सुनत सुख उपजत, गावत परम हुलास
चरन कमल रज पावन, बलिहारी 'कृष्णदास'। ८

—तृतीय गृह के कीर्तन-प्रणाली के पद, पद संख्या ६१०।

इन पदों में कुल चार पीढ़ियों का वर्णन है। पहली पीढ़ी में लक्ष्मणभट्ट हुए, जिनके पुत्र वल्लभाचार्य हुए। वल्लभाचार्य जी के दो पुत्र हुए—गोपीनाथ और विट्ठलनाथ। गोपीनाथ के एक पुत्र हुए पुरुषोत्तम और विट्ठलनाथ के सात पुत्र हुए—१. गिरिधर, २. गोविंदराय, ३. बालकृष्ण, ४. गोकुलनाथ वल्लभ, ५. रघुनाथ, ६. यदुनाथ, ७. घनश्याम।

अस्तु सूर नवीन के गुरु वल्लभ गोकुलनाथ जी हैं, जो वल्लभाचार्य के पौत्र हैं, स्वयं वल्लभाचार्य नहीं।

६ गुरु वल्लभ सम्बन्धी चार पद

सूर नवीन के कुछ ऐसे भी पद प्राप्त है, जिसमें इनके गुरु, वल्लभ का वर्णन हुआ है—

श्री वल्लभ भले बुरे तो तेरे
तुमही हमरी लाज बड़ाई, बिनती सुनो प्रभु मेरे

आन देव सब रंक भिखारी, देखे बहुत घनेरे
हरि प्रताप वल गिनत न काहू, निडर भए सब चेरे
सब तजि तुव सरणागति आए, दृढ़ कर चरण गहे रे
'सूरदास' प्रभु तुम्हरे मिले तें, पाए सुख जु घनेरे

— सूर ग्रंथावली, पद ५५८७

पुष्टिमार्गीय पद संग्रह, पृठ १८७ । ३६

एक दूसरे पद में मन को प्रबोध दिया गया है। इसमें भी वल्लभ के चरण कमलों के ध्यान करने की बात कही गई है—

मन रे भूल्यो, जन्म गमावे
खबर न परी तोहि, सिर ऊपर काल सदा मँडरावै
खान-पान अटक्यौ निसि, बासर-जिम्या लाड़ लड़ावै
गृह-सुख देख फिरत फूल्यो सो, सुपने मन भटकावै
कै तूं छांड़ि जायगो इनको, कै तुहि यही छुड़ावैं
ज्यौं तोता सेमर पर बैठ्यौ, हाथ कछू नहिं आवै
मेरी तेरी करत बावरे, आयुष बृथा गमावे
हरिहि बिसारि बिषय-सुख के हित, बिष्टा चित मन भावे
गिरिधर लाल सकल सुखदाता, सुन पुराण सब गावे
'सूरदास' वल्लभ उर अपने, चरण कमल चित लावे
—सूर ग्रंथावली५८८९, पुष्टिमार्गीय पद संग्रह पृ० २९१-९२/१

इस पद के अंतिम चरण में आया वल्लभ गोसाइं गोकुलनाथ का ही सूचक है।

जमुना-स्तुति सम्बन्धी एक तीसरे पद में श्री वल्लभ आया है, यह भी गोसाइं गोकुलनाथ का ही सूचक है—

जमुने पतित दास के चिह्न प्यारे
भगवदी को जु भगवत्सं ग रहै, ताके बसत हिय प्रानप्यारे
गूढ़ जमुना बात जोई अब जानही, तासु मनमोहन नयन तारे
'सूर' सुखसागर निरधार वह पावही, जापै होय वल्लभ कृपा रे ।

—सूर ग्रंथावली ५४८०

(रागकल्पद्रुम)

इन तीनों पदों में आए वल्लभ गोसाईं गोकुलनाथ के ही लिए प्रयुक्त हैं। यह प्रश्न किया जा सकता है कि इन पदों में आए वल्लभ को महाप्रभु वल्लभाचार्य क्यों न समझा जाय ? इसका उत्तर सूर की वार्ता ही है। जब महाकवि सूर मरणासन्न हो रहे थे, तब गोसाईं विट्ठलनाथ सहित सभी अष्टछापी कवि परासौली में उपस्थित हो गए थे. और अष्टछापी चतुर्भुज दास ने उनसे पूछा था—

"सूरदास जी, तुमने बोहोद भगवद् जस बर्णन कियो। सहस्रावधि पद किए। परि कछू श्री आचार्य जी महाप्रभुन कोहू वर्णन कियो है !"

"तब सूरदास जी बोले जो मैं तो यह जस सब श्री आचार्य जी महाप्रभु को ही कियो है। कछू न्यारो देखूं, न्यारो करूँ।"

चतुर्भुज दास जी का प्रश्न सहज स्वाभाविक और सत्य था। सूरदास ने महाप्रभु वल्लभाचार्य की प्रशस्ति में एक भी पद नहीं लिखा है। सूर का उत्तर भी ठीक ही है। उन्होंने गुरु गोविंद में कोई भेद नहीं किया। अत: गुरु का अलग से कोई वर्णन भी नहीं किया; पर वार्ताकार को इतने से संतोष नहीं हुआ, यद्यपि बात यहीं समाप्त हो गई। उसने सूर के उत्तर में आगे इतना और जोड़ दिया—

"परि तेरे कहेतें कहत हौं। या भाँति कहिके सूरदास जी ने एक नयो पद करिके गायो। सो पद—

राग केदारो

भरोसो दृढ़ इन चरनन केरो
श्री वल्लभ नख चंद्र छटा बिन, सब जग मांझ अँधेरो।
साधन और नहीं या जग में, जासों होत निबेरो
'सूर' कहा करे द्विविध आँधरो, बिना मोल को चेरो

यद्यपि यह पद-प्रसंग चौरासी वैष्णवन की वार्ता के सं० १६९७ वाले हस्तलेख में है और १७५२ के आसपास नहीं जोड़ा गया, फिर भी यह महाकवि सूर की रचना नहीं है, सूर नवीन की रचना है, जिनके वल्लभ सम्बन्धी तीन पद ऊपर उद्धृत किए गए हैं। जिनके तीन पद, उसी का चौथा पद भी। यदि ये सभी पद महाकवि सूर के ही होते, तो चतुर्भुजदास को प्रश्न करने का अवकाश ही कहाँ रहता। एक बात और; ये चारों पद सूरसागर के किसी भी संस्करण में नहीं हैं। यह भी इस बात का सूचक है कि ये महाकवि सूर के नहीं हैं। अस्तु मेरी निश्चित धारणा है कि 'भरोसो दृढ़ इन चरनन् केरो, वाला पद महाकवि सूर का नहीं

है, सूर नवीन का है, जिसकी रचना सं० १६६७ और १६६७ के बीच किसी समय हुई।

७. एक-लक्ष पद-बंद

ता दिन ते हरि लीला गाई, एक लक्ष पद बंद ११०३

इस पंक्ति में आए 'एक लक्ष और 'पद बंद' के अर्थ विचार-मंथन चाहते हैं। पहले इस पंक्ति के आधार पर लोगों ने कहा था कि 'सूरसागर में एक लाख पद है। सूरदास की वार्ता में यही एक लाख-सवालाख हो गया है, जिसमें से एक लाख पद तो सूरदास ने रचे, शेष पचीस हजार पद स्वयं भगवान कृष्ण ने 'सूरश्याम' छाप से रच कर जोड़ दिए। पर सूरसागर में पांच छह हजार से अधिक पद नहीं मिलते। अतः लोगों ने इस 'एक लक्ष' पर विचार करना प्रारंभ किया और उचित समाधान भी निकाला।

डा० प्रभुदयाल मीतल ने 'एक लक्ष' के दो नए अर्थ बताए। पहला अर्थ है श्रीकृष्ण। वल्लभ सम्प्रदाय में श्री मद्‌भागवत में नव लक्षणों—१ सर्ग, २ विसर्ग, ३ स्थान, ४ पोषण, ५ ऊति, ६ मन्वंतर, ७ ईशानुकथा ८ निरोध ९ मुक्ति—से लक्ष्य भगवान श्री कृष्ण की दशविध लीलाओं का निरूपण हुआ है। इसी को नंददास ने भागवत भाषा के मंगलाचरण में यों व्यक्त किया है—

नव लक्षण करि लक्ष जो, दसवें आश्रय रूप
नंद वंदि ले ताहि कों, श्रीकृष्णास्य अनूप

यदि हम 'एक लक्ष' का अर्थ श्रीकृष्ण लें, तो सूरसावाली के उक्त पद का अर्थ यह होगा—

जिस दिन से मैंने गुरु गोकुलनाथ 'वल्लभ' से वल्लभ सम्प्रदाय की दीक्षा ली और निकुंज-लीला का दर्शन किया, उसी दिन से मैंने एकलक्ष भगवान कृष्ण के पदों की वंदना करके हरि लीला के पद गाने प्रारंभ किए।

'लक्ष' का दूसरा अर्थ बहुत सीधा-सादा है—उद्देश्य। सूर ने एक लक्ष या एक उद्देश्य से पदों में हरि लीला गाना प्रारंभ किया। वह लक्ष या उद्देश्य क्या है?—प्रभु की भक्ति। प्रभु का लीला-गान।

डा० प्रभुदयाल मीतल स्पष्ट घोषणा करते हैं—

"एक लक्ष सब्द संख्यावाची नहीं है। अतः सारावली के उल्लेखानुसार सूरदास द्वारा एक लाख पद या उतनी पंक्तियाँ रचने का प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता।

८. पद वंद

सामान्यतया 'पद-वंद' का अर्थ 'पदों में बँधा हुआ' या 'पदों में विरचित' किया गया है; 'पद' राग-रागिनी बद्ध गेय गीति हैं। सामान्यतया इनका प्रथम चरण लघुकाय होता है और टेक के रूप में प्रयुक्त होता है, जिसे ध्रुवक भी कहते हैं। यह प्रत्येक दो चरणों या कड़ी के पश्चात गाते समय दुहराया जाता है। अन्य चरण दीर्घकाय होते हैं और परस्पर समान मात्रा वाले होते हैं। पदों में चरणों की कोई निश्चित संख्या नहीं होती। किसी पद में ४; किसी में ६, किसी में ८ और किन्हीं किन्हीं में १० और १२ से भी अधिक चरण होते हैं।

सूरदास की वार्ता में सहस्रावधि पदों की बात आई है। यत्र तत्र 'लक्षावधि' पाठ भी है, जो 'एक लक्ष' का प्रभाव है। सूरसागर में लाख सवा लाख पद होने की बात को लोग अविश्वसनीय मानते हैं, जो ठीक भी है। इसलिए 'पद वंद' के नए अर्थ ढूंढ़ने की कोशिश की गई है।

डा० हरिवंश लाल शर्मा ने 'पद' का अर्थ चरण या पंक्ति लिया है—

'एक लाख पंक्तियाँ दस सहस्र पदों से भी कम में आ सकती हैं और ६७ वर्ष की अवस्था तक उन्होंने अवश्य इतने पदों की रचना कर ली होगी अथवा कवि की भावी पद-निर्माण-योजना का भी यह सूचक हो सकती है।''

—सूर और उनका साहित्य, पृष्ठ ६२

श्री उदयशंकर शास्त्री 'पद-वंद' का अर्थ अनुष्टुप छंदों में श्लोक-परिमाण करना चाहते हैं—

''एक लाख पद से तात्पर्य एक लाख ग्रंथ (? छंद) या श्लोक से है और सूरदास जी ने एक लाख अनुष्टुप छंदों के परिमाण में रचना प्रस्तुत की होगी।''

पर सूरदास की समस्त रचनाएँ मिलकर भी एक लाख अनुष्टुप श्लोक के बराबर नहीं हो सकतीं, अतः इस आशंका से त्रस्त एवं ग्रस्त शास्त्री जी आगे लिखते हैं—

''वस्तुतः सूरदास की सब रचनाएँ मिलकर भी इस संख्या की पूर्ति नहीं कर सकतीं। × × अतः एक ही व्याज या मिस से रचित पदों को 'एक लक्ष पद वंद' कहने से सभी संगति बैठ जाती है।''

—सूर ग्रंथावली भाग ५, पृष्ठ ३०९१

अभिनव भरत आचार्य पंडित सीताराम जी चतुर्वेदी दो-दो पंक्तियों के समूह को 'पद' मानना चाहते हैं—

"वास्तव में पद-वंद का अर्थ एक कड़ी अर्थात् दो पंक्तियाँ हैं, जैसे गजल के एक शैर को एक 'वंद' कहते हैं। ३४ राजा संतोष रोड कलकत्ते के श्री हनुमान प्रसाद पोद्दार जी के पास जो सूरसागर की प्रति है उसके ४६८ पृष्ठों में पद तो १८८१ ही हैं, किन्तु पद-वंदों की संख्या १६००० दी हुई है।"

—सूर ग्रंथावली भाग ५, संपादक मंडल की ओर से आत्म निवेदन, पृष्ठ 'छ',

पद का अर्थ चाहे एक पंक्ति करें, चाहे दो पंक्ति करें या अनुष्टुप श्लोक के ३२ अक्षर मानें, किसी भी प्रकार सूरसागर में एक लाख पदों की पूर्ति नहीं हो सकती। ऐसी स्थिति में 'पद-वंद' का अर्थ 'पद-रचना' करना ही समीचीन है। सूर ने एक उद्देश्य से हरि लीला का गान पदों में किया। यही इसका सीधा-सादा अर्थ है।

९. ग्रंथ का नाम सूर सारावली

कवि ने अपने इस ग्रंथ का नाम 'सूर सारावली' रखा है। यह नाम इस ग्रंथ में दो बार आया है—

(१) ता दिन तें हरि लीला गाई, एक लक्ष पद वंद
ताको सार सूर सारावलि, गावत अति आनन्द ११०३

(२) धरि जिय नेम सूर सारावलि, उत्तर दक्षिण काल
मनवांछित फल सबही पावै, मिटै जन्म जंजाल ११०५।

वैसे रागकल्पद्रुम के प्रारंभ में इसे 'सूरसागर सारावली' और अन्त में सूर सागरस्य सारावली' कहा गया है, पर कवि का दिया नाम 'सूरसारावली' ही है और यह ग्रंथ इसी नाम से प्रसिद्ध भी है।

१०. सूरसारावली में एक अन्य सूरसागर का संकेत

पहले 'सूरसारावली' को महाकवि सूर के सूरसागर का सार-संक्षेप एवं एक लाख पदों का सूचीपत्र समझा जाता था। ऐसा रागकल्पद्रुम में प्रकाशित सूर सारावली के आदि अन्त में लिखा हुआ है। इसका आधार सूरसारावली की ये दो पंक्तियाँ हैं—

ता दिन तें हरि लीला गाई, एक लक्ष पद वंद
ताको सार सूर सारावलि, गावत अति आनन्द ११०३

अब सूर-सारावली और साहित्य-लहरी सूर नवीन की कृति सिद्ध हो गई हैं। अतः ऊपर उद्धृत पंक्तियों से महाकवि सूर के सूरसागर का अर्थ लेना संभव नहीं रह गया है। 'सूरसारावली' महाकवि सूर के सूरसागर की सारावली नहीं है, सूर नवीन के सूरसागर की सारावली है। यह किसी सूर-सागर के पदों की सूची नहीं है, सूर नवीन के सूर-सागर में जो कुछ कहा गया है, उसी का इसमें स्वतंत्र रूप से सार-कथन है। यह स्वतंत्र ग्रंथ है।

(ग) आईन-ए-अकबरी में सूर

अबुल फजल और फैजी दोनों सगे भाई थे और दोनों विद्वान थे। ये दोनों अकबरी दरबार के नवरत्नों में थे। अबुल फजल ने सं० १६५३-५४ वि० में अकबर के सम्बन्ध में 'आईन-ए-अकबरी' नामक ग्रंथ फारसी में लिखा था। यह अपने युग का प्रामाणिक इतिहास है। इस फारसी इतिहास ग्रंथ का ब्लाचमैन ने अँगरेजी में अनुवाद किया है। इस ग्रन्थ के एक स्थल पर अकबरी दरबार के गवैयों की सूची दी गई है। इस सूची में प्रथम स्थान पर तानसेन का नाम है। दूसरे स्थान पर बाबा रामदास का नाम है। इन बाबा रामदास को ग्वालेरी कहा गया है। उन्नीसवीं संख्या पर सूरदास का नाम लिखा गया है। इन सूरदास को बाबा रामदास का बेटा कहा गया है। महाकवि सूर के पुराने सभी अध्येताओं ने इनके पिता का नाम रामदास लिखा है। वल्लभ सम्प्रदायी साहित्य में कहीं भी सूरदास के पिता का नाम रामदास नहीं आया है। भक्तमाल में भी कोई उल्लेख नहीं है। भक्तमाल की टीका में प्रियादास ने न जाने क्यों सूर वाले छप्पय की टीका ही नहीं की है। ऐसी हालत में इस टोका में रामदास के नाम होने की चर्चा करना भी बेसूद है। पुराने लोगों ने सूरदास के बाप का नाम जो रामदास दिया है, उसका मूल आधार आईन-ए-अकबरी ही है।

सूर नवीन ने साहित्य लहरी के कवि-परिचय वाले पद में गोपाचल (ग्वालियर) के हरिचंद को अपना बाबा कहा है, पिता का नाम नहीं दिया है। अपने सात भाइयों का नाम अवश्य दिया है। भारतेन्दु ने पहली बार सूर वाले अपने लेख में सूर के बाप का नाम रामचंद्र दिया और अनुमान किया कि "वैष्णव प्रभाव से यही रामचंद्र रामदास हो गया। तभी से महाकवि सूर के बाप का रामदास हो गया।" पर वास्तविकता यह है कि रामदास सूर नवीन के बाप थे, न कि महाकवि सूर के। अब कोई भी महाकवि सूर के बाप का नाम रामदास नहीं कहता या लिखता।

सूरजचंद के बाबा हरिचंद सूर के ही अनुसार गोपाचल के थे। सूर के बाप बाबा रामदास आईन-ए-अकबरी के अनुसार ग्वालेरी थे। ग्वालेरी का अर्थ है ग्वालियर का रहने वाला। जिसे हम आज ग्वालियर कहते हैं, उसी का पुराना नाम गोपाचल है। इस प्रकार सूर के कवि-परिचय वाले पद की चूल आईन-ए-अकबरी की चूल से मिल जाती है।

आईन-ए-अकबरी की रचना सं० १६५३-५४ वि० में हुई थी। उस समय महाकवि सूर को दिवंगत हुए प्रायः १३-१४ वर्ष हो चुका था। स्पष्ट है कि अकबरी दरबार के गायक सूरदास का महाकवि सूर से कोई लेना-देना नहीं।

ब्लाचमैन ने बाबा रामदास पर यह टिप्पणी दी है—

"Note—Badonl (11-12) says Ram Das came from Laknau. He appears to have been with Bairam Khan during his rebellion and he received once from him one lakh of tankahas, empty as Bairam's treasure chest was. He was first at the court of Islam Shah and is looked upon as second only to Tansen. His son Surdas is mentioned below."[१]

इस टिप्पणी के आधार पर निम्नांकित सूचनाएं प्राप्त होती हैं—

१. सूरदास रामदास के पुत्र थे।

२. रामदास पहले इसलाम शाह सूर के दरबार में थे।

३. सूरशाह जब हुमायूँ से हार गया, तब रामदास का पुराना राजाश्रय समाप्त हो गया और यह हुमायूँ के बहनोई बैरम खाँ के आश्रय में आ गए।

४. रामदास लखनऊ से आए थे।

५. बैरमखाँ ने अपने खजाने के खाली होते हुए भी एक बार इन्हें एक लाख टंक दिए थे।

६. जब बैरमखाँ ने अकबर से विद्रोह किया, तब यह उसी के आश्रय में थे।

यह अकबरी दरबार के गवैये माने जाते थे।

---

१. राधाकृष्णदास ग्रंथावली, पृष्ठ ४८६।

सलीम से अकबर का मन नहीं मिलता था। सलीम समझता था कि इसका कारण अबुलफजल है, जो अकबर का अत्यन्त मुँहलगा था। इसीलिए उसने षड़यंत्र करके ओरछानरेश मधुकर शाह के पुत्र वीरसिंहदेव से अबुलफजल को सं० १६५९ में मरवा दिया। अकबर को शेख की मौत का बहुत बड़ा सदमा हुआ और वह भी तीन ही वर्ष बाद संवत १६६२ में दिवंगत हो गया। उसके पश्चात् सलीम जहाँगीर के नाम से बादशाह हुआ। लगता है कि अकबर की मृत्यु के अनन्तर सूरदास को मुगल दरबार से विरक्ति हो गई और राजाश्रय से मुक्त होकर यह व्रजमंडल में चले आए—

मोहि मनसा इहै, व्रज की बसै सुख चित थाप

कुछ दिन तक यह सद्गुरु की तलाश में व्रजमंडल में घूमते रहे। फिर सं० १६६७ में गोसाइँ गोकुलनाथ 'वल्लभ' से वल्लभ-संप्रदाय में दीक्षित हो गए और श्रीनाथ जी के आठ कीर्तनियों में शामिल हो गए।

२. सूर नवीन : जीवन-परिचय

नाम

साहित्य लहरी के रचनाकाल सूचक पद में अष्टछाप के सुप्रसिद्ध प्राचीन महाकवि सूर से अपने को अलग करने के लिए इसके रचयिता ने अपने को 'सूर नवीन' कहा है। यह उसका वास्तविक नाम नहीं है। नाम तो है 'सूर', 'नवीन', प्राचीन से अपने को भिन्न संसूचित करने के लिए, जोड़ लिया गया है।

त्रितिय रिच्छ, सुकर्म जोग, बिचारि 'सूर नवीन'

साहित्य लहरी के वंश-परिचय वाले पद से ज्ञात होता है कि कवि का वास्तविक नाम सूरजचंद था—

भयो सातो नाम **सूरजचंद** मंद निकाम

कवि की तीन छापें हैं—

१. सूरज या सूरजदास
२. सूर या सूरदास
३. सूर श्याम

ये तीनों नाम यदुपति, कृष्ण द्वारा दिए गए हैं। यह सूचना साहित्यलहरी के वंश-परिचय वाले पद से मिलती है—

नाम राखे हैं सु सूरजदास सूर सु स्याम

पिता का नाम

आईन-ए-अकबरी में दी गई अकबरी दरबार के गायकों की सूची से ज्ञात होता है कि सूरदास के पिता का नाम बाबा रामदास था। बाबा रामदास का नाम उक्त सूची में संख्या २ पर है और सूर का संख्या १९ पर। इन्हें दो संख्यक उक्त रामदास का पुत्र कहा गया है।

स्थान

अकबरी दरबार की गायक-सूची में बाबा रामदास को ग्वालेरी कहा गया है। अस्तु सूरदास का भी मूल-स्थान ग्वालियर माना जा सकता है। वैसे अकबरी दरबार में रहते समय वह आगरा में थे और विरक्त हो जाने पर यह व्रजवासी हो गए थे और गोकुल में श्री गोकुलनाथ जी के मंदिर के आसपास कहीं रहते थे।

श्री उदयशंकर शास्त्री ने सूर सौरभ, कला१, किरण४, आश्विन २०३८ में 'सूरदास का जन्म-स्थान' शीर्षक एक लेख लिखा है। इसमें वे लिखते हैं—

"कुछ दिनों पूर्व श्री तोताराम पंकज (अब स्वर्गीय) ने किसी प्राचीन पुस्तिका के आधार पर लिखा था कि सूरदास का पूर्व नाम सूरजदास और उनकी माता का कोसा या कौशल्या था और उनका जन्म-स्थान आगरे के निकट साही ग्राम था। सूरदास के ६ भाइयों के मारे जाने की जैसी कथा साहित्यलहरी वाले पद में दी हुई है, वैसी ही इस गाँव में भी प्रचलित है। पद में तो सूरदास के भाइयों के मारे जाने की कथा ही दी हुई है, पर इस गाँव में प्रचलित किंवदंती में उनके मारे जाने का कारण भी बताया जाता है।"

—सूर सौरभ २/४, पृष्ठ १०

अस्तु, आगरा के निकट का यह साही गाँव ही सूर नवीन का जन्म स्थान है। इसका महाकवि सूर के जन्म स्थान वल्लभगढ़ के पास वाले सीही से कोई सम्बन्ध नहीं।

उदयशंकर शास्त्री ने इस कथा के द्वारा दुहरा वार करना चाहा है। एक तो गो० हरिराय द्वारा महाकवि सूर की सीही का खंडन, दूसरे डॉ० राधेश्याम की इस मान्यता का खंडन कि सूर ग्वालियर के पास किसी गाँव के रहने वाले थे। इस खंडन-मंडन में मेरे काम की बात मिल गई।

सूर नवीन का निधन-स्थल गोकुल में ही कहीं होना चाहिए, क्योंकि यह गोकुल में अपने गुरु गोकुलनाथ की ही शरण में रहते थे। शास्त्री जी ने तोताराम पंकज के लेख का कोई संदर्भ नहीं दिया है कि वह कब और कहाँ प्रकाशित हुआ था। पर वे तोताराम जी की बात मानते हुए प्रतीत होते हैं—

"केवल एक पद या किसी दंतकथा के आधार पर उनका जन्म-स्थल ग्वालियर में कल्पित करना उचित नहीं है। सूरदास का स्वयं कथन है—

"जनम भूमि व्रज मथुरा रजधानी।"

पृ० ४६ पर शास्त्री जी पहले ही कह चुके हैं—

'साहित्यलहरी वाले पद के—आगरे रहि, गोपचल में रह्यो ता सुत वीर—के अनुसार भी सूरदास जी का जन्म आगरे के आसपास कहीं होना चाहिए, न कि आगरे से ५० कोस दूर।" × + "जिस काल में गो० हरिराय जी सीही की बात लिख रहे थे, उसी समय कश्मीर नरेश के भाई कवि मिहाँ सिंह ने

मथुरा प्रांत विप्र वर गेहा। भो उत्पन्न भक्त हरि नेहा॥

भी लिखा है।"

हमारा निष्कर्ष यह है कि गो० हरिराय जी द्वारा कथित सीही अष्टछापी महाकवि सूर का जन्मस्थान है। इसमें संदेह की आवश्यकता नहीं। अब रही 'आगरा के निकट साही ग्राम' की बात। इसका लगाव सूर नवीन के साथ है। यह रामदास के पुत्र सूर का जन्म-स्थान है। रामदास शाहों के दरबारी गवैये थे, यह पहले आगरा में थे, सूरियों के साथ। इसी प्रवास-काल में सूर 'साही' में पैदा हुए, पर वे कहलाए ग्वालियरी ही, जो उनके बाप, दादा का स्थान था और बाद में सूर का भी स्थान रहा। गुणी कहीं भी फूले, फले, अपनी जड़ से ही वह जाना जाता है। 'साही' शाही है और सूचित करता है कि कवि किसी शाही डेरे में पैदा हुआ था। बाद में वहाँ एक गाँव बस गया, जो शाही खेमे के कारण 'साही' कहा गया।

जाति और वंशावली

सूरजचंद ने साहित्य-लहरी में अपना वंश-परिचय एक पद में दिया है। इसके अनुसार यह ब्रह्मभट्ट थे। दिल्ली नरेश पृथ्वीराज चौहान के मित्र, मंत्री, कवि

सुप्रसिद्ध चंदवरदाई हुए हैं। सूरजचंद इन्हीं का वंशज था। कवि के ही अनुसार उसकी वंशावली यों बनती हैं—

महामहोपाध्याय हर प्रसाद शास्त्री ने जोधपुर के नेनूराम भट्ट (जन्म सं० १९१९ वि०) से उनकी वंशावली प्राप्त की थी। नेनूराम जी अपने को सूरदास का वंशज कहते थे और अपने को चंद बरदाई से २७वीं पीढ़ी में उत्पन्न बताते थे। नेनूराम जी के अनुसार इनके पुराने पुरखे ग्वालियर के एक गांव में रहते थे। सूर के दो बड़े भाई बुद्धचंद और देवचंद ग्वालियर छोड़कर मारवाड़ के नागौर नगर में जाकर बस गए थे। नेनूराम के पिता बुद्धचंद नागौर छोड़कर बीकानेर चले गए और नेनूराम बीकानेर छोड़कर जोधपुर आ गए थे। नेनूराम जी प्रसिद्ध पुरातत्ववेत्ता मुंशी देवीप्रसाद जी के मित्र थे।

नेनूराम जी के अनुसार चंद से सूर तक सूर की यह वंशावली बनती हैं—
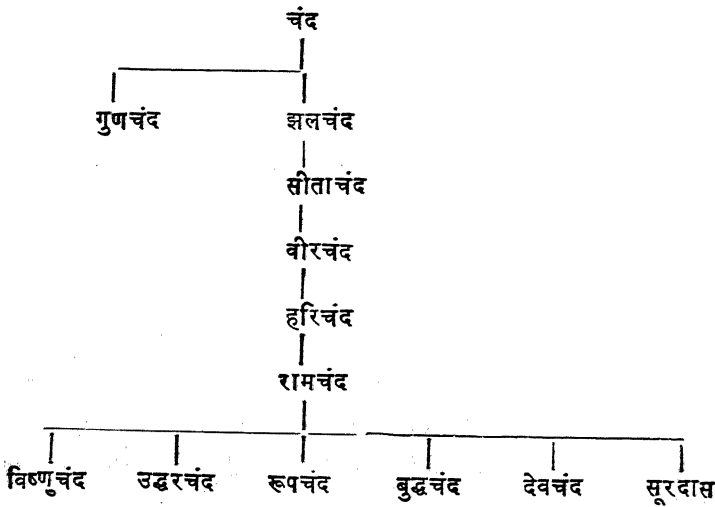
दोनों वंश वृक्षों में पर्याप्त साम्य है। नेनूराम-प्रस्तुत वंश-वृक्ष से सूर के पिता का नाम रामचंद ज्ञात होता है। यही रामचंद आईन-ए-अकबरी के 'बाबा रामदास ग्वालेरी' हैं।

महाकवि अष्टछापी सूर के पिता का नाम अज्ञात है। सूर के प्रारंभिक अध्येताओं ने इन प्राचीन सूर के पिता का नाम रामदास लिखा है। उनका यह कथन ठीक नहीं है और अब कोई भी महाकवि सूर के पिता का नाम रामदास नहीं कहता। रामदास वस्तुतः सूर नवीन के पिता का नाम था।

भाई-बन्धु

सूर नवीन ने वंश-परिचय वाले साहित्य-लहरी के पद में अपने छह बड़े भाइयों का नामोल्लेख किया है। ये सातों भाई 'महाभट गंभीर' थे। ये छहो भाई—कृत्तचंद, उदारचंद, रूपचंद, बुद्धिचंद (प्रकाशचंद), देवचंद, प्रबोधचंद—किसी शाह से समर करते हुए मारे गए—

सो समर कर साहि से, सब गए विधि के लोक

यह शाह कौन था, कुछ कहा नहीं जा सकता।

सूर नवीन का समय

मई १५४० ई० (सं० १५९७ वि०) में शेरशाह ने हुमायूं को कन्नौज में अंतिम और भारी शिकस्त दी थी। हुमायूं को भारत से भागकर ईरान में शरण लेनी पड़ी थी। इस बीच शेरशाह ने १५४० से १५४५ ई० तक शासन किया— केवल ५ वर्ष। उसका निधन २२ मई सन् १५४५ ई० को हुआ।

शेरशाह की मृत्यु के अनंतर उसका बेटा इसलामशाह सूर दिल्ली के तख्त पर बैठा। उसने कुल ९ वर्ष राज्य किया, १५४५ से १५५३ ई० तक। इन्हीं इसलामशाह के दरबार में (सं० १६०२-१६१० वि०) रामदास थे। इसकी सूचना आईन-ए-अकबरी से हमें प्राप्त है।

इसी इसलामशाह सूरी के दरबार में पहले सूरदास भी थे। फारसी का एक ग्रंथ है—अफसान-ए-शाहान (बादशाहों के किस्से)। इसका विवरण उदयशंकर शास्त्री ने 'सूरदास का जन्म-स्थान' नामक अपने लेख में—सूर सौरभ २।४, आश्विन सं० २०३८, पृष्ठ ४९—दिया है। इस ग्रंथ के लेखक कोई मुहम्मद कबीर हैं। प्रसंग प्राप्त अंश यों हैं—

"इसलाम शाह के चरित्र का उल्लेख करते हुए मुहम्मद कबीर ने लिखा है कि जिस जगह यह खुद रहते थे, उनके इर्द-गिर्द ही उनके दरबार के गुणी, कलावंत, कबियों के कोशक (खेमें) खड़े किए जाते थे। उनमें उलमा, फुजला व सुअरा रहा करते थे। उन सबके उपयोग के लिए पान, सुपारी व इत्र आदि की सुविधा रहती थी। उनके साथ जो कलाकार रहते थे, उनमें मधु मालती (काव्य) के लेखक मीर सैयद मंझन, शाह मुहम्मद फरमली तथा मंझन के छोटे भाई मूसन व सूरदास सहित अरबी फारसी और हिंदवी के कवि भी रहते थे। इसलाम शाह ने उन कलाकारों को कह रखा था कि मेरे आने पर किसी प्रकार की ताजीम देने की आवश्यकता नहीं है। इससे आप लोगों के रचना-कार्य में बाधा पड़ती है, इसलिए जो जिस स्थिति में हो, उसे उसी स्थिति में रहना चाहिए।"

इसलाम शाह की मृत्यु के अनंतर उसका पुत्र फीरोज खां उत्तराधिकारी हुआ। पर थोड़े ही दिन के बाद उसके मामा ने उसकी हत्या कर दी और स्वयं मुहम्मद शाह अदली के नाम से सुल्तान बन बैठा। इसीका मंत्री हेमू था। तदनंतर शीघ्र ही सिकंदरशाह सिंध गंगा के मैदान का स्वामी बन बैठा। पर शीघ्र ही १५५५ ई० में हुमायूं फारस से लौटा और उसने सरहिंद के पास सिकंदरशाह सूर को

ाकर पुनः मुगल राज्य की स्थापना की। पर वह भी सीढ़ी से गिरकर जल्द ही मर गया और राज्य-सुख न भोग सका। १४ फरवरी १५५६ ई० को १४ वर्ष के अकबर को दिल्ली की मुगल गद्दी मिली। दो वर्षों में इतनी सारी घटनाएँ घट गईं। इस बीच बाप बेटे रामदास सूरदास कहाँ रहे ? पता नहीं।

१५५६ ई० में पानीपत की दूसरी लड़ाई हुई, जिसमें मुहम्मदशाह अदली का सुयोग्य मंत्री और सेनापति हेमू मारा गया। सिकंदरशाह सूर ने भी आत्म समर्पण कर दिया। इस अफगान-संघर्ष में एवं अकबर के प्रारंभिक शासनकाल (१५५६-१५६० ई०) में अकबर के फूफा बैरम खां ने बड़ी निष्ठा के साथ सेवा की थी। जब उसने अपने को सुदृढ़ करना चाहा, तब अकबर ने उसे मक्का चले जाने की राय दी। पर बैरम खां ने विद्रोह कर दिया। अंततः उसे मक्का के लिए प्रस्थान करना ही पड़ा। ३१ जनवरी १५६१ ई० को गुजरात के पाटन नगर में सहस्रलिंग के तालाब में नौका विहार करते समय एक रक्त-पिपासु पठान मुबारक लोहानी ने उसकी पीठ में छूरा भोंक कर उसे मार डाला।

बैरम खां के विद्रोह के समय रामदास उसके साथ थे। सूरदास भी रहे ही होंगे। यह सं० १६१७ वि० की बात है। इस निर्धनता की स्थिति में भी बैरम खाँ ने रामदास को एक लाख टंक दिये थे। उस समय अब्दुर्रहीम की आयु ४ वर्ष थी।

इसके पश्चात रामदास और सूरदास, बाप बेटे दोनों, अकबरी दरबार में आ गए और गायक हो गए। इसका उल्लेख सं० १६५३-५४ वि० में रचित अब्बुल फजल कृत 'आईन-ए-अकबरी' में हुआ है।

अकबर का देहान्त सं०१६६२ में हुआ। इसीके आस-पास विरक्त होकर सूर ब्रज आ गये और सं० १६६७ में गोकुल में गो० गोकुल नाथ 'वल्लभ' से वल्लभ संप्रदाय की दीक्षा ले ली।

सं० १६७७ में सूर ने साहित्य लहरी की रचना की।

सं० १६९७ में इनके गुरु गो० गोकुलनाथ का निधन हुआ।

इन सब तिथियों पर विचार करते हुए मैं सूर नवीन का जीवनकाल सं० १५३० और सं० १६६० के बीच स्वीकार करता हूँ।

ब्रजगमन और वल्लभ-संप्रदाय में दीक्षा

मुगल दरबार से विरक्त हो जाने के अनंतर सूरदास ब्रजमंडल में चले आए।

मोहि मनसा इहै, ब्रज की बसै सुख चित थाप

यहाँ आने पर सदगुरु की तलाश में यह कुछ दिनों तक ब्रज-मंडल में घूमते रहे। अंततः इनकी दृष्टि उस समय के प्रसिद्ध गुरु गोसाईं गोकुलनाथ पर पड़ी और इन्होंने उनसे वल्लभ संप्रदाय की दीक्षा ले ली। उन्होंने यह दीक्षा संवत् १६६७ वि० में ली। महाकवि सूर ने सं० १५६७ में गऊघाट पर महाप्रभु बल्लभाचार्य से वल्लभ-संप्रदाय की दीक्षा पाई थी। उसके ठीक सौ वर्ष बाद सूर नवीन ने सं० १६६७ में उनके पौत्र, गोसाइँ गोकुलनाथ 'वल्लभ' से इस संप्रदाय में प्रवेश लिया। गुरु-कृपा से उन्हें राधाकृष्ण की निकुंज-लीला का आभास हुआ। इस तथ्य का उल्लेख उन्होंने सूर सारावली की निम्नांकित पंक्तियों में किया है।

गुरु-परसाद होत यह दरसन, सरसठ बरस प्रवीन

यह सरसठ न तो कवि की वय का सूचक है, न सूर सारावली के रचना काल का। यह कवि के वल्लभ-संप्रदाय में दीक्षित होने का संवत है।

दीक्षा लेने के पहले शिष्य ने गुरु की और दीक्षा देने के पूर्व गुरु ने शिष्य की पूर्ण परख कर ली थी। श्रीनाथ जी की कीर्तन-सेवा के अष्ट-कीर्तनियों की जो व्यवस्था गोसाईं विट्ठलनाथ कर गए थे, वह उनके पुत्र गोसाईं गोकुलनाथ के समय में भी प्रचलित थी। उन्होंने इस अष्ट-मंडली में अपने इस नवीन शिष्य सूर को भी सम्मिलित कर लिया। इस तथ्य की सूचना कवि ने वंश-परिचय वाले पद की निम्नांकित पंक्ति में दी है—

थपि गुसाईं करी मेरी आठ मध्ये छाप

गोसाईं गोकुलनाथ का घर का नाम वल्लभ था और वे स्व-रचित पदों में वल्लभ ही छाप रखते थे। सूर सारावली के इस चरण में सूर नवीन ने अपने गुरु का यही नाम वल्लभ दिया है—

श्री वल्लभ गुरु तत्व सुनायौ, लीला भेद बतायौ ११०२

यह वल्लभ गो० गोकुलनाथ हैं, न कि महाप्रभु वल्लभाचार्य।

गोसाईं गोकुलनाथ जी को बँटवारे में श्री गोकुलनाथ जी का स्वरूप प्राप्त हुआ था और वे गोकुल में संस्थापित किए गए थे। गोकुल ही गोसाईं गोकुलनाथ जी का स्थान था। सूर नवीन का भी यही मुख्य स्थल होना चाहिए। यों वे

यदाकदा गोवर्द्धन और श्रीनाथ जी की कीर्तन-सेवा के लिए आते जाते रहे होंगे।

काव्य-रचना

सूरदास पहले अकबरी दरबार के गायक थे और संभवत: अपने भी बनाए कुछ ध्रुपद आदि गाते रहे थे। गायक प्रायः अपने बनाए पद गाना पसंद करते हैं। आगरा में रहते समय सूर को अपने बाप बाबा रामदास से गायकी और संगीत की अच्छी शिक्षा प्राप्त हुई थी। यहाँ रहते समय इन्हें दरबार के कायदे कानून से भी अच्छा परिचय हुआ और दरबारी भाषा फारसी का भी किंचित ज्ञान हुआ। काव्य-रचना यहीं से प्रारंभ हुई होगी। पर यह आज सुलभ नहीं।

सं० १६६७ में वल्लभ-संप्रदाय में दीक्षित होने के बाद ही सूर नवीन ने श्रीकृष्ण को अपना एक मात्र लक्ष मानकर हरिलीला के पद गाने प्रारंभ किए। इस लक्ष्य का उल्लेख इन्होंने सूर सारावली के निम्नांकित चरण में किया है।

ता दिन ते हरि लीला गाई, एक लक्ष पद बंद ११००

महाकवि सूर के सूरसागर से ही प्रेरणा प्राप्त करके इन्होंने १७६७ ही से अपने स्कंधात्मक सूरसागर का प्रणयन प्रारंभ किया, जिसकी संपूर्ति के अनंतर सं० १६८० के आसपास इन्होंने 'सूर सारावली' की रचना की, जो उनके सूरसागर का सार है, सिद्धांत कथन है। इसी को उन्होने सूर सारावली की इस पंक्ति में व्यक्त किया है—

ताको सार 'सूर सारावलि', गावत अति आनंद ११०३

महाकवि सूर के कूटों से प्रेरणा प्राप्त करके सूर नवीन ने कूट-रचना में प्रवीणता प्राप्त की और कूटों में ही इन्होंने काव्य शास्त्र का एक ग्रन्थ लिखा, जिसका नाम साहित्य-लहरी है। साहित्य-लहरी की रचना सं० १६७० में हुई थी, कृष्ण भक्तों के लिए, 'नंदनंदन दास हित' हुई थी। यह सब सूचना कवि ने साहित्य-लहरी के रचनाकाल सूचक पद में दे दी है—

मुनि पुनि रसन के रस लेख
दसन गौरीनंद को लिखि, सुबल संवत पेख
× × ×
नंदनंदन दास हित साहित्य लहरी कीन १०८

वस्ततु: सूर नवीन के तीन ही प्रमुख ग्रंथ हैं—१. साहित्य लहरी, २. सूर सागर (स्कंधात्मक संस्करण), ३. सूर सारावली। इनके अतिरिक्त इन्होंने छोटे-छोटे पचीसों ग्रंथ रचे हैं। इन सबका परिचय अगले अध्याय में दिया गया है।

सूर नवीन और गोसाईं तुलसीदास की भेंट

मूल गोसाईं चरित के अनुसार गोसाईं गोकुलनाथ (जन्म सं० १६०८ वि०) ने सूरदास को सं० १६१६ में गोसाईं तुलसीदास से मिलकर सूरसागर की अमरता के लिए आशीर्वाद प्राप्त करने भेजा था। यह कथन किसी अनुश्रुति के आधार पर है। यह सूर अष्टछापी सूर नहीं ही हो सकते और संवत १६१६ वि० अशुद्ध है। गोकुलनाथ जी ने अपने बाबा के शिष्य सूर को नहीं, अपने शिष्य सूर को आशीर्वाद लेने भेजा होगा और यह समय निश्चय ही १६७५ और १६८० के बीच का होगा। यही समय द्वादश स्कंधात्मक सूरसागर की समाप्ति का भी होगा। मिलन-स्थल काशी ही हो सकता है। यह मिलन असम्भव नहीं।

निधन-काल

गोस्वामी गोकुलनाथ का निधन संवत १६९७ में हुआ। मेरा खयाल है कि उनके शिष्य सूर का भी निधन सं० १६९० के लगभग किसी समय हुआ होगा।

एक आश्चर्य

वल्लभ संप्रदायी साहित्य में महाकवि सूर के प्रकरण में कहीं भी साहित्य-लहरी और सूर-सारावली का उल्लेख नहीं है। महाकवि सूर के प्राचीन अध्येता इन्हें महाकवि सूर की रचना मानते आए हैं और विरोधी पक्ष के लोगों की यह मान्यता है कि ये रचनाएँ महाकवि सूर की हैं ही नहीं। फिर इनका उल्लेख महाकवि सूर के प्रसंग में कैसे होता? विपक्षियों का यह बहुत बड़ा तर्क है, जिसका कोई जवाब पक्षियों के पास नहीं है। ये दोनों ग्रंथ महाकवि सूर के हैं ही नहीं, फिर इनका उल्लेख होता तो कैसे?

इसी प्रकार यह आश्चर्यजनक है कि सूर नवीन उसी वल्लभ संप्रदाय के हैं, जिस वल्लभ संप्रदायी के महाकवि सूर थे। यह प्रसिद्ध गो० गोकुलनाथ के शिष्य थे और अत्यन्त प्रसिद्ध गो० हरिराय (सं० १६४७-१७७२) के समकालीन थे, उन गो० हरिराय के, जो अधिकांश वार्ता साहित्य के मूल में हैं। फिर भी वल्लभ-संप्रदायी साहित्य में इनका कहीं भी कोई उल्लेख नहीं है। जो कारण साहित्य-लहरी

और सूर-सारावली के अनुल्लिखित होने का है, वही कारण इनके कर्ता सूर नवीन के भी अनुल्लिखित होने का है। इस पर आश्चर्य करना व्यर्थ है।

३. सूर नवीन की कृतियाँ

मैंने जो जाँच-पड़ताल की है, उसके अनुसार सूर नवीन के छोटे-बड़े कुल ३० ग्रंथ हैं। इनमें तीन बड़े हैं—साहित्य-लहरी, सूर सागर (स्कंधात्मक संस्करण) सूर-सारावली। शेष २७ ग्रंथों में चार छोटे ग्रंथ ऐसे हैं, जो सूर सागर के सभा संस्करण में सन्निविष्ट हैं। शेष २३ लघु ग्रंथ सभा की खोज रिपोर्टों के आधार पर प्रस्तुत एवं विवृत है।

(क) सूर नवीन के तीन बड़े ग्रंथ

१. साहित्य-लहरी

साहित्य-लहरी का प्रथम प्रकाशन सं० १९२५ वि० (सन १८६९ ई०) में लाइट प्रेस वाराणसी से लीथो में हुआ था। यह सटीक संस्करण है। टीका सरदार कवि की की हुई है। बाद में १८९० ई० से यह टीका नवलकिशोर प्रेस लखनऊ से छपने लगी। नवल किशोर प्रेस लखनऊ से प्रकाशित साहित्य-लहरी के पाँचवें संस्करण (१९२९ ई०) की एक प्रति मेरे पास है। ग्रंथ का नाम 'श्री सूरदास का दृष्टिकूट सटीक' है। ग्रंथ दो भागों में विभक्त है। प्रथम भाग में कुल ११७ पद हैं। इनमें पद १०९ रचनाकाल सूचक है और पद ११० कवि का वंश-परिचय देता है। ग्रंथ यहीं समाप्त हो जाना चाहिए, पर इसके आगे ७ पद और कहाँ से आ गए?

रचनाकाल सूचक पद में ग्रंथ का नाम 'साहित्य लहरी' दिया हुआ है—

नंदनंदनदास हित **साहित्य-लहरी** कीन

'सूरदास का दृष्टिकूट' के द्वितीय भाग में कुल ६३ पद हैं। इन्हें सरदार कवि ने यत्नपूर्वक सूरसागर से छाँटकर निकाला है और इनकी टीका की है। ग्रथांत में वे लिखते हैं—

मतन मतन ते सूर कवि, सागर कियो उदार
बहुत यतन ते मथन करि, रतन लहे **सरदार** ॥१॥
तिन पर सुचि टीका रची, सुजन जानिबे हेतु
मनु सागर के तरन को, सुंदर सोभा सेतु ॥२॥

सरदार ने 'सूरदास का दृष्टिकूट' के द्वितीय भाग के ६३ पदों को ही सूर सागर से संकलित किया है। प्रथम भाग उनके द्वारा किया हुआ संकलन नहीं है। हाँ दोनों भागों की टीका उनके द्वारा ही की गई है। यह टीका सं० १९०४ में कातिक सुदी ११ को पूर्ण हुई थी। यह ग्रंथांत के इस दोहे से स्पष्ट है—

४ ० ९ १
संवत वेद सु सून्य ग्रह, औ आतमा बिचार
कातिक सुदि एकादसी, समुझि सुद्ध वर बार ॥३॥

यह टीका-काशी नरेश महाराज उदित नारायण सिंह के पुत्र महाराज ईश्वरी नारायण सिंह के आश्रय में रहकर पूर्ण हुई थी। साहित्य-लहरी के प्रथम कूट पद की टीका के पहले कवि ने अपने आश्रयदाता की सूचना इस सोरठे में दे दी है—

काशीनाथ उदार, उद्दत उद्दित नंद है
ताकी सरण बिचार, रहत सदा सरदार कवि ॥३॥

साहित्य लहरी की रचना संवत १६७७ में हुई थी,

७ ७ ६
मुनि, पुनि, रसन के रस, लेख
१
दसन गौरीनंद को लिखि, सुवल संवत पेख

साहित्य लहरी 'ब्रजभाषा का सबसे अधिक क्लिष्ट काव्य' है। ऐसा डॉ० धीरेन्द्र वर्मा का अभिमत है, जो ठीक ही है। सरदार कवि ने इसकी टीका की, यह उनके वैदुष्य का प्रमाण है। सम्भवतः उनसे पहले भी स्वयं सूर ने या किसी और ने साहित्य लहरी की कोई टीका की थी, जिसका उपयोग सरदार ने किया रहा होगा।

साहित्य लहरी के प्रकाशन-काल सं० १९२५ से इस ग्रंथ की अभिज्ञता हिन्दी वालों को हुई। तभी से यह कृति महाकवि सूर की रचना समझी जाती रही है। इसके दो कारण हैं, एक तो ग्रंथ के नाम में ही इसके रचयिता का उल्लेख है 'श्री सूरदास का दृष्टिकूट', दूसरे इसके कूट पदों में सूर की छाप मिलती है।

१९४६ ई० में डॉ० ब्रजेश्वर वर्मा का शोध प्रबन्ध 'सूरदास' प्रकाशित हुआ। इसमें प्रथम बार कहा गया कि साहित्य-लहरी महाकवि सूर की रचना नहीं है। तब से आज तक इस सम्बन्ध में बराबर ऊहापोह चलता रहा है कि यह महाकवि सूर की रचना है या नहीं। जो इसे सूर की रचना नहीं मानते, वे यह

नहीं बता पाते कि यह रचना है किसकी। इस सम्बन्ध में सर्वप्रथम विचार प्रस्तुत ग्रंथ में किया गया है। वंश-परिचय वाले पद को मिश्रवंधुओं ने १६०३ ई० में हिन्दी नवरत्न में प्रक्षिप्त घोषित कर दिया, तभी से इस चंद्र-वंश पर क्षेपक-राहु सवार है, उग्रह का अवसर अब इस ग्रंथ के द्वारा आ रहा है। मैंने डॉ० व्रजेश्वर वर्मा के मत को स्वीकार किया है कि साहित्य लहरी महाकवि सूर की रचना नहीं है, साथ ही यह भी बताया है कि यह वंश-परिचय वाले पद के अनुसार चंद बरदाई एवं ग्वालियरी रामदास के पुत्र ब्रह्मभट्ट सूरजचंद की रचना है। यह सूरजचंद प्रसिद्ध अष्टछापी महाकवि सूर से परवर्ती है और इन्होंने भी महाकवि सूर के दीक्षाकाल सं० १५६७ से ठीक १०० वर्ष बाद, सं० १६६७ में, वल्लभ (गो० गोकुलनाथ) से पुष्टिमार्ग में दीक्षा ली थी। ये सभी बातें अन्यत्र इसी ग्रंथ में विस्तार से वर्णित हैं। उनकी पुनरुक्ति अनावश्यक है।

साहित्य-लहरी को पहले संग्रह-ग्रंथ समझने का भ्रम लोगों में था। वे समझते थे कि सूर सागर से कूट सम्बन्धी पदों को छाँटकर साहित्य लहरी की रचना की गई है। बाबू राधाकृष्णदास ने वेंकटेश्वर प्रेस वाले सूरसागर में लिखा है—

"साहित्य-लहरी को सूरदास जी ने सूरसागर से दृष्टिकूट पदों को छाँटकर संग्रह किया है।"

साहित्य लहरी का एक भी पद प्रकाशित सूरसागरों में नहीं है। अतः इसे सूरसागर से संकलित नहीं कहा जा सकता। साथ ही इसे संग्रह-ग्रंथ भी नहीं कहा जा सकता, जो कवि द्वारा भिन्न-भिन्न अवसरों पर रचित विभिन्न विषयक कूटों का संचयन हो। यह सुनियोजित योजना के अनुसार रचित साहित्य-शास्त्र का ग्रंथ है। ग्रंथ में रचनाकाल दिया गया है, कवि का वंश-परिचय दिया गया है, ये तथ्य इसकी रचना की योजना-वद्धता के प्रमाण हैं।

साहित्य-लहरी काव्य-शास्त्र संबंधी ग्रंथ

साहित्य लहरी स्वतन्त्र ग्रंथ के रूप में लिखित रीति-ग्रंथ है। यह मुख्यतया अलंकार-ग्रंथ है, जिसमें अंशतः नायिका-भेद तथा अन्य काव्यांगों का भी उल्लेख है। यह लक्षण ग्रंथ नहीं है, केवल उदाहरण ग्रंथ है। अन्तिम चरणों में अलंकारों और अन्य काव्यांगों का किसी न किसी व्याज से उल्लेख मात्र कर दिया गया है। उदाहरण के लिए प्रथम दृष्टिकूट लें। इसका अन्तिम चरण है—

'सूरदास' सुजान सुकिया, अघट उपमा गाव ।

इस पद में स्वकीया नायिका का उदाहरण है, पर उसका लक्षण नहीं है। साथ ही इसमें 'अघट उपमा' है। अघट संकेत है 'पूर्ण' का। इसमें पूर्णोपमा अलंकार उदाहृत है। पूर्णोपमा का लक्षण नहीं दिया गया है। इसी प्रकार अन्य पदों में भी है।

अलंकार-कथन

साहित्य-लहरी में काव्यालंकारों का वर्णन अप्पय दीक्षित के कुवलयानंद के अनुसार एवं उन्हींके क्रम में है। आगे क्रमपूर्वक अलंकार एवं उनके आगे दी हुई संख्या में पद-निर्देश किया जा रहा है :

अलंकार	पद	अलंकार	पद
(१) उपमा—पूर्णोपमा	१	(२) अनन्वय	३
लुप्तोपमा	२		
(३) उपमेयोपमा	४	(४) प्रतीप	५
(५) रूपक	६	(६) परिणाम	७
(७) उल्लेख	८	(८) स्मृति	९
(९) भ्रांति	×	(१०) संदेह	×
छेकापह्नुति	१०		
(११) अपह्नुति, शुद्धापह्नुति	११	(१२) उत्प्रेक्षा	१३
(१३) अतिशयोक्ति	१४	(१४) तुल्ययोगिता	१६
अक्रमातिशयोक्ति	१५		
(१५) दीपक	१७	(१६) आवृत्ति दीपक	१८
(१७) प्रतिवस्तूपमा	×	(१८) दृष्टांत	१९
(१९) निदर्शना	[२०]	(२०) व्यतिरेक	२०
(२१) सहोक्ति	२२	(२२) विनोक्ति	२३
(२३) समासोक्ति	२४	(२४) परिकर	२५
(२५) परिकरांकुर	२६	(२६) श्लेष	×
(२७) अप्रस्तुत प्रशंसा	२७	(२८) प्रस्तुतांकुर	×
(२९) पर्यायोक्ति	२८	(३०) व्याजोक्ति	२९
(३१) व्याजनिंदा	×	(३२) आक्षेप	३०
(३३) विरोधाभास	३१	(३४) विभावना	३२
		प्रथम विभावना	३३
		द्वितीय विभावना	३४

(९७) निरुक्ति	९५	(९८) प्रतिषेध	९६
(९९) विधि	९७	(१००) हेतु—प्रथम हेतु	९८
		द्वितीय हेतु	९९
(१०१) प्रत्यक्ष प्रमाण	१००	(१०२) अनुमान प्रमाण	१०१
(१०३) उपमान प्रमाण	१०२	(१०४) शब्द प्रमाण	१०३
(१०५) अर्थापत्ति प्रमाण	१०४	(१०६) रसवत्	१०५
(१०७) प्रेयस्	१०६	(१०८) संकर	१०७

साहित्य लहरी में निम्नांकित नव अलंकारों के उदाहरण नहीं दिए गए हैं—

९. भ्रांति, १०. संदेह, १७. प्रतिवस्तूपमा, २६. श्लेष, २८. प्रस्तुतांकुर, ३१. व्याजनिंदा, ५२. परिवृत्त, ६२. विकस्वर, ७०. अवज्ञा ।

शब्दालंकार तो इसमें हैं ही नहीं ।

साहित्य लहरी में नायिका भेद

(१) स्वकीया	१	(२) मुग्धा—अज्ञातयौवना	२
		ज्ञात यौवना	३
(३) मध्या	४	(४) प्रौढ़ा	५
(५) धीरा	६	(६) ज्येष्ठा—कनिष्ठा	७
(७) परकीया—ऊढ़ा	८	(८) गुप्ता	१०
अनूढ़ा	९		
(९) विदग्धा—वचन विदग्धा	११	(१०) लक्षिता	१३
क्रिया विदग्धा	१२		
(११) मुदिता	१४	(१२) (अनुशयना)	१५
(१३) अन्यसंभोग दुःखिता	१६	(१४) गर्विता—प्रेमगर्विता	१७
		रूपगर्विता	१८
(१५) मानवती	१९, २०	(१६) प्रोषित पतिका—	२१, २२, २३, २४, २५, २६
(१७) खंडिता	२७	(१८) कलहांतरिता	२८
(१९) (विप्रलब्धा)	२९	(२०) उत्कंठिता	३०
(२१) वासकसज्जा	३१	(२२) स्वाधीनपतिका	३२
(२३) अभिसारिका	३५	(२४) गच्छत्पतिका	३६
(२५) आगतपतिका	३७		

साहित्य-लहरी में अन्य काव्यांग

१. पूर्वानुराग—पद ३८, ३९, ४०, ४१, ४२
२. सात्विक भाव—पद ४३
३. संचारी भाव—

निर्वेद ४४, (ग्लानि) ४५, शंका ४६, असूया ४७, मद ४८
श्रम ४९, आलस्य ५०, दीनता ५१, चिंता ५२, मोह ५३
स्मरण ५४, (धृति) ५५, व्रीड़ा ५६, (आवेग) ५७, चपलता ५८
(जड़ता) ५९, हर्ष ६०, (गर्व) ६१, (विषाद) ६३, अमर्ष ६४
औत्सुक्य ६५, अपस्मार ६६, स्वप्न ६७, उग्रता ६८, ६९, व्याधि ७०

इसमें विवोध, अवहित्था, मति, उन्माद, मरण, त्रास, वितर्क इन सात संचारियों का उल्लेख नहीं हुआ है।

४. अन्य रस

साहित्य-लहरी मुख्यतया शृंगार रस का ही ग्रंथ है। इसमें शृंगार के अतिरिक्त अन्य रसों के उदाहरण भी निम्नवत हैं—

१.	हास्य रस —	पद ७२	२.	करुण रस —	पद ७३
३.	रौद्र रस —	पद ७४	४.	वीर रस —	पद ७५
५.	भयानक रस —	पद ७६	६.	वीभत्स रस —	पद ७७
७.	अद्‌भुत रस	पद ७८			

५. अन्य काव्यांग

(क) रतिभाव—पुत्र विषयक रति ७९
देव विषयक रति ८०
गुरु विषयक रति ८१
(ख) भाव संधि ८२
(ग) भाव शबलता ८३
(घ) भावाभास ८४
(ङ) भावोदय ८५
(च) भावशांति ८६
(छ) वाचक वाच्य ९३
(ज) लक्षणा ९४

लक्षणों के न होने से साहित्य-लहरी रीति-ग्रंथ होते हुए भी रीति-ग्रंथ नहीं है। कूट ग्रंथ होने के कारण इसका पठन-पाठन भी बहुत नहीं हुआ है। बिना टीका के सहारे इसका आनंद लेना भी कठिन है। इसीलिए इस पर समय-समय पर टीका ग्रंथ भी प्रस्तुत एवं मुद्रित होते रहे हैं।

साहित्य-लहरी के मुद्रित संस्करण

१. 'सूरदास का दृष्टिकूट सटीक' के अन्तर्गत प्रथम भाग के रूप में — सरदार कवि कृत टीका—गोपीनाथ पाठक के लाइट प्रेस वाराणसी में १८६९ ई० में लीथो में मुद्रित। तदनन्तर १८९० ई० से नवलकिशोर प्रेस लखनऊ से प्रतिमुद्रण। पंचम संस्करण १९२९ ई०।

२. साहित्य-लहरी (सटीक)—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा संगृहीत। प्रकाशक खड्ग विलास प्रेस, बाँकीपुर पटना — प्रथम संस्करण १८९२ ई०। इसकी एक प्रति काशी नागरी प्रचारिणी सभा में है।

३. साहित्य-लहरी सटीक—महादेव प्रसाद कृत टीका। प्रकाशक पुस्तक भंडार, लहेरिया सराय। प्रथम संस्करण १९३५ ई०।

४. साहित्य-लहरी—प्रामाणिक पाठ, पाठांतर, शब्दार्थ, भावार्थ, प्रसंग, काव्यांग विवेचन, शोधपूर्ण विस्तृत भूमिका, परिशिष्ट, अनुक्रमणिका आदि के सहित। सम्पादक एवं टीकाकार—प्रभुदयाल मीतल। प्रकाशक—साहित्य संस्थान, मथुरा। प्रथम संस्करण १९६१ ई०। ग्रंथ की भूमिका अत्यन्त विद्वतापूर्ण है एवं श्रमपूर्वक लिखी गई है। साथ ही इसमें लेखक की शोधकर्ता के रूप में सात्विकता एवं ईमानदारी भी देखी जा सकती है।

५. साहित्य-लहरी सटीक। टीकाकार—डा० मनमोहन गौतम। प्रकाशक—रीगल बुकडिपो, दिल्ली, १९७० ई०।

६. (सूर ग्रंथावली चतुर्थ खंड के अन्तर्गत) साहित्य-लहरी— सटीक। संपादक एवं टीकाकार—आचार्य पं० सीताराम चतुर्वेदी। प्रकाशक—अखिल भारतीय विक्रम परिषद, काशी। प्रकाशनकाल—सूर पंचशती वर्ष सं० २०३५ वि० (१९७८ ई०)।

साहित्य-लहरी के हस्तलेख

साहित्य-लहरी का एक भी हस्तलेख सभा की खोज में कहीं नहीं मिला, न अन्यत्र ही इसकी कोई भनक मिली।

सरस्वती भंडार रामनगर दुर्ग में बंध संख्या १११, पुस्तक संख्या ६४८७ को सरदार कवि के हाथ की लिखी हुई कहा गया है, और ऐसी ४ प्रतियों के होने का उल्लेख हैं। डा० प्रभुदयाल मीतल ने इनकी पूरी छानबीन की है और उन्हें घोर निराशा ही हाथ लगी। उन्हें साहित्य-लहरी के कुल ८ खंडित हस्तलेख मिले, जिनमें बहुत कम पद हैं। चार प्रतियों में ८-८, (एक ही), दो में ५-५ (एक ही) और दो में इन्हीं छह प्रतियों में संकलित कुल ८+५ = १३ पद संकलित हैं। मीतल जी ने इन सभी तेरह पदों की अनुक्रमणिका अपनी भूमिका में पृष्ठ ४ पर दे दी है।

२. सूरसागर:स्कंधात्मक संस्करण

सूर नवीन ने सूरसागर-सारावली में स्व-रचित सूरसागर का सार प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। इस सूर का सूरसागर योजनाबद्ध कृति है, महाकवि सूर के सूरसागर के समान यह फुटकर पदों के रूप में विरचित नहीं है। इस सूरसागर का रूप स्कंधात्मक है। यह श्रीमद्भागवत को आधार मानकर विरचित है—

१. व्यास कहे सुकदेव सों, द्वादस स्कंध बनाइ।
सूरदास सोई कहे, पद भाषा करि गाइ॥ १/२२५

२. सुकदेव कह्यो जाहि परकार
सूर कह्यो ताही अनुसार—३।३८७

३. तिन हित जो जो किए अवतार
कही सूर भागवत अनुसार ३।३९०

सूरसागर के द्वादश स्कंध भागवत के द्वादश स्कंधों से आकार में विषम है। उनमें कोई भी समानुपात नहीं है। इस सूरसागर ने भागवत का बहुत कम आधार ग्रहण किया है। यह उसका अनुवाद तो है ही नहीं, इसमें भागवत की संपूर्ण कथा कही ही नहीं गई है। स्कंध १-९, ११-१२ का आकार एवं पद-परिमाण बहुत कम है। इन स्कंधों में कथाएँ चौपाई छंदों में है और नीरस तथा शिथिल हैं। इनकी नीरसता एवं शिथिलता की चर्चा सूर के प्रायः हर आलोचक ने की है और इन्हें महाकवि सूर की रचना नहीं माना है, इन्हें क्षेपक माना है। पर ये क्षेपक नहीं हैं, सूर नवीन की शिथिल कथा-रचनाएं हैं। ये कथा-सूत्रों को मिलानेवाले बाद में जोड़े हुए अंश भी नहीं हैं। हाँ शिथिल और नीरस तो ए हैं ही। कवि की रुचि कथा-

कथन में नहीं है, वह तो भावपूर्ण स्थलों पर ही रमी है, विरमी है। ऐसे स्थलों पर सूर उतनी ही ऊँचाई पर उड़ने में क्षम हैं, जितनी ऊँचाई तक महाकवि सूर उड़ते हैं।

मेरा अनुमान है कि सूर नवीन का स्कंधात्मक सूरसागर सं० १६७५ के आसपास तक प्रस्तुत हो गया रहा होगा और महाकवि सूरदास का कृष्ण लीलात्मक संस्करण इसके बहुत पहले ही रूप ग्रहण कर चुका रहा होगा। सं० १७४० के आसपास किसी भले मानस ने इन दोनों संस्करणों को अज्ञानवश मिला दिया और दोनों के पदों को कथा-क्रम से यथास्थान स्थापित कर दिया। इस प्रकार जो मिश्रित स्कंधात्मक सूरसागर बना, उसने महाकवि सूर के कृष्ण-लीलात्मक एवं सूर नवीन के स्कंधात्मक संस्करणों को ऐसा विस्थापित कर दिया कि उनके मूल रूप अब दिखाई तक नहीं पड़ते और अब इस मिश्रित स्कंधात्मक सूरसागर में से दोनों सूरसागरों को अलग कर पाना अत्यन्त जटिल समस्या है।

सूरसागर के हस्तलेख

डा० प्रभुदयाल जी मीतल ने ४३ स्कंधात्मक हस्तलेखों की जो सूची दी है, उनमें से निम्नलिखित नौ हस्तलेख विक्रम की अठारहवीं शती के हैं।

१. सं० १७४०, नटवर लाल चतुर्वेदी मथुरा की प्रति।
२. सं० १७४५, काशी नगरी प्रचारिणी सभा की प्रति।
३. सं० १७५२, केशवदास शाह काशी की प्रति।
४. सं० १७६६, पेरिस लाइब्रेरी की प्रति, फारसी लिपि में।
५. सं० १७७१, पेरिस लाइब्रेरी की प्रति, फारसी लिपि में।
६. सं० १७८०, इंडिया आफिस लंदन की प्रति।
७. सं० १७८३, सिहुड़ो की प्रति।
८. सं० १७९२, काशी नागरी प्रचारिणी सभा की प्रति।
९. सं० १७९८, काशी नागरी प्रचारिणी सभा की प्रति।

सभा की खोज में सूरसागर के संपूर्ण असंपूर्ण अनेक हस्तलेख प्राप्त हुए हैं। इनमें से कुछ को सूरसागर कहा गया है, कुछ को भागवत। कुछ में कुछ ही स्कंध हैं।

(क) सूरसागर नाम से विवृत

१. खोज रि० १९०१.२३, लिपिकाल सं० १८६६।
२. खोज रि० १९०६।२४४ सी, लिपिकाल सं० १७९२।
३. खोज रि० १९१२।१८५ सी।

यह हस्तलेख तीन जिल्दों में है। पहली जिल्द में ३५२ पन्ने हैं। इसमें २५६ पन्ने तक प्रथम से नवम स्कंध तक की कथा है। नवम का प्रसंग-प्राप्त प्रकरण पूरा नहीं हुआ कि रामायण प्रारंभ हो गया। ७७ पन्नों में सूर रामायण है। इसके बाद फिर ५ पन्नों में शेष नवम स्कंध है। फिर १४ पन्नों में स्कंध ११, १२ हैं। द्वादश स्कंध अपूर्ण है। दूसरी जिल्द में ३२७ पन्ने हैं। इसमें कृष्ण जन्म से रासलीला तक की कथा है। तीसरी जिल्द में २९८ पन्ने हैं। इसमें रासलीला के आगे की कथा है। दशम स्कंध उत्तरार्द्ध के कुरुक्षेत्र-मिलन एवं कृष्ण अर्जुन का ब्राह्मण के मरे हुए पुत्र के ले आने तक की कथा है।

हस्तलेखों में प्रतिलिपिकाल नहीं दिया गया है। प्रति पंडित लालमनि वैद्य, पुवायाँ जिला शाहजहाँपुर की है, प्रति को लालमनि जी के दादा ने सं० १९०० वि० के आसपास लिपिबद्ध किया था।

हस्तलेख अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। रत्नाकर जी ने जनवरी १९२९ में सूरसागर का संपादन प्रारंभ किया था। इस प्रति के लिए रत्नाकर जी के आदमी बराबर पुवायाँ की दौड़ लगाया करते थे। ग्रंथ-स्वामी एक साथ एक ही प्रति देते थे, वह भी अधिक से अधिक दो माह के लिए और हजारों रुपयों की जमानत लेकर। पं० बनारसीदास चतुर्वेदी ने विशालभारत में 'सूर सागर का संपादन' नाम से एक संपादकीय टिप्पणी लिखी थी। इसमें उन्होंने इस घटना का उल्लेख किया है।

यह सूरसागर का सबसे बड़ा प्राप्त हस्तलेख है। इसमें कुल ९७६ पन्ने हैं।

४. खोज रि० सं० १९१७।१८६ सी, डी। प्रतिलिपि काल सं० १८७६ हस्तलेख दो खंडों में है। प्रथम खंड में १९४ पन्ने हैं। इसमें प्रथम नव स्कंध हैं। इसकी पुष्पिका में इसे भागवत महापुराण कहा गया है। इसमें कुल ४६२ पद हैं।

द्वितीय जिल्द में स्कंध १०, ११, १२ हैं। कुल पन्ने ३६२ हैं। कुल पद संख्या २३४० है। ये मातंगध्वज प्रसाद सिंह, बिसवाँ (अलीगढ़) की संपत्ति हैं।

५. खोज रि० १९२३।४१६ जी। प्रो० बदरीनाथ भट्ट लखनऊ विश्वविद्यालय की प्रति। १६८ पन्ने। अपूर्ण।

६. खोज रि० सं० १९२३।४१६ आई। राज पुस्तकालय भिनगर, बहराइच ३६८ पन्ने। कुल-पद संख्या २२२४।

७. खोज रि० सं० १९२६।३१६ ए। पत्र ३१८। लिपिकाल सं० १८३१। अद्वैत चरण गोस्वामी, घेरा श्रीराधारमण, वृंदावन की प्रति। कुल पद १८६७।

८. खोज रि० सं० १६४१।२६४ घ। सभा की प्रति। अंत में एक दो पत्र न होने से लिपिकाल अज्ञात। सभा द्वारा सूरसागर के संपादन में प्रयुक्त १६ वी प्रति। कुल पन्ने ३६१।

६. खोज रि० सं० १६४१।२६४ ङ०। सभा की प्रति। लिपिकाल सं० १६१७ वि०। कुल पन्ने ६८२। सभा द्वारा सूरसागर के संपादन में प्रयुक्त तीसरा हस्तलेख। इसमें भी पुष्पिका में इसे श्रीमद्भागवत महापुराण कहा गया है।

१०. खोज रि० १६४१। २६४ च। पत्र ५२०। लिपिकाल सं० १८८० वि०। प्राप्तिस्थान—ना० प्र० सभा काशी। संपादन में प्रयुक्त दूसरी पोथी। इसकी भी पुष्पिका में इसे भागवत महापुराण कहा गया है।

११. खोज रि० सं० २००४। ४२० ग। पत्र २७०। लिपिकाल सं०१८८५। प्रति पं० गयादीन पांडेय, ग्राम आसापुर, डाक० अमरगढ़, जिला प्रतापगढ़ की है। कुल १३६७ पद हैं।

(ख) भागवत नाम से विवत

१. खोज रि० १६१२। १८५ ए। २०२ पन्ने। लिपिकाल १८६७ वि०। यह बाबू कृष्ण जीवन लाल वकील महावन (मथुरा) की प्रति है। इसमें दशम स्कंध नहीं है, शेष सभी स्कंध हैं। कुल पद १७४५।

२ खोज रि० १६१७। १८६ ए। ग्रंथ आदि में खंडित है और पत्र २५६ से प्रारंभ होता है। इसमें स्कंध १०, ११, १२ ही है। दशम स्कंध भी आदि से संकलित है। अंतिम पद संख्या १७४५ है। ग्रंथांत में इसे भागवत महापुराण कहा गया है।

३. खोज रि० १६२३। ४१६ एच। पत्र ३३४। ग्रंथ अन्त में खंडित। यह प्रो० बदरीनाथ भट्ट लखनऊ विश्व विद्यालय की प्रति है।

४. खोज रि० १८३२। ३१२ एच। पत्र २०६। लिपिकाल सं० १८४४। प्रति पं० जमनादास कीर्तनिया, नया मन्दिर, गोकुल की है। पुष्पिका में इसे भागवत महापुराण कहा गया है।

(ग) कुछ ही स्कंध

१. खोज रि० १६२६। ३१६ जी। स्कंध १०, ११, १२। पत्र ३३६। लिपिकाल सं० १६१७ वि०। पुष्पिका में 'इति भागवते' कहा गया है।

२. खोज रि० १९२६। ३१६ ई। केवल दशम स्कंध पूर्वार्ध, ३० अध्याय, पत्र १६३। लिपिकाल १६१७।

३. खोज रि० १९२६। ३१६ एफ। दशम स्कंध अध्याय ३१-९०। पत्र १७२। लिपिकाल १६१७।

ग्रन्थ २, ३ मिलकर दशम स्कंध पूर्ण कर देते हैं। दोनों का लिपिकाल और प्राप्ति स्थान एक ही है। ग्रंथ स्वामी है—ठाकुर ज्ञान सिंह, ग्राम-पड़ौली, डाकघर-कादिरगंज, जिला एटा।

४. खोज रि० १९२६। ३१६ जी—एकादश स्कंध। लिपिकाल १९१७, पत्र ५।

५. खोज रि० १९२६। ३१९ एच—द्वादश स्कंध। पत्र ३। लिपिकाल सं० १९१७।

६. खोज रि० १९३२। २१२ सी। भागवत महापुराण—प्रथम नवस्कंध। पत्र १२०, लिपिकाल १८७६। ना० प्र० सभा की गोकुलपुरा, आगरा की प्रति।

७. खोज रि० १९४१। २९४ छ। सूरसागर नवम स्कंध—राम चरित। पत्र ६४। लिपिकाल सं० १८८१ वि०। आदि अन्त से खंडित।

८. खोज रि० १९४१। २९४ ज। १०, ११, १२ स्कंध। पत्र २५२, लिपिकाल सं० १६०२ वि० प्रप्तिस्थान—ना० प्र० सभा काशी। ग्रंथ के प्रारम्भ के ३३७ पन्ने लुप्त। सभा के सूरसागर के सहायक ग्रंथों में इसकी संख्या १२ है। पुष्पिका में इसे भागवत महापुराण कहा गया है।

९. खोज रि० १९४१। २९४ ञ। दशम स्कंध। पत्र ६११। लिपिकाल सं० १९४३। कुल पद १७३८। अध्याय के अध्याय छोड़ दिए गए हैं।

१०. खोज रि० १९४१। २९४ ट। दशम स्कंध। पत्र ६३६। लिपिकाल सं० १८५४। सभा की प्रति। १५वीं सहायक पोथी। ग्रंथारंभ में इसे 'भागवत दसम स्कंध' कहा गया है।

११. खोज रि० १९४१। २९४ ठ। दशम स्कंध पूर्वार्ध अध्याय १-४९। पत्र ३८४। लिपिकाल सं० १९२६ वि०। सभा की पोथी। १० वीं सहायक पोथी।

१२. खोज रि० १९४१ । २९४ ड । दशम स्कंध पूर्वार्ध । पत्र २४२ । सभा की प्रति । तेरहवां सहायक हस्तलेख । आदि मध्य अन्त के कुछ पन्ने लुप्त ।

१३. खोज रि० १९४१ । २९४ ढ । स्कंध १-९ । पत्र २६३ । लिपिकाल सं० १९०९ वि० । सभा की प्रति । आठवां सहायक हस्तलेख ।

१४. खोज रि० सं० २००७ । २०२ । फारसी लिपि में भागवत पुराण स्कंध १०, ११, १२ । पत्र ३३३ । लिपिकाल सं० १९०० वि० । प्राप्ति स्थान — अमीरुद्दौला सार्वजनिक पुस्तकालय, लखनऊ ।

३. मुद्रित स्कंधात्मक संस्करण

बम्बइया संस्करण : सं० १९५३

सूरसागर का पहला संस्करण कलकत्ता से १८९६ वि० में छपा था । यह लीलात्मक संस्करण था । सूरसागर का स्कंधात्मक संस्करण सं० १९५३ वि० में पहली बार वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई से छपा । इसका संपादन भारतेंदु हरिश्चन्द्र के फुफेरे भाई, उस युग के प्रसिद्ध साहित्यकार, काशी-वासी बाबू राधाकृष्ण दास जी ने किया था । उन्हें स्कंधात्मक सूरसागर का कोई एक हस्तलेख नहीं प्राप्त हुआ था । उन्होंने निम्नांकित तीन विभिन्न हस्तलेखों के आधार पर यह संस्करण प्रस्तुत किया था ।

१. स्कंध १ से ९ तक—बाबू रामदीन सिंह, खड्ग विलास प्रेस बांकीपुर पटना का हस्तलेख ।

२. दशम स्कंध पूर्वार्ध—भारतेंदु हरिश्चन्द्र का हस्तलेख ।

३. दशम स्कंध उत्तरार्ध, एकादश एवं द्वादश स्कंध—काशिराज के पुस्तकालय, रामनगर दुर्ग का हस्तलेख ।

इस संस्करण में पदों की अंकित संख्या ४०३२ होती है, पर अंक देने में यत्र तत्र भूलें हुई हैं, साथ ही कुछ पद दुहरा भी उठे हैं । श्री उमाशंकर जी शुक्ल ने गणना करके इनकी शुद्ध संख्या ४३६५ निर्धारित की है ।

सूर सागर के इस बम्बइया संस्करण ने लखनऊ संस्करण को दबा दिया और वह १९५९ वि० के बाद पुनः नहीं प्रकाशित हुआ । इसी प्रकार जब १९५० ई० में नागरी प्रचारिणी सभा काशी का सूरसागर मुद्रित हो गया, तब इसका बम्बइया संस्करण भी निष्प्रभावी हो गया और अब सुलभ नहीं रह गया है ।

सभा संस्करण : सं० २००५-२००७

रत्नाकर जी ने 'बिहारी रत्नाकर' का संपादन कर लेने के उपरान्त उससे भी गुरुतर एवं महत्वपूर्ण कार्य—सूरसागर का संपादन—हाथ में लिया। उन्होंने इस कार्य के लिए सूरसागर के १८ हस्तलेख एवं दो मुद्रित प्रतियाँ—नवल किशोर प्रेस लखनऊ एवं वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई—एकत्र की थीं। १८ हस्तलेखों में से १३ में लिपिकाल दिया हुआ है। सबसे पुराना हस्तलेख सं० १७५३ का एवं सबसे नया हस्तलेख सं० १९६४ का था। रत्नाकर जी ने इस कार्य में बड़ा धन, श्रम एवं समय लगाया था। पहले यह खंडशः प्रकाशित होना शुरू हुआ था। १४३२ पद सात खंडों में प्रकाशित हो गए थे। पर एक तो ग्राहकाभाव के कारण, दूसरे रत्नाकर जी के दिवंगत हो जाने के कारण यह खंड खंड-योजना समाप्त हो गई और सभा ने उक्त सारी सामग्री का संपादन श्री नन्द दुलारे वाजपेयी से कराकर समस्त सूरसागर को दो बड़ी जिल्दों में क्रमशः १९४८ ई०, १९५० ई० में प्रकाशित कर दिया। कहना न होगा कि सभा का सूरसागर स्कंधात्मक है, अभी तक प्रकाशित सूर सागर के समस्त संस्करणों में श्रेष्ठतम है और इसने अपनी श्रेष्ठता के कारण सूरसागर के बम्बइया संस्करण की उपयोगिता, उपयोग एवं प्रकाशन को समाप्त कर दिया है। सूर के समस्त अध्येता अब इसी का उपयोग करते हैं। यही सुलभ भी है।

सभा वाले सूरसागर में ४९३६ तथा परिशिष्ट में २०३ एवं ६७ पद हैं। सब मिलाकर कुल ५२०६ पद हैं।

सूर ग्रंथावली

सूर ग्रंथावली वाले सूरसागर में छह हजार के लगभग पद हैं। यह सूर सागर कहने को तो उसका लीलात्मक स्वरूप प्रस्तुत करने के लिए प्रस्तुत किया गया था, पर यह भी स्कंधात्मक संस्करण ही बना रह गया।

डा० माताप्रसाद गुप्त का खंडित सस्करण : सं० २०३५

क० मुं० हिन्दी विद्यापीठ आगरा के निदेशक डा० माता प्रसाद गुप्त ने केन्द्रीय सरकार से अनुदान प्राप्त करके सूरसागर के प्रामाणिक संस्करण के संपादन-प्रकाशन की योजना बनाई थी। उन्होंने इस कार्य के लिए १२० हस्तलेखों का संग्रह किया था। कई वर्षों के श्रम के अनन्तर उन्होंने इसकी भूमिका भी लिख ली थी। उनके निधनोपरांत उक्त हिन्दी विद्यापीठ के जो निर्देशक हुए, डा० गुप्त का यह काम उन्हें नहीं पसंद आया। अतः उनके द्वारा संपादित सूरसागर का प्रथम खंड ही प्रकाशित हो सका और डा० गुप्त का सब किया धरा यों ही धरा रह गया।

डा० गुप्त का यह असंपूर्ण सूरसागर सं० २०३५ वि० (१९७८ ई०) में प्रकाशित हुआ। यह सभा संस्करण के अनुसार है। इसमें सभा संस्करण के प्रथम नौ स्कंध आ गए हैं। डा० गुप्त ने ३१ पद निकाल दिए हैं और उनके स्थान पर ५१ नवीन पद अपनी ओर से मिला दिए हैं। इस खंड की कुल पद-संख्या ६२६ है।

डा० हरदेव बाहरी का अपूर्ण पर सटीक संस्करण : सं० २०३१ वि०

डा० हरदेव बाहरी और डा० राजेन्द्र कुमार वर्मा ने मिलकर सूरसागर की टीका लिखी है। इसका पहला खंड १९७४ ई० में छपा था। इसका दूसरा खंड भी छप गया है। प्रकाशक है—लोक भारती इलाहाबाद। यह संपादन नहीं है, केवल टीका है, जिसमें सभा के सूरसागर का पाठ एवं क्रम स्वीकृत है।

३. सूर सारावली

सूर सारावली के मुद्रित संस्करण

ग्रंथ का मूल नाम 'सूर सागर सारावली' है। इसे उसी तरह संक्षेप में 'सूर सारावली' कहने की परंपरा बन गई है, जिस प्रकार केशव ने अपने ग्रंथ का नाम तो रखा—'राम-चंद्र चंद्रिका', पर वह 'रामचंद्रिका' नाम से ही प्रसिद्ध हुआ।

सूर सारावली का प्रथम प्रकाशन सं० १८९८ में कार्तिक सुदी ८ रविवार को कृष्णानंद व्यासदेव के राग सागरोद्भव राग कल्पद्रुम के अंतर्गत कलकत्ता से हुआ। तदनंतर चैत्र सं० १८९९ वि० में यह राग कल्पद्रुम के चतुर्थ खंड में सूरसागर के प्रारम्भ में जोड़ दिया गया। अब यह दुर्लभ है।

राग कल्पद्रुम के चतुर्थ खंड को ही नवलकिशोर प्रेस लखनऊ ने सूरसागर नाम से पहली बार सं० १९२० वि० में प्रकाशित किया। इसमें भी सूर सारावली संलग्न है। सं० १९२० से १९५९ वि० तक लखनऊ वाले सूरसागर के आठ संस्करण हुए। अब ये दुर्लभ हैं।

सं० १९५३ में बाबू राधाकृष्णदास द्वारा संपादित सूरसागर का प्रकाशन खेमराज श्रीकृष्णदास के वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई से हुआ। इसमें भी ग्रंथारंभ में सूर सारावली सन्निविष्ट है। यह भी अब दुर्लभ है। वहाँ से उसी समय सूरसारावली का स्वतंत्र प्रकाशन भी हुआ था, जो अब अप्राप्त है।

सं० २००५ में गुजराती कवि दयाराम भाई स्मारक समिति डभोई ने उनकी जो ग्रंथावली प्रकाशित की, उसमें सं० १८८० श्रावण द्वादशी रविवार को गुजराती

में अनूदित यह सूर सारावली भी है, जो लखनऊ एवं बंबई संस्करणों के पूर्ण मेल में है। गुजराती अनुवाद केवल क्रियाओं का हुआ है, शेष अंश प्रायः ज्यों के त्यों हैं। यह गुजराती रूप भी हिन्दी वालों के लिए अब दुर्लभ है।

इधर सूर सारावली के चार संस्करण प्रस्तुत हुए हैं, जो सुलभ हैं। पहला संस्करण प्रभुदयाल मीतल कृत है। इसका आधार वही पूर्ववर्ती ३ हिन्दी संस्करण एवं एक गुजराती अनुवाद है। यह संस्करण अच्छी विद्वतापूर्ण भूमिका के साथ, सं० २०१४ में अग्रवाल प्रेस मथुरा से प्रकाशित हुआ है। इसे सूर सारावली का स्वतंत्र रूप से प्रथम प्रकाशन कहा जा सकता है।

'सूर सारावली' का दूसरा संस्करण डॉ० प्रेम नारायण टंडन द्वारा संपादित प्रकाशित है। सं० २०१८। प्रकाशक—हिन्दी साहित्य भंडार, अमीनाबाद, लखनऊ।

'सूर सारावली' का तीसरा संस्करण 'संजीवनी व्याख्या सहित' है। इसके संपादक एवं टीकाकार हैं डॉ० मनमोहन गौतम। प्रकाशक—रीगल बुकडिपो, नई सड़क, दिल्ली ६। प्रकाशनकाल १६७० ई०। यह सूर सारावली की प्रथम टीका है।

सूर सारावली का चतुर्थ संस्करण आचार्य पं० सीताराम जी चतुर्वेदी द्वारा संपादित 'सूर ग्रंथावली' चतुर्थ खंड के अंतर्गत सं० २०३५ वि० में हुआ है। इसकी टीका नहीं की गई है।

सूर सारावली के हस्तलेख

सूर सारावली के कोई पुराने हस्तलेख नहीं मिलते। अगरचंद नाहटा ने प्रभुदयाल मीतल को उदयपुर के सरस्वती भवन पुस्तकालय में सं० १७७५ के सूर सारावली के एक हस्तलेख होने की सूचना दी थी। मीतल जी ने उक्त सरस्वती भवन के संचालक डॉ० मोतीलाल मेनारिया के सहयोग से उक्त 'सूर सारावली' की जांच की, तो पता चला कि यह सूरदास के पदों का एक प्राचीन संकलन मात्र है। इसका नाम अवश्य सूर सारावली है, पर यह सूर सारावली है नहीं। इसमें ३०० से ऊपर कुछ पद संकलित हैं।

काशी नागरी प्रचारिणी सभा में भी सूरसारावली का एक हस्तलेख है। यह खंडित है। इसमें २०५ पदों तक की ही प्रतिलिपि है। यह प्रतिलिपि रत्नाकर जी ने कराई थी। संभवतः इसका आधार रागकल्पद्रुम वाले सूरसागर की सूर-सारावली है।

इस प्रकार सूर सारावली का कोई पुराना हस्तलेख आज सुलभ नहीं है।

सूर सारावली का कथ्य

सूर सारावली ११०७ पदों की लम्बी कविता है। यह सार छंदों में लिखी गई है। सार छंद में १६, १२ के विराम से प्रत्येक चरण में २८ मात्राएँ होती हैं। इसमें यत्र-तत्र १६, ११ की यति से २७ मात्राओं वाला सरसी छंद भी विमिश्रित है।

ग्रंथारंभ में 'बंदौ श्री हरि पद सुखदाई' पद है, जो 'चरण कमल बंदौं हरिराइ' का ही प्रतिरूप है।

ग्रंथ एक वृहत होली गान के रूप में है। इसका प्रारम्भ निम्नलिखित पद से होता है—

'खेलत यहि विधि हरि होरी हो, वेद विदित यह बात'

यह टेक है।

कालिंदी कूल स्थित वृन्दावन में पूर्ण ब्रह्म कृष्ण ने अपनी प्रिया के साथ कुंज विहार किया और उनकी इच्छा सृष्टि-विस्तार की हुई। तब २८ तत्व और ३ गुण प्रगट हुए। फिर नाभि कमल से ब्रह्मा उत्पन्न हुए। ब्रह्मा ने होली खेल के रूप में समस्त सृष्टि की रचना की।

तदनंतर भागवत में वर्णित विष्णु के चौबीस अवतारों का वर्णन है। इन चौबीस अवतारों में कवि ने राम कथा (छंद १४०-३१६) और कृष्ण-कथा (३२१-६१७ छंद) का वर्णन अत्यन्त विस्तार से किया है।

डॉ० प्रभुदयाल मीतल इस ग्रंथ को दो खंडों में विभाजित करते हैं—छंद १ से ८६७ तक चौबीस अवतारों का वर्णन, प्रथम खंड। छंद ८६८ से अंत के ११०७ छंद तक, कुल २४० छंद—दूसरा खंड। इसमें कृष्ण की निकुंज लीला वर्णित है।

डॉ० सत्येन्द्र सूरसारावली को एक रचना न मानकर तीन रचनाएँ मानते हैं—

१. सूर सारावली—छंद १—८६० = ८६० छंद
२. निकुंज लीला—छंद ८६१—१०५० = [illegible] छंद
३. सरस संमतसर लीला—छंद १०५१—११०७ = ५७ छंद।

मेरी समझ से ग्रंथ तो एक ही है। ये दो या तीन उसके प्रकरण मात्र हैं।

निकुंज-लीला के अन्तर्गत पद ६३७-९६६ तक के ३० छंदों में दृष्टिकूट है, जिसमें राधा का नख-शिख वर्णित है।

ग्रंथ होली खेल के रूप में प्रारम्भ हुआ है और होली-दाह के रूप में समाप्त हुआ है। होली रूपक वाला एक अन्य विशद पद भी प्राप्त है। इसे आचार्य पं०, सीताराम जी चतुर्वेदी ने कलकत्ता के श्री हनुमान प्रसाद के हस्तलिखित सूरसागर से संकलित किया है। यह पद दोहा छंदों में है और इसमें कुल ४८ दोहे हैं।

विष्णु को नाभि से कमल उत्पन्न हुआ, उससे ब्रह्मा। विष्णु ने ब्रह्मा को बुलाया—

ब्रह्मा सिर बंदयो तुरत, प्रभु बोले मुसुकाइ
फागुन मास, मनोज मन, सब ही तो घर जाय ॥१४॥

ब्रह्मा ने होली रूप में सृष्टि रचना की। होली लीला लगातार १५ दिन तक चलती रही —

हरि समाज सुत क्रीड़तैं, चौदह तिथि गै बीति
पुनि पून्यो निसि आ गई, सभै सराहत रीति ॥३६॥
बरस बरस पिय आवही, हरि होरी इहि नाम
गावत सुनत सुनावतै, जन पावहिं विस्राम ॥४७॥
उत प्रतिपालन प्रलय रस, हरि खेलहिं इहि फाग
'सूर' सु मन रुचि उपजहीं, हरि-चरनन अनुराग ॥४८॥

—सूर ग्रंथावली, पंचम खंड, पद ५९०९।

सूर सारावली के अन्त में यह फल-श्रुति है—

सरस समतसर लीला गावै, जुगल चरन चित लावै
गरभ-वास बंदीखाने मैं, 'सूर' बहुरि नहिं आवै ॥ ११०७

'सूरसारावली के प्रकाशनकाल १८९८ वि० से ही इसे महाकवि सूर की रचना समझा गया। इसीलिए इसका सन्निवेशन रागकल्पद्रुम चतुर्थ खंड एवं नवल-किशोर प्रेस लखनऊ तथा वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई के सूरसागरों में किया गया। १०५ वर्षों बाद १९४६ ई० में पहली बार डॉ० व्रजेश्वर वर्मा ने अपने शोध प्रबन्ध 'सूरदास' में इसे अष्टछापी महाकवि सूर की रचना मानने से इनकार किया और अपने पक्ष में २८ प्रमाण दिए। १९६१ ई० में डॉ० प्रेम नारायण टंडन ने इसे महाकवि सूर की

रचना मानने से अस्वीकार करते हुए एक पोथी ही लिख दी—'सूर सारावली : एक अप्रामाणिक रचना ।' तब से यह विषय अधर में ही लटका रहा है। ये विद्वान इसे महाकवि सूर की रचना तो नहीं मानते, पर यह किसकी रचना है इसकी घोषणा नहीं कर पाते। मैं इन विद्वानों से सहमत हूँ कि सूरसारावली अष्टछापी सूरदास की रचना नहीं है। साथ ही मैं स्पष्ट रूप से उद्घोष करता हूँ कि यह रचना चंद्रबरदाई के वंशज ब्रह्मभट्ट सूरजचंद या सूर नवीन की है।

'सूर सारावली' सूर नवीन विरचित द्वादश स्कंधात्मक सूरसागर की सारावली है। यह सूचीपत्र नही है, कथा सार है। स्वतन्त्र ग्रंथ है।

सूर सारावली की रचना द्वादश स्कंधात्मक सूरसागर की रचना की समाप्ति के अनन्तर किसी समय हुई। द्वादश स्कंधात्मक सूरसागर योजनाबद्ध ग्रंथ है, संग्रह मात्र नहीं है। सूर सारावली की रचना सं० १६८० के शीघ्र ही बाद किसी समय हुई, ऐसा अनुमान किया जा सकता है।

सूर सारावली काव्य की दृष्टि से भी एक सरस रचना है, यह एक ललित प्रबन्ध है, इससे इनकार नहीं किया जा सकता।

सूर सारावली में तीन पद-बंद आत्म-कथनात्मक भी हैं। इन पर सूर नवीन के जीवन-चरित में विचार किया जा चुका है। अतः पुनरुक्ति अनावश्यक है।

ख. सूर सागर में सन्निविष्ट ४ लघु ग्रंथ।

४. गोवर्द्धन लीला

गोवर्धन लीला की दो प्रतियाँ सभा की खोज में प्राप्त हुई हैं। एक का विवरण खोज रिपोर्ट १९१७/१८६ ई में है। इसके आदि अन्त यों है।

आदि—

श्रीकृष्णायनमः

अथ सूरदास जी कृत गोवर्द्धन लीला बड़ी लिख्यते

अंत → इति श्री सूरदास कृत गोवर्द्धन लीला संपूर्ण।

श्री कृष्णार्पणस्तु। श्री कृष्ण जी।

यह प्रति श्री देवकीनंदनाचार्य पुस्तकालय, कामवन, भरतपुर की है। इसमें ४$\frac{३}{४}$×४ इंच आकार के ४५ पन्ने हैं। श्लोक परिमाण ८०० है।

दूसरी प्रति का विवरण खोज रिपोर्ट सं० २००१ में ४६१ ट संख्या पर है। इसका प्राप्ति स्थान है—सरस्वती भंडार, विद्या विभाग, कांकरोली हिन्दी बंडल ६, पुस्तक संख्या १। इसमें १६ पन्ने हैं। आकार ९ × ५ इंच है।

गोवर्द्धन लीला के सम्बन्ध में डा० दीनदयालु गुप्त का यह मंतव्य है—

"नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट में इस ग्रन्थ का उल्लेख है। तथा अन्य विद्वानों ने भी इसे सूर का एक ग्रंथ लिखा है। कांकरोली विद्या विभाग पुस्तकालय में लेखक ने सूर कृत दो गोवर्धन लीलाएँ देखी हैं। एक नं० ६३७ की प्रति है, जो दोहा रोला मिश्रित छंद में लिखी गई है और दूसरी चौपाई छन्द में। सूरसागर (वेंकटेश्वर प्रेस) पृष्ठ २१३ पर दोहा-रोला वाली एक गोवर्धन लीला वर्णित है और पृ० २२२ पर चौपाई छन्द वाली दूसरी गोवर्धन लीला है। खोज रिपोर्ट में सूर कृत गोवर्धन लीला के जो उद्धरण दिए गए हैं, वे सूरसागर (वेंकटेश्वर प्रेस) पृष्ठ २२२ पर दी हुई गोवर्धन लीला से मिलते हैं, इस प्रकार यह सूर का स्वतंत्र ग्रन्थ नहीं है, वरन सूरसागर का ही एक अंश है।"

—अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय, पृष्ठ २८

चौपाई छन्दों में लिखित गोवर्धन लीला ही खोज में प्राप्त गोवर्धन लीला है, डा० गुप्त का यह कथन यथार्थ है। यह रचना सभा के सूर सागर में दशम स्कंध में पद ८८४-९५१ पर संकलित है। संकलन करने वालों ने गलती से इसे सूर-सागर में सन्निविष्ट कर लिया है। यह न तो महाकवि सूर की रचना है, न सूर-सागर का अंश ही है।

डा० प्रभुदयाल मीतल ने नाग लीला, गोवर्धन सीला, चीर हरण लीला और दानलीला के सम्बन्ध में अत्यन्त सामान्य बात कहकर इन्हें सूरसागर से संकलन मात्र कहा है। इनके रिपोर्ट वर्णित रूप पर इन्होंते कोई ध्यान नहीं दिया है। डा० दीनदयाल गुप्त ने इस पर विशेष ध्यान दिया है। गोवर्धन लीला सूर-सागर में प्राप्त इस विषय के समस्त पदों का संग्रह नहीं है।

वस्तुतः यह गोवर्धन धारण सम्बन्धी एक बड़ी रचना है, सभा के सूरसागर में यह पद दशम स्कंध पद ८८४-९५१ या पूर्ण संख्या १५०२-१५६९ पर संकलित है। पर पद संख्या ९२२ / १५४० और ९३८ / १५५७ वस्तुतः एक पद न होकर दो-दो पद हैं। इस प्रकार कुल ७० पद हैं। यह समस्त रचना चौपाई छन्द में है और कथा में पूर्ण प्रबन्धत्व या सुगठनत्व है। पदों में चौपाइयों की समान संख्या नहीं है। अन्तिम अर्द्धालियों में कवि छाप है। यह छाप यों है।

सूरदास—८८४, ८५, ८९, ९१, ९२, ९३, ९४, ९०१, २, ४, ७, ९, ११, १२, २१, २३, २४, २५, २६, २८, ३६, ९३९अ, ४४, ४५, ५०, ५१, = २६

सूर—८८६, ८७, ८८, ९०, ९६, ९०३, ९२२अ, २७, २९, ३०, ३५, ४२, ४३, ४६, ४७ = १५

सूरस्याम—८९५, ९७, ९८, ९९, ९००, ५, ६, ८; १०, १३, १४, १५, १६, १७, १८, १९, २०, ९२२ब, ३१, ३२, ३३, ३४, ३७, ३८, ९३९ब; ४०, ४१, ४८, ४९ = २९

इसमें सूर की छाप १५ पदों में है, सूरदास की २६ पदों में और सूरस्याम की २९ पदों में। यह बड़ी गोवर्धन लीला एक व्यक्ति की रचना है। यह फुटकर पदों का संग्रह नहीं है। यह मनोयोग पूर्वक एक व्यक्ति द्वारा, एक छन्द में, एक लघु प्रबंध-काव्य के रूप में विरचित है। २९ पदों में सूरस्याम छाप है। अतः यह सूरस्याम या सूरदास नवीन की रचना है।

खोज रिपोर्ट १९१७ में इसके पद १, २, ३ (८८४-८६) तथा ७० (९५१) अवतरित हैं।

खोज रिपोर्ट २००१ वि० में पद १ (८८४) और ४१ (९२४) उद्धृत है। पद ९२४ अंत में खंडित है। यह अवतरण मध्य से है।

गोवर्धन-लीला

राग बिलावल

८८४।१५०२

नंदहि कहति जसोदा रानी। सुरपति लीला तुमहिं भुलानी
यह नहिं भली तुम्हारी बानी। मैं गृह-काज रहौं लपटानी
लोभहि लोभ रहे हो सानी। देव-काज की सुधि बिसरानी
महरि कहति पुनि-पुनि यह बानी। पूजा के दिन पहुँचे आनी
सूरदास जसुमति की बानी। नंदहि खीझि खीझि पछितानी १

८८५।१५०३

नंद कह्यौ सुधि भली दिवाई। मैं तो राज-काज मन लाई
नित प्रति करत यहै अधमाई। कुल-देवता - सुरति बिसराई

कंस दई यह लोक बड़ाई। गाँउ दसक सरदार कहाई
जलधि बूँद ज्यौं जलधि समाई। माया जहँ की तहाँ बिलाई
सूरदास यह कह नँदराई। चरन तुम्हारे सदा सहाई २

८८६।१५०४

कहति महरि तब ऐसी बानी। इंद्रहिं की दीन्ही रजधानी
कंस करत तुम्हरी अति कानी। यह प्रभु की है आसिष-बानी
गोपनि बहुत बड़ाई मानी। जहाँ तहाँ यह चलति कहानी
तुम घर मथिये सहस मथानी। ग्वारिनि रहति सदा बिततानी
तृन उपजत उनही कैं पानी। ऐसे प्रभु की सुरति भुलानी
सूर नंद मन मैं तब आनी। सत्य कहतिं तुम देव - कहानी ३

८८७।१५०५

महर दयौ इक ग्वाल चलाइ। पठयौ कहि उपनंद बुलाइ
अरु आनौ वृषभानु लिवाइ। तुरत जाहु तुम करहु चँड़ाइ
यह सुनि तुरत गयौ तहँ धाइ। नंद महर की कही सुनाइ
नैंकु करहु अब जनि बिलमाइ। मोहिं कह्यौ सब देहु पठाइ
यह सुनि कै सब चले अतुराइ। मन मन सोच करत पछिताइ
कंस काज जिय माँझ डराइ। राज-अंस-धन-दियौ चलाइ
सूर नंद - गृह पहुँचे आइ। आदर करि बैठे नँदराइ ४

८८८।१५०६

गोप सबै उपनंद बुलाए। कौन काज हमकौं हँकराए
सुनतहिं हम सब आतुर आए। सब मिलि कह्यौ बहुत डरपाए
काल्हिहिं राज - अंस दै आए। ग्वाल कहत तुरतहिँ उठि धाए
महर कह्यौ हम तुम डरवाए। हँसि-हँसि कहत अनंद बढ़ाए
हम तुमकौं सुख-काज मँगाए। बार बार यह कहि दुख पाए
सूर इंद्र पूजा बिसराए। यह सुनतहि सिर सबनि नवाए ५

८८९/१५०७

पूजा सुनत बहुत सुख कीन्हौ। भली करी हमकौं सुधि दीन्हौ
सुनि बानी सबहिनि सुख लीन्हौ। बड़ौ देव सब दिन कौ चीन्हौ

इनही तैं ब्रज बास बसीनो। हम सब अहिर जाति मति-हीनो
पूजा की विधि करत सबै मिलि। जैसिहि भाँति सदा आई चलि
बिदा माँगि नँद सौं गृह आए। घरनि-घरनि यह बात चलाए
सूरदास गोपनि की बानी। ब्रज नर-नारि सबनि यह जानी ६

८९० / १५०८

नंद घरनि ब्रज वधू बुलाई। यह सुनि कै तुरतहिं सब आईं
"कौन काज हम महरि हँकारी"। "तुम नहिं जानति जेवन भारी"
बिहँसि कहति "तुम देति हो गारी।" "सुरपति पूजा करौ सँवारी"
"देखौ हम सब सुरति बिसारी।" "औरौ हमहिं बूझियै गारी"
यह कहि हरषित भइ नँद नारी। सखियनि बात कही तब प्यारी
सूर इंद्र पूजा अनुसारी। तुरत करौ सब भोग सँवारी ७

८९१ / १५०९

घरनि चलीं सब कहि जसुमति सौं। देव मनावहिं वचन, विनति सौं
तुम बिन और नहीं हम जानैं। मन मन अस्तुति करत बखानैं
जहाँ तहाँ ब्रज मंगल गानै। बाजत ढोल मृदंग निसानै
बहु - बहु भाँति करति पकवानैं। नेवज करि धरि साँझ विहानैं
छुवत नहीं देव काज सकानै। देव - भोग कौं रहत डरानै
सूरदास हम सुरपति जानैं। और कौन ऐसौ जिहिं मानैं ८

८९२ / १५१०

नंद महर घर होति बधाई। कहत सबै बिधि देव पुजाई
नेवज करति जसोदा आतुर। आठौ सिद्धि घरहि अति चातुर
मैदा उज्ज्वल करिकै छान्यौ। बेसन दारि-चनक करि बान्यौ
घृत मिष्ठान्न सबै परिपूरन। मिश्री करत पाग कौं चूरन
कदुवा करत मिठाई घृत पक। रोहिनि करति अन्न भोजन तक
संग और ब्रज नारी लागीं। भोजन करति हैं बड़ी सभागी
महरि करति ऊपर तरकारी। जोरत सब मिलि न्यारी न्यारी
सूरदास जो माँगत जबहीं। भीतर तैं लै देति हैं तबहीं ९

८९३ / १५११

महरि सबै नेवज लैं सैंतति। स्याम छुवै कहुँ ताकौं बरजति
कान्हहिं कहति इहाँ जनि आवैं। लरिकनि कौं यह देव डरावै

स्याम रहे आँगनहिं डराई। मन-मन हँसत मातु सुखदाई
मैया री मोहिं देव दिखैहे। इतनौ भोजन सब वह खैहे
यह सुनि खीझति है नँदरानी। बार-बार सुत सौं विरुझानी
ऐसी बात न कहौ कन्हाई। तू कत करत स्याम लँगराई
कर जोरति अपराध छमावति। बालक कौ यह दोष मिटावति
सूरदास प्रभु कौ नहिं जाने। हँसत चले, मन मैं न रिसाने १०

८९४ / १५१२

जुवती कहहिं कान्ह रिस पायो। जान देहु सुर काज बतायो
बालक आइ छुवै कहुं भोजन। उनकी पूजा जानै को जन
यह कहि-कहि देवता मनावति। भोग समग्री धरति उठावति
उनकी कृपा गऊ-गन घेरे। उनकी कृपा धाम-धन तेरे
उनकी कृपा पुत्र-फल पायौ। देखहु स्यामहिं खीझि पठायौ
सूरदास प्रभु अन्तरजामी। ब्रह्मा कीट आदि के स्वामी ११

८९५ / १५१३

नन्द निकट तब गए कन्हाई। सुनत बात तहं इन्द्र-पुजाई
महर नंद उपनंद तहाँ सब। बोलि लिए बृषभानु महर तब
दीपमालिका रचि रचि साजत। पुहुप माल मंडली विराजत
बरस सात के कुंवर कन्हाई। खेलत मन आनंद बढ़ाई
घर-घर देति जुवति-जन हाथा। पूजा देखि हँसत-ब्रजनाथा
मो आगै सुरपति की पूजा। मोतैं और देव को दूजा
सत-सत इंद्र रोम प्रति लोमनि। सत लोमनि मेरैं इक रोमनि
सूर-स्याम ये मन सौं बातैं। लीन्हौ भोग बहुत दिन जातैं १२

८९६ / १५१४

सुरपति पूजा जानि कन्हाई। बार-बार बूझत नँदराई
कौन देव को करत पुजाई। सो मोसौं तुम कहौ बुझाई
महर कह्यौ तब कान्ह सुनाई। सुरपति सब देवनि के राई
तुम्हरैं हित मैं करत पुजाई। जातैं तुम रहौ कुशल कन्हाई
सूर नंद कहि भेद बताई। और बहुत घर जाहु, सिखाई १३

८९७।१५१५

जाहु घरहिं बलिहारी तेरी। सेज जाइ सोवहु तुम मेरी
मैं आवत हौं तुम्हरे पाछे। भवन जाहु तुम मेरे बाछे
गोपनि लीन्हें कान्ह बुलाई। मंत्र कहौं इक मनहिं समाई
आजु एक सपनें कोउ आयो। संख चक्र भुज चारि दिखायो
मोसों वह कहि-कहि समुझायो। यह पूजा किन तुमहिं सिखायो
सूर स्याम कहि प्रगट सुनायो। गिरि गोबरधन देव बतायो १४

८९८/१५१६

यह सब कहन लगे दिविराई। इंद्रहि पूजे कौन भलाई
कोटि इंद्र हम छिन मैं मारैं। छिनही मैं पुनि कोटि सँवारैं
जाके पूजैं फल तुम पावहु। ता देवहिं तुम भोग लगावहु
तुम आगैं यह भोजन खैहै। मुँह मांगे फल तुमको दैहै
ऐसो देव प्रगट गोबरधन। जाके पूजैं बाढ़ैं गोधन
समुझि परी कैसी यह बानी। ग्वाल कही यह अकथ कहानी
सूर स्याम यह सपनो पायो। भोजन कौने देवहिं खायो १५

८९९/१५१७

मानहु कह्यौ सत्य यह बानी। जो चाहो ब्रज की रजधानी
जो तुम अपनै करनि जेंवावहु। तौ तुम मुँह मांग्यौ फल पावहु
भोजन सब खैहैं मुँह मांगे। पूजत सुरपति तिनके आगे
मेरी कही सत्य करि मानहु। गोबरधन की पूजा ठानहु
सूरस्याम कहि-कहि समुझायो। नंद गोप सबकै मन आयो १६

९००/१५१८

सुरपति पूजा मेटि धराई। गोबर्धन की करत पुजाई
पाँच दिननि लौं करी मिठाई। नंद महर घर की ठकुराई
जाकै घरनी महरि जसोदा। अष्ट सिद्धि नव निधि चहुं कोदा
घृतपक बहुत भाँति पकवाना। व्यंजन बहु को करै बखाना
भोग अन्न बहु भार सजायौं। अपनै कुल सब अहिर बुलायो
सहस सकट भर भरत मिठाई। गोबरधन की प्रथम पुजाई
सूर स्याम यह पूजा ठानी। गिरि गोबरधन की रजधानी १७

९०१/१५१९

व्रज घर घर सब भोजन साजत। सबकैं द्वार बधाई बाजत
सकट जोरि लै चले देव-बलि। गोकुल ब्रजवासी सब हिलिमिलि
दधि लवनी मधु साजि मिठाई। कहँ लगि कहौं सबै बहुताई
घर-घर तैं पकवान चलाए। निकसि गाँउ के ग्वैंड़ें आए
व्रजबासी तहँ जुरे अपारा। सिंधु समान न वार न पारा
पैंड़ो चलन नहीं कोउ पावत। सकट भरे सब भोजन पावत
सहस सकट चले नंद महर के। और सकट कितने घर-घर के
सूरदास प्रभु महिमा-सागर। गोकुल प्रगटे हैं हरि नागर ॥१८

९०२/१५२०

इक आवत घर तैं चले धाई। एक जात फिरि घर-समुहाई
इक टेरत, इक दौरे आवत। एक गिरत, इक लै जु उठावत
एक कहत आवहु रे भाई। बैल देत है सकट गिराई
कौन काहि कौं कहै सँभारैं। जहाँ तहाँ सब लोग पुकारैं
कोउ गावत, कोउ निर्तत आवैं। स्याम सखनि सँग खेलत भावैं
सूरदास प्रभु सबके नायक। जो मन करैं सो करिबे लायक ॥ १९

९०३/१५२१

सजि सृंगार चलीं ब्रजनारी। जुवतिनि भीर भई अति भारी
जगमगात अंगनि-प्रति गहनौ। सबके भाव दरस हरि लहनौ
इहिं मिस देखन कौं सब आईं। देखतिं इकटक रूप-कन्हाई
वै नहिं जानतिं देव-पुजाई। केवल स्यामहिं सौं लौ लाई
को मग जात, कहाँ को बोलत। नंद-सुवन तैं चित नहिं डोलत
सूर भजै हरि जो जिहि भाऊ। मिलत ताहि, प्रभु तेहि सुभाऊ ॥२०

९०४/१५२२

गोप नंद उपनंद गए तहँ। गिरि-गोवरधन बड़े देव जहँ
सिखर देखि सब रीझे मन-मन। ग्वाल कहत आजुहिं अचरज बन
अति ऊँचो गिरिराज बिराजत। कोटि मदन निरखत छबि लाजत
पहुँचे सकटनि भरि-भरि भोजन। कोउ आए, कोउ नहिं, कहुं खोजन
तिनके काज अहीर पठाए। बिलम करौ जनि तुरत धवाए

आवत मारग पाए तिनकौं। आतुर करि बोले नँद जिनकौं
तुरत लिवाइ तिनहिं तहं आए। महर मनहिं अति हर्ष बढ़ाए
सूरदास प्रभु तहँ अधिकारी। बूझत हैं पूजा परकारी ॥२१

९०५/१५२३

आइ जुरे सब ब्रज के बासी। डेरा परे कोस चौरासी
एक फिरत कहुँ ठौर न पावै। एते पर आनंद बढ़ावै
कोउ काहू सौं बैर न ताकै। बैठत मन जहँ भावत जाकैं
खेलत, हँसत, करत कौतूहल। जुरे लोग जहं तहां अकूहल
नंद कह्यौ सब भोग मँगावहु। अपनैं कर सब लै लै आवहु
भोग बहुत वृषभानुहिं घर कौ। को कहि बरनै अतिहि बहर कौ
सूर स्याम जब आयसु दीन्हौ। विप्र बुलाइ नंद तब लीन्हौ ॥२१

९०६/१५२४

तुरत तहां सब विप्र बुलाए। जग्यारंभ तहाँ करवाए
सामवेद द्विज गान करत तहँ। देखत सुर विथके अंबर महँ
सुरपति-पूजा तबहिं मिटाई। गिरि गोवर्द्धन तिलक चढ़ाई
कान्ह कह्यौ गिरि दूध अन्हावहु। बड़े देवता इनहिं मनावहु
गोवर्धन दूधहिं अन्हवाए। देवराज कहि माथ नवाए
नयौ देवता कान्ह पुजावत। नर-नारी सब देखन आवत
सूर स्याम गोवर्धन थाप्यौ। इंद्र देखि रिस करि तनु काँप्यौ २१

९०७/१५२५

देखि इंद्र मन गर्व बढ़ायौ। ब्रज लोगनि मोकौं बिसरायौ
अहिर जाति ओछी मति कीन्ही। अपनी जाति प्रगट करि दीन्ही
पूजत गिरिहिं कहा मन आई। गिरि समेत ब्रज देउँ बहाई
देखौं धौं कितनो सुख पैहैं। मेरैं मारत काहि मनैहैं
परबत तब इनकौं क्यौं राखत। बारंबार यहे कहि भाखत
पूजत गिरि अति प्रेम बढ़ाए। सपनैं को सुख लेत मनाए
सूरदास* सुरपति को बानी। ब्रज बोरौं परलै के पानी २४

९०८/१५२६

स्याम कह्यौ तब भोजन लावहु। गिरि आगैं सब आनि धरावहु
सुनत नंद तहँ ग्वाल बुलाए। भोग समग्री सबै मँगाए

षटरस की बहु भाँति मिठाई। अन्न भोग अतिहीं बहुताई
व्यंजन बहुत भाँति पहुँचाए। दधि लवनी मधु-माठ धराए
दही बरा बहुतै परुसाए। चंद्रहि की पटतर ते पाए
अन्नकूट जैसे गोवर्धन। अरु पकवान धरे चहुँ कोदन
परुसत भोजन प्रातहिं तैं सब। रवि माथे तैं ढरकि गयो अब
गोपनि कह्यो स्याम ह्याँ आवहु। भोग धरयो सब गिरिहिं जेंवावहु
सूर स्याम आपुनहीं भोगी। आपुहिं माया, आपुहिं जोगी २५

६०६/१५२७

कान्ह कह्यो नँद भोग लगावहु। गोप महर उपनंद बुलावहु
नैन मूँदि कर जोरि मनावहु। प्रेम सहित देवहिं सु चढ़ावहु
मन मैं नैंकु खुटक जनि राखहु। दीन बचन मुख तैं जनि भाखहु
ऐसी विधि गिरि परसन ह्वै है। सहस भुजा धरि भोजन खै है
सूरदास प्रभु आपु पुजावत। यह महिमा कैसैं कोउ पावत २६

६१०/१५२८

स्याम कही सोई सब मानी। पूजा की विधि हम अब जानी।
नैन मूँदि कर जोरि बुलायो। भाव भक्ति सौं भोग लगायो
बड़े देव गिरिवर सबहीं के। भोजन करहु कृपा करि नीके
सहस भुजा धरि दरसन दीन्हौ। जै जै धुनि नभ देवनि कीन्हौ
भोजन करत सबनि के आगे। सुर नर मुनि सब देखन लागे
देखि थकित सब ब्रज की बाला। देखत नंद गोप सब ग्वाला
सूर स्याम जन के सुखदाई। सहस भुजा धरि भोजन खाई २७

६११।१५२९

जेंवत देव, नंद सुख पायो। कान्ह देवता प्रगट दिखायो
ब्रजवासी गिरि जेंवत देख्यो। जीवन जन्म सफल करि लेख्यो
ललिता कहति राधिका आगे। जेंवत कान्ह नंद कर लागे
मैं जानी हरि की चतुराई। सुरपति मेटि, आपु बलि खाई
उत जेंवत, इत बातन पागे। कहत स्याम, गिरि जेंवन लागे।
मैं जो बात कही, सो आई। सहस भुजा धरि भोजन खाई
और देव इनकी सरि नाहीं। इत बोधत उत भोजन खाहीं
सूरदास प्रभु की यह लीला। सदा करत ब्रज में यह क्रीला २८

९१२।१५३०

यह छवि देखि राधिका भूली । बात कहति सखियनि सौं फूली
आपुहि देवा, आपु पुजेरी । आपुहि जेंवत भोजन ढेरी
इक वृषभानु बिलोवन हारी । नाम ताहि बदरौला नारी
ताकी बलि लई भुजा पसारी । अति आतुर जेंवत हैं भारी
उत गिरि संग खात बलिहारी । बदरौला की बलि रुचिकारी
सूरदास प्रभु जेंवनहारी । गिरि वपुरे सौ को अधिकारी २९

९१३/१५३१

इतहिं स्याम गोपनि सँग ठाढ़े । भोजन करत अधिक रुचि बाढ़े
गिरि तन सोभा स्याम बिराजै । स्यामहिं छवि गिरिधर की छाजै
गिरिवर उर पीतांबर डारे । मोतिन की माला उर धारे
अंग भूषन, स्रवननि मनि-कुंडल । मोर मुकुट सिर अलक सु झुंडल
छवि निरखतिं सब घोष-कुमारी । गोवर्धन-छवि स्याम ऽनुहारी
सूर स्याम लीला-रस-नायक । जनम-जनम भक्तनि सुखदायक ॥३०

९१४/१५३२

भोजन करत देव भए परसन । माँगहु नंद तुम्हारैं जो मन
भली करी तुम मेरी पूजा । सेवक तुम सौं और न दूजा
जोइ माँगो सोइ फल मैं दैहौं । जहाँ भाव ताही पै रैहौं
मैं सेवा बस भयौ तुम्हारैं । जोइ फल चाहौ लेहु सबारैं
यह सुनि चकित भए नर नारी । भोजन कियौ प्रथमहीं भारी
अब देखौ मुख बात कहत है । ऐसौ देव कहाँ त्रिजगत है
कान्ह कह्यौ कछु माँगहु इनसौं । गिरि-देवता देत परसन सौं
सूर स्याम देवता आपु हैं । व्रज जन के ये हरत तापु हैं ॥ ३१

९१५/१५३३

नंद कह्यौ कह माँगौं स्वामी । तुम जानत सब अंतरजामी
अष्ट सिद्धि नव निधि तुम दीन्हौ । कृपा-सिंधु तुम्हरोई कीन्हौ
कुसल रहैं बलराम कन्हाई । इनहीं कारन करत पुजाई
देवनि के मनि गिरिवर तुम हौ । जहँ तहँ व्यापक पूरन सम हौ
तुम हरता तुम करता चर के । देखि थकित नर नारि नगर के
बड़ौ देवता स्याम बतायौ । प्रगट भयौ सब भोजन खायौ
सूर स्याम कैं जोइ मन आवै । सोइ-सोइ नाना रूप बनावै ॥ ३२

९१६/१५३४

माँगि लेहु कछु और पदारथ। सेवा सबै भई अब स्वारथ
फल माँग्यौ बलराम कन्हाई। ये दोउ रहैं कुसल सदाई
इनहीं तैं तुम हमकौं जान्यौ। तब तुम गिरि गोवर्द्धन मान्यौ
करत वृथा तुम इंद्र-पुजाई। मेरी दीन्हीं है ठकुराई
कान्ह तुम्हारो मोकौं जानै। इनकौं रहियौ तुम सब मानै
इंद्र आइ चढ़िहै व्रज ऊपर। यह कहिहै नहिं राखौं भू-पर
नैंकु नहीं कछु वासौं ह्वै है। स्याम उठाइ मोहिं कर लैहै
सूर स्याम गिरिवर की बानी। व्रज जन सुनत सत्य करि मानी ॥३३

९१७।१५३५

कौतुक देखत सुर नर भूले। रोम रोम गदगद सब फूले
सुरनि विमान सुमन बरसाए। जय धुनि सब्द देव नभ गाए
देव कह्यौ व्रजवासिनि सौं तब। पूजा भली करी मेरी सब
जाहु सबै मिलि सदन करो सुख। स्याम कहत गिरि-गोवर्धन-मुख
ग्वाल करत अस्तुति सब ठाढ़े। प्रेम-भाव सब कैं चित बाढ़े
भवन जाहु कही श्रीमुख बानी। भोजन सेस स्याम कर आनी
बाँटि प्रसाद सबनि कौं दीन्हौ। व्रज-नारी-नर आनँद कीन्हौ
सूर स्याम गोपनि सुखकारी। कह्यौ चलौ व्रजकौं नर नारी ३४

९१८।१५३६

दोउ कर जोरि भए सब ठाढ़े। धन्य धन्य भक्तनि के बाढ़े
तुम भुक्ता तुमहीं पुनि दाता। अखिल ब्रह्मंड लोक के ज्ञाता
तुमकौं भोजन कौन करावै। हित कैं बस तुमकौं कोउ पावै
तुम लायक हमरैं कछु नाहीं। सुनत स्याम ठाढ़े मुसुकाहीं
ललिता सखी देवता चीन्हौ। चंद्रावलि राधहि कहि दीन्हौ
देव बड़ौ यह कुँवर कन्हाई। कृपा जानि हरि ताहि चिन्हाई
सूर स्याम कहि प्रगट सुनाई। भए तृप्त भोजन दिवराई ३५

९१९।१५३७

परसत चरन चलत सब घर कौं। जात चले सब घोष नगर कौं
सुख समेत मग जात चले सबै। दूनी भीर भई तब तैं अब

कोउ आगे कोउ पाछैं आवत। मारग मैं कहुँ ठौर न पावत
प्रथमहिं गए डगर तिन पायौ। पाछे के लोगनि पछितायौ
घर पहुँच्यौ अबहीं नहिं कोई। मारग मैं अटके सब लोई
डेरा परे कोस चौरासी। इतने लोग जुरे ब्रजवासी
पैंडो चलन नहीं कोउ पावत। कितिक दूरि ब्रज पूछत आवत
सूर स्याम गुन-सागर नागर। नूतन लीला करी उजागर ३६

९२०।१५३८

कोउ पहुँचे कोउ मारग माहीं। बहुत गए घर, बहुतक जाहीं
काहू कैं मन कछु दुख नाहीं। अरसि-परस हँसि हँसि लपटाहीं
आनँद करत सबै ब्रज आए। निकटहिं आइ लोग नियराए
भीर भई बहु खोरि जहाँ तहँ। जैसे नदी मिलहिं सागर महँ
नर नारी सरिता सब आगर। सिंधु मनौ यह घोष उजागर
मथनहार हरि, रतन कुमारी। चंद्र-बदनि राधा सुकुमारी।
सूर स्याम आए नँद साला। पहुँचे बरनि आइ नर-बाला ३७

९२१/१५३९

बड़ौ देवता कान्ह पुजायौ। ग्वाल गोप हँसि अंकम लायौ
कान्ह धन्य, धनि जसुमति जायौ। ब्रज बसि धनि तुम तैं कहवायौ
धन्य नंद जिनि तुम सुत पायौ। धनि धनि देव प्रगट दरसायौ
मेटि इंद्र-पूजा, गिरि पूज्यौ। परसन हमहिं सदा प्रभु सूझ्यौ
कहा इंद्र बपुरो किहि लायक। गिरि देवता सबहि के नायक
सूरदास प्रभु के गुन देखे। भक्तनि-बस दुष्टनि कौं नैखे ३८

९२२अ/१५४०क

हरि सब कै मन यह उपजाई। सुरपति निंदत गिरिहिं बड़ाई
बरस-बरस प्रति इंद्र पुजाई। कबहुँ प्रसन्न भयौ नहिं आई
पूजत रहे वृथा ही सुरपति। सब मुख यह बानी घर-घर-प्रति
बड़ौ देव यह गिरि गोवर्धन। यहै कहत ब्रज गोकुल पुर-जन
तहाँ दूत सब इंद्र पठाए। ब्रज कौतुक देखन कौं आए
घर-घर कहत बात नर-नारी। दूत सुन्यौ सो स्रवन पसारी
मानत गिरि, निंदत सुरपति कौं। हँसत दूत, ब्रज जन गइ मतिकौं
सूर सुनत दूतनि रिस पाए। उठि तुरतहि सुर-लोकहिं आए ३९

९२२ब/१५४०

ब्रह्म दई जाकौं ठकुराई। त्रिदस कोटि देवनि के राई
गिरि पूज्यो तिनहीं बिसराई। जाति-बुद्धि इनकैं मन आई
सिव विरंचि जाकौं कहैं लायक। जाके हैं मघवा से पायक
यह कहतहिं आए सुर-लोकहिं। पहुँचे जाइ इंद्र के ओकहिं
दूतनि ऐसी जाइ सुनाई। बैठे जहाँ सुरनि के राई
कर जोरे सनमुख भए आई। पूछि उठे ब्रज की कुसलाई
दूतनि ब्रज की बात सुनाई। तुमहि मेटि, पूज्यौ गिरि राई
तुमहि निंदि गिरिवरहिं बड़ाई। यह सुनतहि रिस देत कँपाई
सूर स्याम यह बुद्धि उपाई। ज्यौं जानैं ब्रज मैं जदुराई ४०

९२३/१५४१

ग्वालनि मोसौं करी ढिठाई। मोकौं अपनी जाति दिखाई
तेंतिस कोटि सुरनि कौ राई। तिहूँ भुवन भरि चलति बड़ाई
साहिब सौं जो करै बुताई। ताकौं नहिं कोऊ पतियाई
इन अपनी परतीति घटाई। मेरें बैर बांचिहैं भाई?
नई रीति यह अबहिं चलाई। काहू इनहिं दियो बहकाई
ऐसी मति अबकैं इन पाई। काकी सरन रहैंगे जाई
इन दीन्हौ मोकौं बिसराई। नंद आपनी प्रकृति गँवाई
जाबी बात बुढ़ाई आई। अहिर जाति कोऊ न पत्याई
मातु पिता नहिं मानैं भाई। जानि बूझि इन करी धिंगाई
मेरी बलि परबतहिं चढ़ाई। गिरिवर सह ब्रज देहुँ बहाई
सूरदास सुरपति रिस पाई। कीरी तनु ज्यौं पंख उपाई ॥ ४१

९२४/१५४२

मोकौं निंदि पर्बतहिं वंदत। चारा कपट पंछि ज्यौं फंदत
मरन काल ऐसी बुधि होई। कछू करत कछुवै वह जोई
खेलत खात रहे ब्रज भीतर। नान्हे लोग तनक धन ईतर
समै समैं बरसौं प्रतिपालौं। इनकी बुद्धि इनहिं अब घालौं
मेरैं मारत कौन राखिहै। अहिरनि कैं मन यह काखिहै
जो मन जाकैं सोइ फल पावै। नीम लगाइ आम को खावै
विष कैं वृच्छ विषहि फल फलिहै। तामैं दाख कहौ क्यौं मिलिहै

अगिनि बरत देखत कर नावै। कहा करै तिहि अगिनि जरावै
सूरदास यह सब कोउ जानै। जो जाको सो ताको मानै ।। ४२

९२५/१५४३

परबत पहिलेहिं खोदि बहाऊँ। बज्रनि मारि पताल पठाऊँ
फूलि फूलि जिहिं पूजा कीन्हीं। नैंकु न राखौं ताकौं चीन्ही
नंद गोप नैननि यह देखैं। बड़े देवता कौ सुख पेखैं
निदत मोहिं, करी गिरि-पूजा। जासौं कहत और नहिं दूजा
गरब करत गोबरधन गिरि कौ। परबत माहिं आहि सो फिरि कौ
डूंगर कौ बल उनहिं बताऊँ। ता पाछैं ब्रज खोदि बहाऊँ
राखौं नहिं काहूं, सब मारौं। ब्रज गोकुल कौं खोज निवारौं
को जानै कहँ गिरि, कहँ गोकुल। भुव पर नहिं राखौं उनकौ कुल
सूरदास यह इंद्र-प्रतिज्ञा। ब्रज-वासिनि सब करी अवज्ञा ।।४३

९२६/१५४४

सुरपति क्रोध कियौ अति भारे। फरकत अधर नैन रतनारे
भृत्य बुलाए दै दै गारी। मेघनि ल्यावौ तुरत हँकारी
एक कहत धाए सौ चारी। अति डरपे तन की सुधि हारी
मेघवर्त जलवर्त बुलावहु। सैन साजि तुरतहि लै आवहु
कापरक्रोध कियो अमरापति। महा प्रलय जिय जानि डरे अति
मेघनि सौं यह बात सुनाई। तुरत चलौ बोले सुरराई
सेना सहित बुलायौ तुमकौं। रिस करि तुरत पठायौ हमकौं
बेगि चलौ, कछु बिलंब न लावहु। हमहिं कह्यौ अबहीं लै आवहु
मेघवर्त सब सैन्य बुलाए। महा प्रलय के जे सब आए
कछु हरष, कछु मनहिं सकाने। प्रलय आहि कै हमहिं रिसाने
चूक परी हम तैं कछु नाहीं। यह कहि-कहि सब आतुर जाहीं
मेघवर्त, बलवर्त, पारिव्रत। अनिलवर्त, नलवर्त, वज्रव्रत
बोलत चले आपनी बानी। प्रभु सनमुख सब पहुँचे आनी
गर्जि गर्जि घहरातहिं आए। देव देव कहि माथ नवाए
सूरदास डरपत सब जलधर। हम पर क्रोध किधौं काहू पर ।।४४

९२७/१५४५

चितवतहीं सब गए झुराई। सकुचि कह्यौ कापर रिस पाई
छमा करौ, आयसु हम पावैं। जापर कहौ, ताहि पर धावैं

सैन सहित प्रभु हमहिं बुलाए। आज्ञा सुनत तुरत उठि धाए
ऐसो कौन जाहि प्रभु कोपे। जीव नाम सब तुम्हरेहिं रोपे
सूर कह्यो यह मेघनि बानी। यह सुनि सुनि रिस कछुक बुझानी

९२८/१५४६

मेघनि सौं बोले सुरराई। अहिरनि मोसौं करी ढिठाई
मेरी दीन्हीं करत बड़ाई। जानि बूझि मोहिं दियौ भुलाई
सदा करत मेरी सेवकाई। अब सेवत परबत कहं जाई
इहीं काज तुमकौं हंकराए। भली करी सैना लै आए
गाइ गोप ब्रज सबै बहावहु। पहिले परबत खोदि ढहावहु
जब यह सुनी इंद्र की बानी। मेघनि मन तब धीरज आनी
सूरदास यह सुनि घन तमके। कापर क्रोध करत प्रभु जमके ४६

९२९/१५४७

रिस लायक तापर रिस कीजै। इहि रिस तैं प्रभु देही छीजै
तुम प्रभु, हम से सेवक जाकैं। ऐसो कौन रहै तुम ताकैं
दिनहीं मैं ब्रज धोइ बहावैं। डूंगर को नहिं नाउं बचावैं
आपु छमा करियै दिवराई। हम करिहैं उनकी पहुनाई
यह सुनि कै हरषित मन कीन्हौ। आदर सहित पान कर दीन्हौ
प्रथमहि देहु पहार बहाई। मेरी बलि ओहीं सब खाई
सूर इंद्र मेघनि समुझावत। हरषि चले घर आदर पावत ४७

९३०।१५४८

आयसु पाइ तुरतहीं धाए। अपनी सेना सबनि बुलाए
कह्यौ सबनि ब्रज ऊपर धावहु। घटा घोर करि गगन छपावहु
मेघवर्त जलवर्तक आगे। और मेघ सब पाछे लागे
गरजि उठे ब्रज ऊपर जाई। सब्द कियौ आघात सुनाई
ब्रज के लोग डरे अति भारी। आजु घटा देखियत हैं कारी,
देखत देखत अति अधिकायौ। नैंकुहि मैं रवि गगन छपायौ
ऐसे मेघ कबहुं नहि देखे। अति कारे काजर अवरेखे
सुनहु सूर ये मेघ डरावन। ब्रजवासी सब कहत भयावन ४८

९३१।१५४९

गरजि-गरजि ब्रज घेरत आवैं। तरपि तरपि चपला चमकावैं
नर-नारी सब देखत ठाढ़े। ये बादल परलय के काढ़े

दरदरात घहरात प्रबल अति। गोपी-ग्वाल भए और गति
कहा होन अबहीं यह चाहत। जहँ तहँ लोग यहै अवगाहत
खन भीतर, खन बाहिर आवत। गगन देखि धीरज बिसरावत
सूर स्याम यह करी पुजाई। तातैं सुरपति चढ़यौ रिसाई ४६

९३२।१५५०

फिरत लोग जहँ तहँ बितताने। को हैं अपने, कौन बिराने
ग्वाल बए जे धेनु चरावन। तिनहिं परयौ बन माँझ परावन
गाइ बच्छ कोऊ न सँभारैं। जिय की सबकौं परी खँभारैं
भागे आवत व्रज ही तन कौं। बिपति परी अति वन ग्वालनि कौं
अंध धुंध, मग कहूँ न सूझैं। व्रज भीतर व्रज ही कौं बूझैं
जैसे-तैसे व्रज पहिचानत। अटकर हीं अटकर करि आनत
खोजत फिरैं आपने घर कौं। कहा भयौ इहिं घोष सहर कौ
रोवत डोलैं घरहिं न पावैं। घर द्वारे घर कौं बिसरावैं
सूर स्याम सुरपति बिसरायौ। गिरि के पूजैं यह फल पायौ ॥५०

९३३/१५५१

जमुना जलहिं गईं जे नारी। डारि चलीं सिर गागरि भारी
देखौं मैं बालक कत छाँड्यौ। एक कहति आँगन दधि माँड्यौ
एक कहति मारग नहिं पावति। एक सामुहैं बोलि बतावति
व्रजवासी सब अति अकुलाने। काल्हिहि पूज्यौ, फल्यौ बिहाने
कहाँ रहे अब कुँवर कन्हाई। गिरि गोबरधन लेहिं बुलाई
जेंवन सहस भुजा धरि आवैं। अब द्वै भुजा हमकौं दिखरावैं
वे देवता खात ही लौं के। पाछे पुनि तुम कौन, कहो के
सूर स्याम सपनौ प्रगटायौ। घर के देव सबनि बिसरायौ ॥५१

९३४/१५५२

गर्जत घन अतिहीं घहरावत। कान्ह सुनत आनंद बढ़ावत
कौतुक देखत व्रज-लोगन के। निकट रहत नितही निज जन के
इक सैंतत घर के सब बासन। लीन्हें फिरत घर्रहिं के पासन
एक कहत जिय की नहिं आसा। देखत सबै वृष्ट के नासत
सूर स्याम जानत ये गाँसा। कहू पानी कहँ करै हुतासा ॥५२

९३५/१५५३

मेघवर्त मेघनि समुझावत । बार-बार गिरि तनहिं बतावत
पर्वत पर बरसहु तुम जाई । यहै कही हमकौं सुरराई
ऐसैं देहु पहार बहाई । नाउं रहै नहिं ठौर जनाई
सुरपति की बलि सब इहिं खाई । ताकौ फल पावै गिरिराई
जेंवत काल्हि अधिक रुचि पाई । सलिल देहु तिहिं तृषा बुझाई
दिना चारि रहते जग ऊपर । अब न रहन पावै या भूपर
सूर मेघ सुरपतिहिं पठाए । व्रज के लोगनि तुमहिं बिहाए ।।५३

९३६/१५५४

परसत हैं घन गिरि के ऊपर । देखि देखि व्रज लोग करत डर
व्रजवासी सब कान्ह बतावत । महा-प्रलय-जल गिरिहिं ढहावत
झरहरात झरपत झर लावत । गिरिहिं धोइ व्रज ऊपर आवत
विकल देखि गोकुल के वासी । दरस दियौ सबकौं अविनासी
अविनासी के दरसन पाए । तब सब मन परतीति बढ़ाए
नंद यसोदा सुत-हित जानैं । और सबै मुख अस्तुति गानैं
बार बार यह कहि-कहि भाखैं । अब सब व्रज कौं येई राखैं
बरसत गिरि झर यह व्रज ऊपर । सो जल जहँ-तहँ पूरत भू-पर
सूरदास प्रभु राखि लेह अब । जैसैं राखे अघा-बदन तब ।।५४

९३७/१५५५

राखि लेहु अब नंदकुमार । गोसुत गाइ फिरत विकरार
बरसत बूंद लगैं जनु सायक । राखि लेहु व्रज गोकुल-नायक
तुम बिन कौन सहाइ हमारैं । नंद-सुवन अब सरन तुम्हारैं
सरन सरन जब व्रज जन बोले । धीर-बचन दै लै दुख मोले
वह बोले हँसि कृष्ण मुरारी । गिरि कर धरि राखौं नर नारी
सूर स्याम चितए गिरिवर तन । विकल देखि गो, गोसुत, व्रजजन ।।५५

९३८/१५५६

गोवर्धन लीन्हौं उचकाई । देखि विकल नर नारि कन्हाई
आपुन सुख व्रजजन वितताए । बूंद कयक व्रज पर बरसाए
वै डरपत आपुन हरषत मन । राखे रहे जहाँ तहँ व्रजजन

धरिक देखि मनही सुख दीन्हो । बाम भुजा धरि गिरिवर लीन्हो
सूर स्याम गिरि करजहि राख्यो । धीर धीर सबसों कहि भाख्यो ५६

९३९ अ।१५५७

स्याम धरयो गिरि गोबरधन कर । राखि लिए ब्रज के नारी-नर
गोकुल ब्रज राख्यौ सब घर-घर । आनँद करत सबै ताहीं-तर
बरसत मुसलधार मघवा बर। बूँद न आवत नैंकहु भू पर
धार अखंडित बरसत झर-झर । कहत मेघ धावहु ब्रज गिरिवर
सलिल प्रलय कौ टूटत तर-तर । बाजत सबद नीर कौ घर-घर
वै जानत जल जात है दर-दर । बरसत कहत गयौ गिरि कौ जर
'सूरदास' प्रभु कान्ह गर्व हर । बीचहि जरत जात जल अंबर

९१९ ब ।१५५७

बोलि लिए सब ग्वाल कन्हाई । टेकहु गिरि गोवर्धन राई
आजु सबै मिलि होहु सहाई । हँसत देखि बलराम कन्हाई
लकुट लिए कर टेकत जाई । कहत परस्पर लेहु उठाई
बरसत इंद्र महा झर लाई । अति जल देखि सखा डरपाई
नंद-नँदन बिनु को गिरि धारैं । ऐसे बल बिनु कौन सम्हारैं
नख तैं गिरैं कौन गिरि राखै । बार-बार रहि रहि यह भाखैं
'सूर' स्याम गिरिवर कर लीन्हो । बरसत मेघ चकित मन कीन्हो ५८

९४०/१५५८

बात कहत आपुस मैं बादर । इंद्र पठाए हम करि आदर
अब देखत कछु होन निरादर । बरषि-बरषि घन भए मन कादर
खीझत कहत मेघ सबही सौं । बरषि कहा कीन्हो तबही सौं
महा प्रलय को जल कह राखत । डारि देहु ब्रज पर कह ताकत
क्रोध सहित फिरि बरषन लागे । ब्रजबासी आनँद अनुरागे
ग्वाल कहत तुम धन्य कन्हाई । बाम भुजा गिरि लियो उठाई
'सूर' स्याम तुम सरि कोउ नाहीं । बरसत घन गिरि देखि खिस्याहीं ५९

९४१/१५५९

प्रलय मेघ लै आए बाने । आपुस ही मैं सबै रिसाने
सात दिवस जल बरसि बुढ़ाने । चकृत भए, तन-सुरति भुलाने

फिरि देखत जल कहाँ ढराने । महा प्रलय के सब निझराने
झुरि झुरि सब बादर बितताने । बूँद नहीं घन नैंकु बचाने
जलद अपुन कौं धिक करि माने । फिरि सब चले अतिहि विकलाने
'सूर' स्याम गोबरधन राने । मूरख सुरपति अजहुँ न जाने ६

९४२/१५६०

मेघ चले मुख फेरि अमरपुर । करी पुकार जाइ आगैं सुर
स्रम तैं टूटि गए सबके उर । जल बिनु भए सबै घन धूँधुर
की मारौं की सरन उबारौं । हममैं कहा रह्यौ अब गारौ
जहँ तहँ बादर रोवत बोलैं । स्रम अपनौ प्रभु आगैं खोलैं
सात दिवस नहिं मिटी लगारा । बरख्यौ सलिल अखंडित धारा
महा प्रलय-जल नैंकु न उबरचौ । ब्रजवासिनि नीकैं अब निदरचौ
वैसोइ गिरि, वैसेइ ब्रजवासी । नैंकु बूँद नहिं धरनि प्रकासी
सूर सुनत सुरपतिहि उदासी । देख्यौ यौं आए जल-रासी ११

९४३/१५६१

चकित भयौ ब्रज-चाह सुनाई । पुनि-पुनि बूझत मेघ बुलाई
कहाँ गयौ जल प्रलय-काल कौ । कहा कहौं सब तन बेहाल कौ
कहा करैं अपनौ बल कीन्हौ । व्याकुल रोइ-रोइ तब दीन्हौ
दंड एक बरसैं मन लाई । पूरन होत गगन लौं आई
परबत मैं कोउ है अवतारा । सुरपति मन मैं करत बिचारा
'सूर' इंद्र सुर-गन हँकराए । आज्ञा सुनत तुरत सब आए

९४४/१५६२

सुरपति आगैं भए सब ठाढ़े । सबहिनि कैं मन चिंता बाढ़े
कौन काज सुरराज बुलाए । सकुच सहित पूछत सब आए
कहा कहौं कछु कहत न आवै । मेघवनि की गति सुरनि बतावै
बजवासिनि मोकौं बिसरायौ । भोजन लै सब गिरिहिं चढ़ायौ
मोकौं मेटि परवतहिं थाप्यौ । तब मैं थरथराइ रिस काँप्यौ
'सूरदास' यह सुरनि सुनाई । ता कारन तुम लिए बुलाई

९४५/१५६३

सुरनि कही सुरपति के आगैं । सनमुख कहत सकुच हम लागैं
सकुचत कत सो बात सुनावहु । नीकैं करि मोकौं समुझावहु

नीकी भाँति सुनौ सुरराई। ब्रज मैं ब्रह्म प्रगट भए आई
तुम जानत जब धरनि पुकारी। पापहिं पाय भई अति भारी
पौढ़ें सेष संग श्री प्यारी। ते ब्रज भीतर हैं वपु धारी
ब्रह्म-कथा कहि आदि पसारी। तिन सौं हम कीन्हौ अधिकारी
'सूरदास' प्रभु गिरि कर धारी। यह सुनि इंद्र डरयो मन भारी ६४

९४६।१५६४

यह मोकों तबहीं न सुनाई। मैं बहुतै कीन्ही अधमाई
पूरन ब्रह्म रहे ब्रज आई। काहू तौ मोहिं सुधि न दिवाई
सुरनि कहीं नहिं करी भलाई। आजु कह्यौ जब महत गँवाई
यह सुनि अमर गए सरमाई। सुनहु राज हम जानि न पाई
अब सुनियै आपुन मन लाई। व्रजहिं चलौ नहिं और उपाई
वै हैं कृपासिंधु करुनाकर। छमा करहिंगे श्रीसुंदरवर
और कछू मन में जिनि आनहु। हम जो कहैं सत्य करि मानहु
सूर सुरनि यह बात सुनाई। सुरपति सरन चल्यौ अकुलाई ६५

९४७।१५६५

जब जान्यो ब्रज-देव मुरारी। उतरि गई सब गर्व-खुमारी
व्याकुल भयौ डरयौ जिय भारी। अनजानत कीन्हीं अधिकारी
बैठि रहे तैं नहिं बनि आवै। ऐसौ को जो मोहि बचावै
बार-बार यह कहि पछितावै। जाउं सरन बल मनहिं धरावै
जाइ परौं चरननि सिर धारौं। की मारौ की मोहिं उबारौ
अमरनि कह्यो करौ असवारी। ऐरावत कौ लेहु हँकारी
सूर सरन सुरपति चल्यौ धाई। लिए अमर-गन संग लगाई ६६

९४८।१५६६

करत बिचार चल्यौ संमुख ब्रज। लटपटात पग धरत धरनि गज
कोटि इंद्र जाकैं रोमनि रज। व्रज अवतार लियो माया तज
उतरि गगन, पुहुमी पर आए। ब्रजवासी सब देखन धाए
चकित भए सब, मनहि भ्रमाए ब्रज ऊपर आवत वे धाए
कहत सुनी लोगनि मुख बाता। येई हैं सुरपति सुर त्राता
देखि सैन ब्रज लोग सकात। यह आयौ कीन्हैं कछु घात
सूर स्याम कौ जाइ सुनायो। सुरपति सैन साजि ब्रज आयो ६७

९४९।१५६७

निकट जानि त्याग्यो वाहनि कौ। ब्रज बाहिर राख्यौ साहनि कौं
सकुचत चल्यौ कृष्न कैं सन्मुख। कछु आनंद कछू मन मैं दुख
परचौ धाइ चरननि सुरराई। कृपा सिंधु राखौ सरनाई
कियौ अपराध बहुत बिन जाने। प्रभु उठाइ लिये हँसि मुसुकाने
श्रीमुख कह्यौ उठहु सुर-राजा। बदन उठाइ सकत नहिँ लाजा
वे दिन वृथा गए बेकाजा। तुमको नहिँ जान्यौ ब्रज-राजा
सूर स्याम लीन्हौं उर लाई। असरन सरन निगम यह गाई ६८

९५०।१५६८

हँसि-हँसि कहत कृष्न मुख बानी। हम नाहिंन तुम पर रिस आनी
तुम कत अति संका जिय जानी। भली करी ब्रज बरख्यौ पानी
यह सुनि इंद्र अतिहि सकुचान्यौ। ब्रज अवतार नहीं मैं जान्यौ
राखि लेहु त्रिभुवन के नाथा। नहिँ मो तैं कोउ और अनाथा
फिरि-फिरि चरन धरत लै माथा। छमा करहु राखहु मोहि साथा
रवि आगैं खदयोत प्रकासा। मनि आगैं ज्यौं दीपक नासा
कोटि इंद्र रचि कोटि विनासा। मोहिँ गरीब की केतिक आसा
दीन वचन सुनि भव के नासा। छमा भए जल परयो हुतासा
अमरापति चरननि पर लोटत। रही नहीं मन में कछु खोटत
उभय भुजा करि लियौ उठाई। सुरपति-सीस अभय कर नाई
हँसि दीन्हीं प्रभु लोक बड़ाई। श्रीमुख कह्यौ करौ सुख जाई
धन्य-धन्य जन के सुखदाई। जै-जै धुनि देवनि मुख गाई
सिव विरंचि चतुरानन नारद। गौरी-सुत दोऊ सँग सारद
रवि ससि बरुन अनल जमराजा। आजु भए सब पूरन काजा
असरन-सरन सदा तुव बानौ। यह लीला प्रभु तुमही जानौं
माता सो सुत करै ढिठाई। माता फिरि ताको सुखदाई
ज्यौं धरनी हल खोदि बिनासै। सनमुख सतगुन फलहि प्रकासै
कर कुठार से तरुहि गिरावै। यह काटै वह [illegible] छावै
जैसैं दसन जीभ दबि जाइ। तब कासौं सो करै रिसाइ
धनि व्रज, धनि गोकुल, वृन्दावन। धनि जमुना, धनि लता कुंज घन
धन्य नन्द, धनि जननि जसोदा। बाल-केलि हरि कैं रस मोदा
अस्तुति सुनि मन हरख बढ़ायौ। साधु साधु कहि सुरनि सुनायौ
तुमहिं राखि असुरनि सँहारौ। तन धरि धरनी भार उतारौं

आवत जात बहुत स्रम पायौ । जाहु भवन, करि कृपा पठायौ
कर सिर धरि धरि चले देव-गन । पहुंचे अमर लोक आनँद मन
यह लीला सुर बरनि सुनाई । गाइ उठी सुरनारि बधाई
अमर लोक आनन्द भए सब । हर्ष सहित आए सुरपति जब
सूरदास सुरपति अति हरष्यौ । जै जै धुनि सुमननि ब्रज बरष्यौ ६८

९५१/१५६९

हरि करतैं गिरिराज उतारचौ । सात दिवस जल प्रलय सम्हारचौ
ग्वाल कहत कैसैं गिरि धारचौ । कैसे सुरपति गर्व निवारचौ
व्रज्रायुध जल बरषि सिरान्यौ । परचौ चरन जब प्रभु करि जान्यौ
हम संग सदा रहत है ऐसैं । यह करतूति करत तुम कैसैं
हम हिलि-मिलि तुम गाइ चरावत । नंद-जसोदा-सुवन कहावत
देखि रहीं सब घोष कुमारी । कोटि काम छवि पर बलिहारी
कर जोरति रवि गोद पसारैं । गिरिवरधर पति होहिं हमारैं
ऐसो गिरि गोवर्धन भारी । कब लीन्हौ, कब धरचौ उतारी
तनक-तनक भुज तनक कन्हाई । यह कहि उठी जसोदा माई
कैसैं परबत लियौ उचकाई । भुज चाँपति, चूमति बलि जाई
बारंबार निरखि पछिताई । हँसत देखि ठाढ़े बल भाई
इनकी महिमा काहु न पाई । गिरिवर धरचौ यहै बहुताई
इक इक रोम कोटि ब्रह्मंडा । रवि ससि धरनी धर नव खंडा
इहिं व्रज जन्म लियो कै बारा । जहाँ तहाँ जल थल अवतारा
प्रगट होत भक्तनि के काजा । ब्रह्म कीट सम सब के राजा
जहँ जहँ गाढ़ परैं तहँ आवैं । गरुड़ छाँड़ि ता सनमुख धावैं
ब्रज ही मैं नित करन बिहारन । जसुमति-भाव-भक्ति-हित-कारन
यह लीला इनकौं अति भावै । देह धरत पुनि पुनि प्रकटावै
नैकु तजत नहिं ब्रज नर-नारी । इनकैं सुख गिरि धरत मुरारी
गर्बवंत सुरपति चढ़ि आयौ । बाम करज गिरि टेकि दिखायौ
ऐसे हैं प्रभु गर्व-प्रहारी । मुख चूमति जसुमति महतारी
यह लीला जो नित प्रति गावैं । आपुन सिखि औरनि सिखरावैं
भक्ति मुक्ति की केतिक आसा । सदा रहत हरि तिनके पासा
चतुरानन जाको जस गानै । सेस सहस मुख जाहि बखानै
आदि अंत कोऊ नहिं पावै । जाको निगम नेति नित गावै
'सूरदास' प्रभु सबके स्वामी । सरन राखि मोहिं अंतरजामी ७०

५—दान लीला

सं० २००१ की खोज रिपोर्ट में दानलीला के दो हस्तलेखों का विवरण है।

(१)

खोज रिपोर्ट २००१/४६१ छ वाली प्रति ठाकुर फतेह बहादुर सिंह, क्षत्रिय-पुर, पोस्ट मझगवाँ, जिला जौनपुर की है। इसमें १६ पन्ने हैं। ग्रंथ खंडित है। इसमें कुल ५३ पद उपलब्ध हैं।

पहला पद है—

भक्तनि के सुखदायक स्याम। जुवती पुरुष नहीं कछु नाम ...

यह सभा के सूरसागर में १४६०/२०७८ संख्यक पद हैं। यह दानलीला प्रकरण का पंचम पद है।

अंतिम अंश के रूप में बड़ी दानलीला के छंद ३, ४, ५ अवतरित है। इसके आगे के अंश नहीं हैं। यह १६१८/२२३६ संख्यक पद है, जिसमें नंददास की भ्रमरगीत-शैली में लिखित कुल ४४ छंद हैं। दो चरण रोला के, फिर एक दोहा, फिर १० मात्राओं का पुछिल्ला।

प्रस्तुत दोनों छंद सूरदास नवीन के हैं। यह दानलीला पदों का संग्रह है।

(२)

खोज रिपोर्ट २००१/४६१ ज में जिस दानलीला का वर्णन है, वह ऊपर वर्णित नंददास की भ्रमर गीत शैली में लिखित सभा के सूर सागर का १६१८/२२३६ संख्यक पद हैं। यह शुद्ध रूप से एक लघु प्रबंध है और सूरदास नवीन की रचना है। छाप सूरदास ही है।

विवरण में १, २०, ४४ संख्यक छंद अवतरित है। ४४ संख्यक छंद की संख्या ४५ दी गई है, जो या तो लिखक का प्रमाद है अथवा २० और ४४ के बीच एक और कोई छंद है, जो सभा वाले सूरसागर में नहीं है।

नंददास की भँवरगीत शैली में लिखित सूरसागर के सभा संस्करण का पद १६१८/२२३६ वस्तुतः एक स्वतंत्र ग्रंथ है। यह सूरसागर का अंश नहीं हैं। संकल-

विद्वानों ने इसे सूरसागर का अंश बना दिया है। यह महाकवि सूर की रचना न होकर सूर नवीन की रचना है। डा० दीनदयालु गुप्त[1] और डा० प्रभुदयाल मीतल[2] इसे सूरसागर का अंश मात्र मानते हैं।

दान लीला

राग राइगी हठीली

सुनि तमचुर कौ सोर, घोष की बागरी
नव सत साजि सिँगार, चली नव नागरी
नव सत साजि सिंगार, अंग पाटंबर सोहै
इक तैं एक अनूप, रूप त्रिभुवन मन मोहैं
इंदा विंदा राधिका, स्यामा कामा नारि
ललिता अरु चन्द्रावली, सखिनि मध्य सुकुमारि
सबै ब्रज नागरी १

कोउ दूध, कोउ दह्यो, मह्यौ लै चली सयानी
कोउ मटुकी, कोउ माट, भरी नवनीत मथानी
गृह गृह तैं सब सुन्दरी, जुरी जमन तट जाइ
सबनि हरष मन मैं कियो, उठीं स्याम गुन गाइ
चलीं ब्रज नागरी २

यह सुनि नंदकुमार, सैन दै सखा बुलाए
मन हरषित भए आपु, जाइ सब ग्वाल जगाए
यह कहिकै तब साँवरे, राखे द्रुमनि चढ़ाइ
और सखा कछु संग लै, रोकि रहे मग जाइ
तहाँ नंद लाड़िलो ३

एक सखी अवलोकि, तबहिं सब सखी बुलाई
इहिं बन में इकबार, लूटि हम लई कन्हाई
तनक फेर, फिरि आइयै, अपनैं सुखहिँ विलास
यह झगरो सुनि होइगो, गोकुल मैं उपहास
कहति ब्रज नागरी ४

१—अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय—पृष्ठ २८३।
२—सूर सर्वस्व—पृष्ठ ६७१।

उलटि चलीं सब सखी, तहाँ कोउ जान न पावै
रोकि रहे सब सखा, और बातनि बिरमावैं
सुबल सखा तब यह कह्यौ, तुम नागरि हरि-जोग
कैसैं बातैं दुरति हैं, तुम उनकैं संजोग
कहत व्रज लाड़िलौ ५

किनहु सृंग, कोउ बेनु, किनहुं बन-पत्र बजाए
छाँड़ि छाँड़ि द्रुम-डारि, कूदि धरनी पर आए
सखिनि मध्य इत राधिका, सखनि मध्य बलवीर
झगरौ ठान्यौ दान कौ, कालिंदी के तीर
आइ ब्रज लाड़िले ६

दं नागरि दधि-दान, कान्ह ठाढ़े वृन्दावन
और सखा सब संग, वच्छ चारत अरुगोधन
बड़े गोप की लाड़िली, तुम बृषभानु-कुमारि
दही मही के कारनैं, कतहि बढ़ावत रारि
कहत व्रज लाड़िले ७

सूधैं गोरस माँगि, कछू लै हम पैं खाहू
ऐसे ढीठ गुवाल, कान्ह बरजत नहिं काहू
इहि मग गोरस लै सबै, नित प्रति आवहिं जाहिं
हमहिं छाप दिखरावहू, दान चहत किहि पाहि
कहत ब्रज लाड़िली ८

इतैं मान सतराति, ग्वालि पै जान न पावै
अनऊतर उठि चली, कुँवर सिर नैन कंपावै
इतनी हमसौं को करे, या वृन्दावन बीच
पुहुमि माट ढरकाइहौं, मचिहै गोरस-कीच
कहत नँद लाड़िले ९

कान्ह अचगरी करत, देत अगिनित ह्रौ गारी
कापै पहिरयौ दान, भए कबतैं अधिकारी
मातु पिता जैसे भले, तैसे चलियै आपु
कठिन कंस मथुरा बसै, को कहि लेइ सँतापु
कहहि ब्रज नागरी १०

कहो न जाइ उताल, जहाँ भूपाल तिहारो
हौं वृन्दावन-नंद, कहा कोउ करै हमारो
सेस सहस-फन नाथि ज्यौं, सुरपति करे निरंस
अग्नि-पान कियो छिनक मैं, कितक बापुरो कंस
कहत नंद लाड़िलो ११

जाके तुम सुकुमार, ताहि हम नीकैं जानैं
जो पूछो सति भाव, आदि अरु अंत बखानैं
बातनि बड़े न हूजियें, सुनहु कान्ह उतपाति
गर्भ साँटि जसुमति लियो, तब तुम आए राति
कहति व्रज नागरी १२

अरी ग्वारि मयमंत, बचन बोलति जु अनेरो
कब हरि बालक भए, गर्भ कब लियो बसेरो
प्रबल असुर पुहुमी बढ़े, विधि कीन्हैं ये ख्याल
कमल कोस अलि भुरै त्यौं, तुम भुरयो गोपाल
कहत व्रज लाड़िले १३

तुम भुरए हो नंद, कहत हैं तुम सों ढोटा
दूध दही के काज, देह धरि आए छोटा
गढ़ि गढ़ि, छोलत लाड़िले, भली नहीं यह स्याम
या धोखे जिनि भूलहू, हम समरथ की बाम
कहति व्रज नागरी १४

जो प्रभु देह न धरै, दीन को कौन उधारै
कंस केस को गहै, विघ्न व्रज को को टारै
कहा निगम कहि गावतो, कह मुनि धरते ध्यान
दरस-परस बिनु नाम गुन, को पावै निर्बान
कहत नंद लाड़िले १५

जो इतनो गुन आहि तिहारैं दरस कन्हाई
तुम निर्भय पद देत, बेदहू यहै बताई
जोग जुगुति तप ध्यावहीं, तिन गति कौन दयाल
जल-तरँग गत मीन ज्यौं, बंधे कर्म के जाल
कहति व्रज नागरी १६

जटा भस्म तन दहै, वृथा करि कर्म बँधावै
पुहुमि दाहिनी देहि, गुफा बसि मोहि न पावै
तजि अभिमान जु गावही, गदगद सुरहिं प्रकास
इहिं रस मगन जु ग्वालिनी, ता घट मेरो वास
कहत नँद लाड़िले १७

जु पै चाहि लैं स्याम, करत उपहास घनेरे
हम अहीर-गृह-नारि, लोक-लज्जा कैं जेरे
ता दिन हम भईं बावरी, दियौ कंठ तैं हार
तब तैं घर घैरा चल्यौ, स्याम तुम्हारे जार
कहत व्रज नागरी १८

सखा सबनि मिलि कह्यौ, ग्वारि इक बात सुनावैं
तुम तन-ज्योति-सुभाव-रूप-उपमा को पावैं
गुप्त प्रीति विधिना रची, रसिक साँवरे जोग
यह सँजोग सुनि ग्वारिनी, न्याय हँसैंगे लोग
कहत व्रज लाड़िले १९

ऐसी बातैं कान्ह, कहत हमसौं काहे तैं
चोरी खाते छाँछ, नैन भरि लेत गहे तैं
देत उरहनो रावरैं, बछरा-दाँवरि जोरि
जननी ऊखल बाँधती, हमहीं देतीं छोरि
कहति व्रज नागरी २०

बालक रूप अजान, कहा काहू पहिचानै
अनऊतर कोउ कहै, भली अनभली न मानै
वह दिन सुमिरो आपनो, न्हात जमुन कैं पानि
जब सब मिलि हाहा करी, वस्त्र हरचौ मैं जानि
कहत नँद लाड़िले २१

बहुत भए हो ढीठ, देत मुख ऊपर गारी
जिहिं छाजै तिहिं कहो, इहाँ को दासि तुम्हारी
तुमसौं अब दधि कारनैं, कौन बढ़ावै रारि
या बन मैं इतरात हो, रोकि पराई नारि
कहति व्रज नागरी २१

लियौ उपरना छीनि, दूरि डारनि अँटकायौ
दियौ सखनि दधि बाँटि, माँट पुहुमी ढरकायौ
फेंट पीत पट साँवरे, कर पलास कैं पात
हँसत परस्पर ग्वाल सब, विमल विमल दधि खात
आपु नँद लाड़िले २३

कान्ह बहोरि न देहु, दही काहै कौं माते
बसियै एकहिं गाउँ, कानि राखति हैं ताते
तब न कछू बनि आइहै, जब विरुझैं सब नारि
लरिकनि कैं बर करत यह, धरिहैं लाड़ उतारि
कहति व्रज नागरी २४

गहि अंचल झकझोरि, तोरि हारावलि डारी
मटुकी लई उतारि, भोरि भुज कंचुकि फारी
गुपुत सैन दै साँवरैं, कामरि धरी दुराइ
वा कमरी के कारनैं, अभरन लेउ छिनाइ
कहत नंद लाड़िले २५

झीनी कामरि काज, कान्ह ऐसे नहिं हूजै
काँच पोत गिरि जाइ, नंद-घर गथौ न पूजै
झटकि लई कर-मुद्रिका, नासा-मुक्ता गोल
इक मुँदरी कौ होइगौ, कान्ह तिहारौ मोल
कहति व्रज नागरी २६

सिव विरंचि सनकादि, आदि तिनहूँ नहिं जानी
सेस सहसफन थक्यौ, निगम कीरतिहिं बखानी
तेरी सौं सुनि ग्वालिनी, यह मेरे मन माहँ
भुवन चतुर्दस देखियै, वा कमरी की छाँह
कहत नँद लाड़िले २७

जाहि इतौ परताप, गाइ सो काहैं चारै
पर दारा कैं जाइ, आपु कत लज्जा हारै
घर के बाढ़े रावरे, बातैं कहत बनाइ
गारनि पै लै खात हैं, जूठी छाक छिनाइ
कहति व्रज नागरी २८

देव रूप सब ग्वाल, करत कौतूहल न्यारे
गोकुल गुप्त विलास, सखा, सब संग हमारे
इहिं वृन्दावन ग्वारिनी, तिन कित अम्मृत बेलि
तहूँ लोक मैं गाइयो, मेरे रस की केलि
कहत नँद-लाड़िलो २९

अब लौं कीन्हीं कानि, कान्ह अब तुमसौं लरिहैं
अवर नयन रिस कोपि, विरचि अनउत्तर करिहौं
मो आगे कौ छोहरा, जीत्यौ चाहै मोहिं
काके बल इतरात हौ, देहि न नख भरि तोहिं
कहति व्रज नागरी ३०

चितै बदन मुसुकात, हाथ दधि पूरन दोना
इत सुन्दरी विचित्र, उतै घनस्याम सलोना
अति तामस तोहिं ग्वारिनी, मैं जानत सब आदि
खोटी करनी जाहिकी, सोई करै उपाधि
कहत नंदलाड़िलो ३१

हठ छाँड़ो नँदलाल, दान तुमकौं नहिं दैहैं
विना कहैं ब्रज-लोग, कहा काहूँ पतियैहैं
लाज नहीं तुम आवई, बोलत हो सतराइ
कहूँ कस सुनि पाइहै, गहत फिरोगे पाइ
कहति ब्रज नागरी ३२

सुनत हँसे नँदलाल, ग्वारि जिय तामस मान्यौ
सींच्यौ अम्मृत बैन, कोप करसत, नहिं जान्यौ
कहाँ बसति हौ नागरी, सो पुर मुग्ध गँवार
ब्रज-वासी कह जानहीं, तामस को व्यवहार
कहत नँद लाड़िले ३३

जनमत जननी तजी, तात-कुल-धर्म नसायौ
नंद-गोप-गृह आइ, पुत्र कौ नाम धरायौ
इनिन सौं एती कियौ, खाटी छाछ पियाइ
तुमहिं दोष नहिं लाड़िले, ओछो गुन क्यों जाइ
कहति ब्रज नागरी ३४

अविगत अगम अपार, आदि नाहीं अविनासी
परम पुरुष अवतार, तिनहिँ की माया दासी
तुमहिँ मिलें ओछे भए, कहा रही धरि मौन
तुम्हरेहिँ आगैं न्याव है, द्वै मैं ओछौ कौन
कहत नँद लाड़िले ३५

हमहिँ ओछाई यहै, कान्ह तुमकौं प्रतिपाले
तुम पूरे सब भाँति, मातु पितु संकट घाले
कहा चलत उपराबटे, अजहूँ नहीं खिसात
कंस सौंह दै पूछियै, जिनि पटके हैं सात
कहति ब्रज नागरी ३६

कंस-केसि निग्रहौं, पुहुमि कौ भार उतारौं
उग्रसेन सिर छत्र, चमर अपनैं कर ढारौं
मथुरा सुरनि बसाइहौं, असुर करौं जम-हाथ
दनुज-ध्वन विरुदावली, साँची त्रिभुवन-नाथ
कहत नंद लाड़िले ३७

तब न कंस निग्रह्यो, पुहुमि कौ भार उतारयौ
चोरी जायौ मातु-गोद, गोकुल पग धारयौ
अब बहुतै बातैं कहौ, दही दूध कैं घात
जौ ऐसे बलवंत हौ, क्यौं न मधुपुरी जात
कहति ब्रज नागरी ३८

जो जैहौं मधुपुरी, बहुरि गोकुल नहिँ ऐहौं
यह अपनो परताप, नंद-जसुदा न दिखैहौं
बचन लागि मैं है कियौ, जसुमति कौ पय पान
मोहिँ ग्वार जिनि जानहू, ग्वारिनि सुनौ निदान
कहत नँद लाड़िले ३९

हम ग्वारिनि, तुम तरुन, रूप छवि रवि ससि मोहैं
तिहूँ लोक परताप, छत्र सिंहासन सोहै
भई गर्व गत ग्वालिनी, चित्र लिखी तिहिँ काल
हम अहीरि ढीठो कियौ, जै जै मदन गुपाल ४०

बहुत दिननि तैं कान्ह, दह्यौ इहिं मारग ल्याइं
तुम देखत नँदलाल, बहुत हम दई खिलाई
कान्ह विलग जिनि मानिए, राखि पाछिलौ नेहु
दूध दही की को गिलै, जो भावै सो लेहु ४१

धन्य नंद कौ गेह, धन्य गोकुल जहँ आए
धन्य गोकुल की नारि, जिन्हैं तुम रोकन धाए
धनि धनि झगरौ आजु कौ, इहिं सुख नाहिंन पार
नंद-नँदन पर कीजियै, तन-मन-धन बलिहार ४२

तब दधि आगैं धरयौ, कान्ह लीजे जो भावै
खाइ जाइ मंजार, काज एकौ नहिं आवै
हम अनखीं या बात कौं, लेत दान कौ नाउँ
सहज भाव रहौं लाड़िले, बसत एक ही गाउँ
कहति ब्रज नागरी ४३

अभरन दियौ मँगाइ, कियौ गोपिनि मन भायौ
हिलि मिलि बढ़यौ सनेह, आपु कर माट उठायौ
नंद-नँदन छवि देखि कै, गोपिनि वारयौ प्रान
कुंज-केलि मन मैं बसी, गायौ सूर सुजान ४४
—सूरसागर सभा संस्करण,
दशमस्कंध पद १६१८

६ मान सागर

'मान लीला' को डा० दीनदयाल गुप्त सूरसागर का अंश मानते हैं। वे कहते हैं—

'सूर की मान लीला नामक पुस्तक का वही लम्बा पद लेखक ने नाथ द्वार पुस्तकालय में सूरदास-कृत 'राधा रस केलि कौतूहल' नाम की पुस्तक रूप में देखा है। राग सारंग के अन्तर्गत 'मान मनावौ राधा प्यारी' टेक का लंबा पद है। इसीको सूरदास का 'मान सागर' भी कहा जाता है। नाथ द्वार की इस प्रति के

अन्त में लिखा है —'इति सम्पूर्ण मान सागर'। किन्तु संवत १९९९ कार्तिक मास की 'ब्रजभारती' में पंडित जवाहर लाल चतुर्वेदी ने मान सागर को निकाला है। यह रचना सूरसागर (वेंकटेश्वर प्रेस) पृष्ठ ४०६—४१२ पर दी हुई है। इस प्रकार उक्त वर्णन से यही निष्कर्ष निकलता है कि सूरसागर के बहुत से प्रसंगों को लोगों ने सूरसागर से निकाल कर अलग ग्रंथ मान लिया है।''

—अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय, पृष्ठ ८३—८४

डा० प्रभु दयाल मीतल का खयाल है कि महाकवि सूरदास ने मान सम्बन्धी लगभग २०० पद रचे हैं। इनसे संबंधित कुछ छोटे-बड़े संकलन पृथक रूप में हस्तलिखित एवं मुद्रित दोनों प्रकार के उपलब्ध हैं। इसी प्रकरण में वे आगे लिखते हैं—

''मान लीला का एक बड़ा पद 'मान सागर' के नाम से हस्तलिखित और मुद्रित दोनों रूपों में मिलता है। यह पद ना० प्र० के सूरसागर में पद संख्या २८२६ (३४४४) पर है। इसकी आरंभिक टेक है—मानि मनायौ राधा प्यारी।' इसके अन्त में यह फल श्रुति भी है, जो इसके स्वतंत्र रूप की परिचायक है—

राधा कृष्ण केलि कौतूहल, स्रवन सुनै जो गावै
तिनके सदा समीप स्याम, नित ही आनन्द बढ़ावै
कबहुँ न जाहि जठर पातक, जिनकौं यह लीला भावै
जीवन मुक्त 'सूर' सो जग में, अन्त परम पद पावै

इससे ज्ञात होता है कि 'मान सागर' का अन्य नाम 'राधा कृष्ण केलि कौतूहल' भी है।

—सूर सर्वस्व, पृष्ठ १०३

'मान सागर' शीर्षक इस पद में कुल १७४ चरण हैं। टेक वाले प्रथम चरण को छोड़ शेष सभी चरण १६, १२ मात्राओं के विराम से २८ मात्राओं वाले सार छंद में हैं। 'राधा रस केलि कुतूहल' इससे भिन्न एक दूसरी रचना है।

मान सागर

२८२६।३४४४ राग मलार

दूती वचन राधा प्रति

मानि मनायौ राधा प्यारी
दहियत मदन मदन-नायक हैं, पीर प्रीति की न्यारी
तू जु भ्रुकुति ही औरन रूसत, अब कहि कैसै रूसी
बिनहीं सिसिर तमकि तामसतैं, तू मुख कमल विदूषी १

सुनियत बिरद रूप-रस-नागरि, लीन्ही पलट कछू सी
तेरैं हुती प्रेम - संपति सखि, सो संपति किहिं मूसी
उन तन चितै, आपु तन चितवहु अहो रूप की रासी
पिय अपनो नहिं होइ तऊ, जो ईस सेइयै कासी २

तू तो प्रान प्रानबल्लभ कैं, वै तुव चरन उपासी
सुनिहै कोऊ चतुर नारि, कत करति प्रेम की हाँसी
ज्यौं ज्यौं मौन गही तुम उनकैं बाढ़ी आतुरताई
कान्ह आन - बनिता रत, सुनि कै जिय पैठी निठुराई ३

हियैं कपाटु जोरि जड़ता के, बोलति नहीं बुलाई
हा राधा राधा रट लागी, चित - चातकी—कन्हाई
जो पै मान, तौ भाँवरि नाहीं, भाँवरि मान न होई
हिय तैं बादि प्रेम रितवति हौ, अंत भाव तौ सोई ४

जौ गोरी पिय-नेह-गरब, तौ लाख कहै किन कोई
काहू लियौ प्रेम कौ परचौ, चतुर नारि है सोई
कति ह्वै रही नारि नीची करि, देखति लोचन भूले
मानो कुमुद रूठि उडुपति सौ, सकुचि अधोमुख फूले ५

वै तुव हित बृषभानु-नंदिनी, सेवत जमुना-कूले
तेरैं तनक मान मोहन कै, सबै सयानप भूले
अहो इंदु-वदनी सुनि सजनीं, कत पलकनि पल जोरै
तुव मुख-दरस आस के प्यासे, हरि के नैंन चकोरै ६

तेरैं बल भामिनी कहत नहिं, उपजत काम-हिलोरे
कहियत हुते चतुर नागर, ते तनक मान भए भोरे"

दूती का जाकर कृष्ण को बुला लाना

तब दूती फिरि गई स्याम पैं, स्याम उहाँ पग धरियै
जिहिं हठ तजै प्रान प्यारी, सो जतन सबारैं करियै

वै वैसैं, तुम ऐसैं बैसे, कहौ काज क्यों सरियै
कीजै कहा चाड़ अपनी, कत, इहाँ मसूसनि मरियै"

अपनी चोप आप उठि आए, ह्वै रहे आगे ठाढ़े
भूलि गयौ सब चतुर सयानप, हुते जो बहु गुन गाढ़े ८

डोलत नहिं, बोलत न बुलाएँ, मनहु चित्र लिखि काढ़े
पर्यौ न काम नारि नागर सौं, हैं घरहीं के बाढ़े

दूती बचन राधा के प्रति

निबह्यो सदा और ही कौ हठ, यह जो प्रकृति तुम्हारी
आपुनहीं अधीन ह्वै ठाढ़े, देखि गोवर्धन धारी ९

प्रान पियहिं रूसन कहि कैसौ, सुनि वृषभानु दुलारी
कहूँ न भई, सुनी नहिं देखी, रहै तरंग जल न्यारी
रिस रूसनौ, मिलन पलकनि कौ, अति कुसुंभ रंग जैसौ
रहै न सदा, छुटत छिनु भीतर, प्रात ओस-कन तैसौ १०

वे हैं परम मलीन किए मन, उठि कहि मोहन बैसौ
घर आए आदर न चूकिए, बैठी दूध अँचै सौ
वै तो भँवर भावते बन के, और वेलि को तैसी
कीन्हौ मान मदनमोहन सौं, कीन्ही बात अनैसी ११

तुम जानहु के लाल तुम्हारौ, तुमहिं उनहिं है जैसौ
याही तैं अति गर्व भरी हो, वै ठाढ़े, तुम बैसी
जौबन-जल वर्षा की सरि ज्यौं, चारि दिना कौं आवै
अंत अवधि हीं लौं नातौ, जउ कोटिक लहर उठावै १२

वल्लभ कौ वल्लभ कौं मिलिबो, तुमहिं कौन समुझावै
लै चलि भवन भाव तेहिं भुज गहि, को कहि गारि दिवावै ।।

राधा-वचन

झुकि बोली, "ह्यां तैं ह्वै ह्यातो, कौनैं सिखै पठाई
लै किनि जाहि भवन अपनैं, ह्यां लरन कौन सौं आई १३

काँपति रिसनि, पीठि दै बैठी, सहचरि और बुलाई
कछु सीरी कछु ताती बानी, कान्हहिं "देति दुहाई
कबहुंक लै धरि दर्पन मोहन, ह्वै रहे आगैं ठाढ़ौ
पट अंतर नहिं बिंब निहारति, इतौ मान मन गाढ़ौ १४

तलफत फिरै, धरै नहिं धीरज, विरह अनल की डाढ़ौ
इत नागरी उतहिं वै नागर, इन बातनि कौ चाढ़ौ ॥

दूती वचन

बड़ौ बड़ाई कौं प्रतिपालै, बड़ौ बड़ाई छीजै
ताकैं बड़ौ बड़ो सरनागत, बैर बड़े सौं कीजै १५

तू वृषभानु बड़े की बेटी, तेरे ज्याएँ जीजै
जद्यपि बैर हिये मैं है री, बैरिहिं पीठ न दीजै
भामिनि और भुजंगिनि कारी, इनके विषहिं डरैयै
राँचेहू बिरचैं सुख नाहीं, भूलि न कबहुँ पत्यैयै १६
इनके बस मन परैं मनोहर, बहुत जतन करि पैयै
कामी होइ काम आतुर, तिहिं कैसैं कै समुझैयै
जे जे प्रेम छकैं मैं देखे, तिनहिं न चातुरताई
तेरैं मान सयान सखी, तोहिं कैसैं कै समुझाई १७

परिहै क्रोध-चिनगि भाँवरि मैं, बुझिहै नहीं बुझाई
हौं जु कहति, तैं बादि बावरी, तृन तैं आगि उठाई ॥

दूती रूप में कृष्ण वचन

बहुरो भए सहचरी मोहन, ताकि आपनी घातैं
लागे कान सखी के, धोखैं कहत कुंज की बातैं १८
सुधि करि देखि रूसनौ उनकौ, जब खाई हाहा तैं
आपु पीर, पर पीर न जानति, भूली जोबन नातैं
कबहुँ न भयौ, सुन्यौ नहिं देख्यौ, तनु तैं प्रान अबोले
होत कहा है आलसहूँ मिस, छिनु घूँघट पट खोले १९
पावति कहा मान मैं तू री, कहा गँवावति बोले
काल्हिहिं प्राननाथ तुम प्यारी, फिरिहौ कुंजनि डोले
कहा रही अति क्रोध हियैं धरि, नैंकु न दया दयानी
प्रगटे जानि मदनमोहन सैं, बात बात अधिकानी २०
हित की कहैं अनख लागति है, समुझहु भलैं सयानी
मन की चोप मान कीजत कह, थोरैंही गरबानी
रही मूँदि पट सौं हठि भामिनि, नैंकु न बदन उघारै
हरि-हित-वचन रसाल, कठिन पाहन ज्यौं बूँद उतारै २१

धरे ग्रीव पट सन्मुख ठाढ़े, नैंकु न कोप निवारै
जिहिं आधीन देव सुर नर मुनि, सो दीनता पुकारै
खन गावै, खन बैनु बजावै, कमल-भृंग की नाईं
खन पाइनि तन हाथ पसारै, छुवन न पावै छाईं २२

खन हीं लेहिं बलाइ बाम की, लालच करि ललचाईं
कहै आन की आन सौंह दै, खन-खन हा हा खाई
कबहुँक निकट बैठि कुसुमावलि, अपनैं कर पहिरावै
जोइ जोइ बात भावतिहिं भावै, सोइ सोइ बात चलावै २३

जितहिं जितहिं रुख करै लड़ैती, तितही आगुन आवै
नाचत जाकैं डर त्रिभुवन, तिहिं नैंकुहुं मान नचावै
जिन नैननि देखत दुख भूले, ते दुख नैन समोवै
जो मुख कमल सुखनि को दाता, सो मुख नैंकु न जोवैं २४

जिहिं ललाट त्रिभुवन को टीको, सो पाइनि तन सोवै
रांचहिं जाहि सनक अरु संकर, विरुचे ताहि बिगोवै
एते मान भए बस मोहन, बोलत कछुक डराई
दीपक-प्रेम क्रोध-मारुत छिनु परसत, जनि बुझि जाई २५

तातैं करि हरि छल दूती को, कहत बात सकुचाई—
"कपटी कान्ह पत्याहि न राधे, तोहिं वृषभान-दुहाई
पठई मोहिं देइ उर-माला, जहाँ कहूँ रति मानी
हौं बहराइ इतहिं आई री, आली तोहिं डरानी २६

काहे कौं रूसनो बदयौ है, मोसौं कहौ कहानी"
नव नागर पहिचानि राधिका, इहिं छल अधिक रिसानी
जानिय कहा कौन अपराधिनि, आनि कान है लागी
सुनि सुनि उठी सुंदरी कैं जिय, प्रगट कोप की आगी २७

जद्यपि रसिक रसाल रसीली, प्रेम-पियूषनि पागी
किती दई सिख मंत्र सावरैं, तउ हठ-लहरि न भागी
कहियै कहा नंदनंदन सौं, जैसैं लाड़ लड़ाई
कौन न भई मानिनी उनसौं, एतै मान मनाई २८

राधा-वचन

नव नागर तबहीं पहिचानी, नागरि-नागरताई
इन छँद बंदनि छंदै पैयें, प्रेम न पायो जाई
हारे बल अबला सौं मोहन, तजति न पानि कपोलै
मानहुँ पाहन की प्रतिमा सी, नैंकु न इत उत डोलै २९

दूती-वचन

इन घोसनि रूसनो करति है, करिहै कबहिँ कलोलै
कहा दियौ पढ़ि सीस स्याम कैं, खींचि आपनो सो लै
तोहिँ हठ परयौ प्रानवल्लभ सौं, छूटत नहीं छुड़ायो
देखहु मुरछि परयौ मनमोहन, मनहुं भुअंगिनि खायो ३०

काहे कों अपराध लेति है, करति काम को भायो
नैंकु निरखि उठि कुँवर राधिका, जो चाहति है ज्यायो
बहुरो लियो जगाइ मनोहर, जुवतिनि जतन उपायो
विरह ताप बर दाप हरन कौं, सरस सुगंध चढ़ायो ३१

जिते करे उपचार, मनहु लै जरत माँझ घृत नायो
काम अग्नि तैं बिना कामिनी, कहि कौनैं सचु पायो
जिनके हित तू त्रिभुवन गाई, ठकुराइनि करि पूजी
जिनकै अंग संग सुख विलसति, वन नायक ह्वै कूजी ३२

अनुदिन-काम विलास विलासिनि, वै अलि तू अंबूजी
ऐसें पिय सौं मान करति है, तो सी मुग्ध न दूजी
मेरो कह्यो मानती नाहिँन, ह्याँ अरु कौन कहैगो
राखत मान तिहारो मोहन, एतो कौन सहैगो ३३

जानहुगी तब मानहुगी मन, तब तनु काम दहैगो
करिहो मान मदनमोहन सौं, मानैं हाथ रहैगो

राधा-वचन

नख लिखि कह्यो जाहु तहँई उठि, जाकैं हाथ बिकाने
राँचे रहत रैनि दिन माधव, हरद-चून ज्यौं साने ३४

मुख मेरो हो मान मनावत, मन खनतहिं रुचि माने
गावत लोग विरद साँचोई, हरि-हित कौन सिराने

कृष्ण-वचन

तुम मम तिलक, तुमहिँ मम भूषन, तुमहिँ प्रान-धन मेरैं
हौं सेवक सरनागत आयौ, जानहु जतन घनेरैं ३५

तेरी सौं वृषभानु नंदिनी, एक गांठि सौ फेरैं
हित सौं बैर, नेह अनहित सौं, इहै न्याउ है तेरैं

राधा-वचन

पर-धन-रमन, दमन दावागिनि, डोलनि कुंजनि माहीं
चारन धेनु, फेन मथि पीवन, जीवन भरयौ वृथाहीं ३६

हासन काँध, कामरी ओढ़न, बैठन गोप-सभाहीं
भूषन मोर-पखौवनि, मुरली, तिनकैं प्रेम कहाँ ही

मोहन-वचन

प्रेम पतंग परैं पावक मैं, प्रेम कुरंग बँधे से
चातक रटै, चकोर न सोवै, मीन बिना जल जैसे ३७

जहाँ प्रेम तहँ मान न मानिनि, प्रेम न रखिये ऐसे
प्रेम माहिँ जो करहिं रूसनो, तिनहिं प्रेम कहि कैसे ?
काँपति रिसति, पीठि दै बैठी, मनि माला तन हेरो
निरखि आपु आभास सयानी, बहुरि नैन रुख फेरो ३८

लिए फिरत उर माँझ दुराए, जानत लोग अँधेरो
एते मान भावती, तौ कत मान मनावन मेरो
तेरी सौं आभास तिहारो, इहाँ और को जोहै
दै दरसन मनि धरयौ पाइ तर, देखि दुहुँनि मैं को है ३९

बिनु अपराध दास कौं त्रासैं, ठाकुर कौं सब सोहै
निरखि-निरखि प्रतिबिंब वहै तन, नैन नैन मिलि सोहै
नैंकु भौंह मुसुकात जानि, मनमोहन मन सुख आन्यौ
मानो दव-द्रुम जरत आस भइ उनयो अंबर पान्यौ ४०

जो भाई सो सौंह दिवाई, तब सूधौं मन मान्यौ
दियौ तमोर हाथ अपनें करि, तब हरि जीवन जान्यौ

राधा-माधव-मिलन

हँसि करि कह्यौ, चलौ हरि कुंजन, हौं आवति हौं पाछैं
जो न पत्याहु जाहु मुरली धरि, हमहिं तुमहिं है साछैं ४१

लकुटी मुकुट, पीत उपरैना, लाल काछनी काछैं
गो-दोहन की बेर जानि, सँग लिए बछरुवा आछैं
सघन कुंज अलि पुंज, तहाँ हरि किसलय सेज बनाई
आतुर जानि मदनमोहन-तन, काम केलि चलि आई ४२

हँसि गोपाल अंक भरि लीन्हीं, मनहुँ रंक निधि पाई
अति रस रीति प्रीति पिय प्यारी, छूटत नहीं छुटाई
आलिंगन चुंबन परिरंभन, दियौ सुरति-रस पूरौ
छिटकि रहीं स्रम बूँद बदन पर, अरु पाँइनि खुभि-चूरौ ४३

मुख के पवन परस्पर मुख तक, गहे पानि पिय जूरौ
बुझत जानि मन्मथ-चिनगी फिरि, मानौ देत मरूरौ
आलस मगन, वदन कुम्हिलानौ, बाला निर्बल कीनी
थकित जानि मनमोहन, भुज भरि, तिया अंक गहि लीनी ४४

गोरें गात मनोहर उरजनि, लसति कंचुकी भीनी
मनु मधु कलस स्यामताई की, स्याम छाप सी दीनी
इत नागरी, नवल नागर उत, भिरे सुरति-रन दोऊ
नैन-कटाच्छ बान, असि बर नख, बरसि सिराने वोऊ ४५

टूटे हार, कंचुकी दरकी, घायल मुरे न कोऊ
प्रगट्यो तरनि बीच करिबे कौं, लाज लजाने दोऊ
इहिं उर रहत पितंबर ओढ़े, कहा कहौं चतुराई
अब जनि कहै, हिये मैं को है, बहुरि परै कठिनाई ४६

भुरयौ काम, प्रेमहूँ भुरयौ, भुरई बैस भुराई
पति अरु प्रिया प्रगट प्रतिबिंबित, ज्यौं दरपन मैं झाईं
कर जोरे बिनती करै मोहन, कहौ पाँइ सिर नाऊँ
तेरी सौं वृषभानु-नंदिनी, अनुदिन तुव गुन गाऊँ ४७

हौं सेवक निज प्रानप्रिया कौ, कहौ तौ पत्र लिखाऊं
अब जनि मान करौ तुम मोसौं, यहै मौज करि पाऊं
हँसि करि उठि प्यारी उर लागी, मान मैं न दुख पायौ ?
तुम तन दियौ आन बनिता, तौ मैं मन मान लगायौ ४८

लै बलाइ, उर लाइ अंक भरि, पछिलौ दुख बिसरायौ
स्याम मान है प्रेम-कसौटी, प्रेमहिँ मान सहायौ
छूटे बंद, छुटी अलकावलि, मरगजे तन के बागे
अंजन अधर, भाल जावक रंग, पीक कपोलनि पागे ४९

बिनु गुन माल, पीठि गड़े कंकन, उपटि परै उर लागे
रसिक राधिका के सुख कौ सुख, बिलसे स्याम सभागे
नवल गुपाल, नवेली राधा, नए नेह बस कीने
प्राननाथ सौं प्रानपियारी, प्रान पलटि से लीने ५०

विविध विलास कला रस की विधि, उभय अंग परबीने
अति हित मानि, मान तजि मानिनि, मनमोहन सुख दीने

फलश्रुति

राधा-कृष्ण-केलि-कौतूहल, स्रवन सुनैं, जो गावैं
तिनकैं सदा समीप स्याम, नितहीं आनंद बढ़ावैं ५१
कबहुँ न जाहिँ जठर पातक, जिनकौं यह लीला भावैं
जीवन मुक्त सूर सी जग मैं, अंत परम पद पावैं ५२

———

७—राधा-रस-केलि कौतूहल

डा॰ दीनदयाल गुप्त एवं डा० प्रभुदयाल मीतल दोनों 'मानसागर' और 'राधा-रस-केलि-कौतूहल' दोनों को एक ही ग्रंथ के दो नाम मानते हैं। मैं इन्हें दो ग्रंथों का सूचक मानता हूँ। दोनों एक ही एक लंबे पद हैं। मैं सभा सूरसागर के पद २८२८/३४४६ को 'राधा रस केलि कुतूहल' मानता हूँ। यह चौपाई छंदों में विरचित है। इसमें बीच बीच में दोहा और सोरठा के युग्म भी प्रयुक्त हैं। इसमें ऐसे कुल ५ कड़वक हैं। इसमें भी ग्रंथांत में फलश्रुति हैं—

छंद—यह मान-चरित पवित्र हरिको, प्रेम सहित जु गावहीं
सब करहिं आदर मान तिनको, संत जन सुख पावहीं

दोहा—राधा रसिक गुपाल को, कौतूहल रस केलि
ब्रजवासी प्रभु जननि कौं, सुखद कामतरु बेलि

सोरठा—सुफल जन्म है तासु, जे अनुदिन गावत सुनत
तिनकौं सदा हुलास, सूरदास प्रभु की कृपा

प्रभुदयाल जी मीतल को 'राधा रस केलि' नामक सूरसागर के केलि संबंधी पदों का एक मुद्रित संग्रह भी मिला है।

दूसरी गुरु मान लीला

२८२८/३४४६

सखिनि संग बृषभानु किसोरी। चली न्हान प्रातहिं उठि गोरी
जाकैं घर निसि बसे कन्हाई। ता घर ताहि बुलावन आई
ठाढ़ी भई द्वार पर जाई। कढ़े तहाँ तैं कुँवर कन्हाई
औचक मिले न जानत कोऊ। रहे चकित इत उत हैं दोऊ
फिरी सदन कौं तुरतहिं प्यारी। न्हान जान की सुरति बिसारी
भई विकल मन रिस अति बाढ़ी। रहि गईं सखी निरखि सब ठाढ़ी
रहि गए ठाढ़े स्याम ठगे से। सकुचाने उर सोच पगे से
जब देखे हरि अति मुरझाए। तब सखियनि गहि भुज समुझाए

उलटि भई सब हरि की धाई। दैके बाँह तिया जहँ ल्याई
देखी स्याम आइ जहँ राधा। बैठी मान [दृढ़ाइ अगाधा
रिसही कैं रस मगन किसोरी। भई स्याम मति देखत भोरी
ठाढ़े चकित चित्त अकुलाहीं। मुख तैं बचन कहे नहिं जाहीं

दोहा—व्याकुल लखि नँदलाल कौं, सखियन कियौ बिचार
अब दोऊ जैसे मिलैं, करिऐ सो उपचार

सोरठा--अति रिस नारि अचेत, को सुनिहै, कासौं कहैं
इत ये धरत न चेत, परी रुठावनि-बानि इन

प्यारी निकट गईं सब आली। ठाढ़े पौरि रहे बनमाली
कहत मान कीन्हौं तैं प्यारी। न्हान जान तैं फिरी कहा री
तोहि लखत ही री गिरिधारी। अतिहि डरे तन सुरति बिसारी
मुरछि परे धरनी अकुलाई। तरु तमाल जनु गयौ झुराई
तैं ऐसैं चितयौ कछु बिनकौं। नैंकहुँ चैन रह्यौ नहिं तिनकौ
तेरे नैन अरी अनियारे। किधौं बान खरसान सँवारे
भौंह कमान तानि यौं मारे। क्यौं करि राखैं प्रान पियारे
घायल जिमि मूर्छित गिरिधारी। अमी वचन अब सींचि पियारी
बहुनायक वै तू नहिं जानै। तिनसौं कहा इतौ दुख मानै
बाहँ गहैं हरिकौं ढिग ल्यावैं। अब वै निज अपराध छमावैं
गहति बाँह तुमही किन जाई। मोसौं बाहँ गहावन आई
काल्हिहि सौंह मोहि उनि दीनी। आजुहि यह करनी पुनि कीनी

दोहा—देखि चुकी उनके गुननि, निज नैननि सुख पाइ
तिन्हें मिलावति मोहिं अब, बाँह गहावति आइ

सोरठा—मिलौं न तिनसौं भूल, अब जौंलौ जीवन जियौं
सहौं विरह कौ सूल, बरु ताकी ज्वाला जरौं

मैं अब अपनै मन यह ठानी। उनके पंथ न पीवौं पानी
कबहूँ नैन न अंजन लाऊँ। मृगमद भूलि न अंग चढ़ाऊं
हस्त बैलय, पट नील न धारौं। नैननि कारे घन न निहारौं
सुनौं न स्रवननि अलि पिक बानी। नील जलज परसौं नहिं पानी
सुनत प्रिया की बात सुहाई। हरषत ठाढ़े पौरि कन्हाई

सखी कहति यौं हठ नहिँ लीजै। हरि सौं ऐसो मान न कीजै
तू है नवल, नवल गिरिधारी। यह जोबन है ही दिन चारी
छिनु छिनु ज्यौं कर कौं जल छीजै। सुनि री याको गर्व न कीजै
नँदनंदन-मुख-ससि सुखकारी। तू करि नैन चकोर पियारी
हुतौ प्रेम धन तौ यह भारी। सो अब कहि तैं कियौ कहा री
कहति हुते रूसौं नहि कबहीं। सो अब रूसति तैं जब तबहीं
सुनिहै सुघर नारि जो कोई। करिहै हँसी प्रेम की सोई

दोहा—मान कियौ जिहि भावतैं, सो न भावतौ होइ
उर तौ रितवत प्रेम कत, अंत भावतौ सोइ

सोरठा—लाख कहौ किन कोइ, पिय सनेह जो गोइहै
चतुर नारि है सोइ, लिये प्रेम परचौ किनहु

तुम वै एक, न दोइ, पियारी। जल तैं तरँग होइ नहि न्यारी
रिस रूसनौं ओस-कन जैसो। सदा न रहै चाहियै तैसो
तजि अभिमान मिलहि पियप्यारी। मानि राधिका कही हमारी
चुप न रहति, कह करति मनावन। तुम आई हौ बात बनावन
बहुत सही, घर आई यातैं। सुरति दिवावति पिछली बातैं
मोसों बात कहति हौ काकी। जाहु घरनि अब कछु है बाकी
को उनकी ह्यां बात चलावत। हैं वै अब तुमहीं कौं भावत
तुम पुनीत अरु वै अति पावन। आई हौ सब मोहि मनावन
यह कहि रही रोस भरि भारी। गई सखी तब जहँ बनवारी
कह्यौ जाई हरि सौं हरुवाई। आजु चतुरई कहाँ गँवाई
बिनु निज जंघनि चलहि लला रे। कैसैं चहत कियौ सुख प्यारे
हौ मनमोहन तुम बहुनायक। नागर नवल सकल गुन लायक
तब बोले हरि दोउ कर जोरी। तेरी सौं वृषभानु किसोरी
तूही हित नित जीवन मोकौं। सदा करत आराधन तोकौं
तू मम तिलक तुही आभूषन। पोषन तेरे बचन पियूषन
तेरोई गुन मै निस दिन गाऊँ। अब तजि मान हृदय सुख पाऊँ
कर जोरे बिनती करि भाख्यौ। कहत सीस चरननि पर राख्यौ
यह सुनि कछु प्यारी मुसकानी। तब बोली उठि सखी सयानी

सुनहु स्याम तुम हो रस-सागर । रूप-सील-गुन-प्रीति-उजागर
तुम तैं प्रिया नैंकु नहिं न्यारी । एक प्रान द्वै देह तुम्हारी
प्यारी मैं तुम, तुम मैं प्यारी । जैसैं दरपन छाँह बिहारी
रस मैं परे विरस जहँ आई । होइ परति तहँ अति कठिनाई
अब कैं हम सब देति मनाई । परसौ प्यारी-चरन कन्हाई
अब रुठाइहौ जौ गिरिधारी । राम राम तौ बहुरि हमारी

दोहा—जब परसे प्यारी चरन, परम प्रीति नँदनंद
छुट्यौ मान, हरषी प्रिया, मिट्यो बिरह दुख द्वंद

सोरठा—उर आनंद बढ़ाइ, प्रेम-कसौटी कसि पियहिं
अवगुन मन बिसराइ, मिली प्रिया उठि स्याम सौं

हरषि मिले दोउ प्रीतम प्यारी । भई सखी सब निरखि सुखारी
तब दोउ उबटि सखी अन्हवाए । रुचिर सिंगार सिंगारि बनाए
मधुर मिष्ट भोजन मन भाए । दोउनि एकैं थार जिमाए
दिए पान, अँचवन करवाए । सुमन-सुगंध-माल पहिराए
लै बीरी अपनैं कर प्यारी । दीन्हीं बिहँसि वदन गिरिधारी
तबहिं सुफल हरि जीवन जान्यौ । परम हरष उर अंतर आन्यौ
निति बैठे दोउ प्रीतम प्यारी । तब सखियन आरती उतारी
अति आनंद भरे दोउ राजैं । अरस परस निरखत छवि छाजैं
पाए बस करि कुंज बिहारी । विहँसि कह्यौ तब पिय सौं प्यारी
सुनहु स्याम बरषा रितु आई । रचहु हिंडोरौ सुभ सुखदाई
है मन पिय यह साध हमारैं । सब मिलि झूलहिं संग तुम्हारैं
सुनि तिय बचन स्याम सुख पायौ । ऐसैं करि हरि मान छुड़ायौ

छंद—तिय मान हरि ऐसैं छुड़ायौ, भक्त-हित लीला करी
कहै निगम नेति अपार गुन सुख सिंधु नटनागर हरी
यह मान चरित पवित्र हरि कौ, प्रेम सहित जु गावहीं
सब करहिं आदर मान तिनकौ, संत जन सुख पावहीं

दोहा—राधा रसिक गुपाल कौ, कौतूहल रस केलि
ब्रजवासी प्रभु जननि कौं, सुखद काम-तरु-बेलि

सोरठा—सुफल जन्म है तासु, जे अनुदिन गावत सुनत
तिनकौं सदा हुलासु, **सूरदास** प्रभु की कृपा

———

ग. खोज रिपोर्ट में प्राप्त २२ ग्रंथ

८. महादेव लीला

महादेव लीला के सम्बन्ध में डा० प्रभुदयाल मीतल लिखते हैं—

"सूरदास ने महादेव जी के गोकुल जाने और वहाँ के नंदालय में बालकृष्ण के दर्शन करने का मनोरम कथन किया है। उससे सम्बन्धित उनके पद सूरसागर की हस्तलिखित एवं मुद्रित प्रतियों में मिलते हैं। इसी विषय पर एक पद बड़ा प्रसिद्ध है, जिसकी आरंभिक टेक है—

मैं जोगी जस गाया रे बाबा, मैं जोगी जस गाया

इसी पद को 'महादेव लीला' के नाम से स्वतंत्र पुस्तिका के रूप में प्रकाशित भी किया जा चुका है।"

—सूर सर्वस्च १७१

सभा की खोज में भी महादेव लीला वाला यह पद प्राप्त हो चुका है—खोज रि० १९२६। ४७१ ई०। प्राप्ति स्थान राम अधार मिश्र, ग्राम ग्राम नगर, डाकघर—लखीमपुर, जिला खीरी। यह दो पन्ने का ग्रंथ है। खोज रिपोर्ट में यह पद आदि और अन्त करके दो खंडों में समग्रतः अवतरित है।

यह पद राग रत्नाकर में भी है। प्राप्त हस्तलेख में अंत में कुछ अंतर है, कुछ चरण अधिक भी है। आचार्य पं० सीताराम जी चतुर्वेदी ने सूर ग्रंथावली में इसे सन्निविष्ट कर लिया है—पद ५३३२।

महादेव लीला

मैं जोगी जस गाया रे बाबा, मैं जोगी जस गाया।
तेरे सुत के दर्शन कारन, मैं काशी से आया
पारब्रह्म पूरन पुरुषोत्तम, सकल लोक जा माया
अलख निरंजन देखन कारण, सकल लोक फिरि आया।
धनि धनि तेरो भाग्य जसोदा, जिन ऐसो सुत जाया
गुनन बड़े, छोटे मत भूलो, अलख रूप धरि आया

जो भावै सो लीजे रावर, करो आपनी दाया
देहु असीस मेरे बालक को, अविचल बाढ़े काया
ना मैं लैहौं पाट पटंबर, ना मैं कंचन माया
मुख देखूं तेरे बालक को, यह मेरे गुरु ने लखाया
कर जोरे विनवैं नंदरानी, सुन जोगिन के राया
काला पीला गौर रूप है, बाघम्बर ओढ़ाया
कहुँ डाकन की दृष्टि लगेगी, बालक जात डराया
जाकी दृष्टि सकल जग ऊपर, सो क्यों जात दिठाया
तीन लोक का साहेब मेरा, तेरे भवन छिपाया
कृष्ण लाल को लाइ जसोदा, करि अंचल मुख छाया
कर पसारि चरनन रज लीन्हो, शृंगी नाद बजाया
अलख-अलख कर पाँव छुवे हैं, हंसि बालक किलकाया
पांच बेर परिकर्मा करिके, अति आनंद बढाया
हरि की लीला, हर मन अटक्यो, चित नहिं चलत चलाया
अलख ब्रह्मांड कोटि के नायक, नंद-घरहिं प्रगटाया
इंद्र चंद्र सूरज सनकादिक, सारद पार न पाया
लागि श्रवण मंत्र दीन सुनाई, हँसि बालक मुसकाया
कौन देस के जोगी हो तुम, कौन नाम धर आया
कहाँ बास यह कहत जसोदा, सुन जोगिन के राया
तुम ही ब्रह्मा, तुमही विष्णू, तुमही ईस कहाया
तुम विस्वंभर, तुम जग पालक, तुमही करत सहाया
चिरजीवी सुत महरि तिहारो, हौं जोगी सुख पाया
सूरदास मिलि चल्यो रावरो, संकर नाम बताया

———

६ प्राणप्यारी, राधा मंगल, ब्याहलो

प्राण प्यारी, राधा मंगल और ब्याहलो एक ही ग्रन्थ के तीन नाम हैं। इसमें खेल ही खेल में राधा कृष्ण के बिवाह का वर्णन है। यह सात बंदों का एक बड़ा पद है। वैशिष्टय यह है कि प्रत्येक बंद के अंतिम चरण में कवि की छाप 'सूर' है। इससे यह सात पदों का समुच्चय भी समझा जा सकता है। बंद में दो अंश है। प्रथम अंश चौपाई छन्द में है। प्रथम बंद के प्रारम्भ में चौपाई छन्द के छह चरण

है, शेष बंदों में चार-चार चरण। बंदों के द्वितीय अंश हरिगीतिका छन्द में हैं। इनमें भी चार-चार चरण हैं। प्रथम अंश के अंतिम चरण का कुँडलीचरण द्वितीय अंश के प्रथम चरण के पूर्वार्द्ध में हुआ है। सभा की खोज में विभिन्न नामों से इस ग्रन्थ के कई हस्तलेख मिले हैं।

१. **प्राण-प्यारी**—खोज रि० १९१७।१८६ एफ। ५ पन्ने का यह हस्तलेख श्री देवकीनंदनाचार्य पुस्तकालय' कामवन, भरतपुर में है। खोज रिपोर्ट में यह पूर्ण रूप से अवतरित है। विषय 'स्याम सगाई' कहा गया है

२. **राधा कृष्ण मंगल**—खोज रि० १९२६।४७१ जी। इस हस्तलेख में दो रचनाएं हैं। एक है राधा मंगल। यह प्राण प्यारी ही है। खोज रिपोर्ट में इसके प्रथम तीन बद उदाहृत हैं। दूसरी पोथी कृष्ण मंगल हैं। यह कृष्ण जी का जन्म मंगल है। यह भी एक पद मात्र है, जो समग्रतः उद्धृत है। इसमें कुल १० चरण हैं। हस्तलेख का प्राप्ति स्थान है—राम अधार मिश्र, ग्राम—ग्रामनगर, डाकघर-लखीमपुर, जिला खीरी।

३. **राधा मंगल**—खोज रि० १९२६।४७१ एच। यह प्रति श्री शिव बिहारी, ग्राम सिधौली, जिला सीतापुर की है। इसके १, २ एवं ५,६ बंद रिपोर्ट में उद्धृत हैं। प्रतिलिपि काल सं० १९४० वि० है।

४. **ब्याहलो**—खोज रि० १९२६।२४४ए। रिपोर्ट में कोई उद्धरण नहीं दिया गया है।

प्राणप्यारी नामक यह रचना वस्तुतः स्याम सगाई है। इसका भाव-क्षेत्र सूरसागर है। प्रथम चार पदों को समझने के लिए सूरसागर के ये पद देखें। राधा पहली बार यशोदा के घर गई—

> देखि महरि मनहीं जु सिहानी
> बोलि लई, बूझति नँदरानी, कहि मधुरे मधु बानी
> ब्रज मैं तोहिं कहूँ नहिं देखी, कौन गाँउ है तेरो
> भली कालिह कान्हहिं गहि ल्याई, भूल्यौ तो सुत मेरो
> नैन विसाल, चरन अति सुंदर, देखत नीकी, छोटी
> सूर महरि सविता सौं बिनवति, भली स्याम की जोटी
>
> सं० ७०२/१३२०

नाम कहा तेरौ री प्यारी

बेटी कौन महर की है तू, को तेरी महतारी
धन्य कोख जिहिं तोकौं राख्यौ, धनि घरि जिहिं अवतारी
धन्य पिता माता तेरे, छबि निरखति हरि-महतारी
मैं बेटी वृषभानु महर की, मैया तुमकौं जानतिं
जमुना-तट बहु बार मिलन भयौ, तुम नाहिंन पहिचानतिं ?
ऐसी कहि, वाकौ मैं जानति, वह तौ बड़ी छिनारि
महर बड़ौ लंगर सब दिन कौ, हँसति देति मुख गारि
राधा बोलि उठी, बाबा कछु तुमसौं ढीठौ कीन्हौ
ऐसे समरथ कब मैं देखे, हँसि प्यारिहिं उर लीन्हौं
महरि कुँवरि सौं यह कहि भाखति, आउ करौं तेरी चोटी
सूरदास हरषित नंदरानी, कहति महरि हम जोटी

७०३/१३२१

जब राधा लौटकर अपने घर गई, तब—

बूझति जननि कहाँ हुती प्यारी
किन तेरे भाल तिलक रचि कीनौ, किहिं कच गूंदि, माँग सिर पारी
खेलति रही नंद के आँगन, जसुमति कह्यौ, कुँवरि ह्याँ आ री
मेरौ नाउँ बूझि बाबा कौ, तेरौ बूझि दई हँसि गारी
तिल भाँवरी गोद करि दीनी, फरिया दई फारि नव सारी
मो-तन चितै, चितै ढोटा-तन, कछु सविता सौं गोद पसारी
यह सुनि कै वृषभानु मुदित चित, हँसि हँसि बूझत बात दुलारी
सूर सुनत रस-सिंधु बढ़यौ अति, दंपति एकै बात विचारी

७०८/१३२६

मेरे आगैं महरि जसोदा, तोकौं गारी दीन्हीं
वाकी घात सबै मैं जानति, वै जैसी मैं चीन्हीं
तोकौं कहि, पुनि कह्यौ बबा कौं, बड़ौ धूत वृषभान
तब मैं कह्यौ ठग्यौ कब तुमकौं, हँसि लागी लपटान
भली कही तू मेरी बेटी, लयौ आपनो दाउ
जो मोहिं कह्यौ सबै गुन उनके, हँसि हँसि कहति सु भाउ
फेरि-फेरि बूझति राधा सौं, सुनत हँसति सब नारि
सूरदास वृषभानु-घरनि, जसुमति कौ गावति गारि

७०९/१३२७

पद ५-६-७ में गारुड़ी लीला है, जो सूरसागर में अत्यंत विस्तार से पद ७४०-६४ (१३५८-८३) में वर्णित है ।

प्राण प्यारी और ब्याहलो को डा० दीनदयालु गुप्त एवं प्रभुदयाल मीतल ने दो अलग-अलग ग्रथों के रूप में वर्णित किया है ।

दीनदयालु गुप्त के अभिमत

प्राण प्यारी

"नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट (१९१२/१८६ बी) में इस पुस्तक का उल्लेख है । रिपोर्ट में इसका विषय 'स्याम सगाई' दिया हुआ है और उसमें पूरी रचना उद्धृत है । राग विलावल के अन्तर्गत यह एक लंबा पद है । सूर सागर (वेंकटेश्वर प्रेस) पृष्ठ १६५ पर श्याम सगाई का प्रसंग वर्णित है । परंतु उसमें यह पद लेखक को नहीं मिला; संभव है सूरसागर की अन्य प्रतियों में यह हो । इस पद की भाषा और शैली बहुत शिथिल है, जिससे इसे सूर कृत मानने में संदेह भी होता है । वस्तुत: सूर कृत यह कोई ग्रंथ नहीं कहा जा सकता । खोज रिपोर्ट के उद्धरणों की भाषा शिथिल होते हुए भी रचना में 'सूर के प्रभु' छाप आई है । इस प्रकार की छाप सूरदास के अन्य पदों में भी मिलती है । सूर की यह संदिग्ध रचना कही जा सकती है ।"

—अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय, पृष्ठ २८२-८३

ब्याहलो

"नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट (१९०६-०८/२४४ ए) में इस ग्रंथ का उल्लेख हुआ है । रिपोर्ट में कोई उद्धरण नहीं दिए गए, परंतु उसके वक्तव्य से ज्ञात होता है कि यह ग्रंथ राधा कृष्ण विवाह पर लिखे सूर के पदों का संग्रह है । सूरसागर (वेंकटेश्वर प्रेस) पृष्ठ ३४८ पर राधा कृष्ण विवाह के पद है । इन्हीं पदों में चौपाई और गीतिका छंद के क्रम में आनेवाला एक लंबा पद भी है । उसमें भी राधा कृष्ण के बिवाह का सुंदर वर्णन है । ज्ञात होता है कि किसी ने इन्हीं पदों को अलग से लिखकर ब्याहलो शीर्षक दे दिया है ।"

—अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय, पृष्ठ २८३

रेखांकित अंश सूचित करता है कि प्राण प्यारी, राधा मंगल और ब्याहलो तीनों एक ही हैं ;

डा० प्रभुदयाल मीतल के अभिमत

२० प्रान प्यारी (स्याम सगाई)

२१ राधा मंगल

२२ राधा कृष्ण मंगल

"सूरदास ने बालकृष्ण के साथ बालिका राधा का खेल ही खेल में सगाई विवाह कराते हुए उनसे संबंधित लोकाचारों का अत्यंत मनोरम कथन किया है। उनके तद्विषयक पद सूरसागर की हस्तलिखित एवं मुद्रित दोनों प्रकार की प्रतियों में मिलते हैं। इन्हीं को स्वतंत्र ग्रंथों के रूप में भी प्रस्तुत किया गया है, जिनकी हस्तलिखित और मुद्रित दोनों प्रकार की प्रतियाँ उपलब्ध हैं। 'प्रानप्यारी' का दूसरा नाम 'स्याग सगाई' और 'राधा मंगल' या 'राधा खेल' भी मिलता है। इन सब का उल्लेख खोज रिपोर्टों में सूरदास के स्वतंत्र ग्रंथों के रूप में किया गया है, जबकि वस्तुतः ये सूरसागर में से संकलित हैं।"

—सूर सर्वस्व, पृष्ठ १७२

४६—ब्याहलौ

"सूरदास के नाम से उपलब्ध इस रचना का उल्लेख ना० प्र० सभा की खोज रिपोर्ट (सन् १९०६ पृष्ठ ३२३ ए) के साथ-साथ हिन्दी के अनेक संमान्य विद्वानों के आलोचना परक ग्रंथों में भी मिलता है। किंतु विशद विवरण और उदाहरणों के अनुपलब्ध होने के कारण इसकी प्रामाणिकता के संबंध में निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। इस अलपज्ञात ग्रंथ का परीक्षण आवश्यक है।"

—सूर सर्वस्व, पृष्ठ १७७

मेरे निष्कर्ष

प्राण प्यारी, राधा मंगल, ब्याहलो, श्याम सगाई आदि एक ही ग्रंथ के नाम हैं। यह न तो कई पदों का संग्रह है और न कोई ग्रंथ ही। यह एक लंबा पद मात्र है। यह पद महाकवि सूरदास का नहीं है, सूर नवीन का है। यह न तो सभा के सूर सागर में है, न किसी अन्य मुद्रित सूर संग्रह में ही।

राधा-मंगल

(प्राणप्यारी या ब्याहलो)

राग विलावल

चौ०—बरसाने वृषभान दुलारी
चंद्रवदनि मृगलोचनि प्यारी
पंकज वपु गुण रूप रसाला
खेलन गई जहाँ नँदलाला
निरखि रूप नँद जू की रानी
गोद उठाय भवन में आनी

छंद - गोद उठाय भवन में आनी, आभूषण पहिराइयाँ
माँग मुक्ता, पीत पट उर, हार सुमन सुहाइयाँ
बिंदु काजल की दई, कुलदेव मान मनाइयाँ
सूर के प्रभु साजि नख चख, कुँवरि घराँ पठाइयाँ ॥ १ ॥

चौ०—आओ मेरी प्राण जु प्यारी
भोरहिँ खेलन कहँ जु सिधारी
कुंकुम भाल तिलक किन्ह कीनो
किन मृगमद को बिंदा दीनो

छंद—बिंदा जो मृगमद दियो मस्तक, निरखि ससि संसय परयो
सरद निसि की कला पूरण, मानि मन दर्पन हरयो
हँसि हेरि मुख सो कहत जननी, अलक वेणी किन गुही
सूर के प्रभु मोह ब्यापै, साँचि कहि मोहि नइ उही ॥ २ ॥

चौ०—नंद जी के धरनी यक सोहै
मेरो वदन-तन फिरि फिरि जोहै
खेलत बोलि निकट बैसारी
मन में आनंद कियो है भारी

छं०—आनंद मन में कियो भारी, निरखि मुख बलि बलि गई
बाबा जू को नाम लै लै, तोहिँ हँसि गारी दई
पाटी तो पारि सँवारि भूषण, गोद लै मेवा भरी
सूर के प्रभु हर्षि हिय मैं, विधना सों बिनती करी ॥ ३ ॥

चाल—यह सुनि के कीरति मुसकानी
मैं नँदरानि के जिय की जानी
मेरी सुता है रूप की रासी
वे तो स्याम बनवासि उदासी

छंद—स्याम बनवासी उदासी, रंग ढंग न, क्यों बनै
नील मनि ढिग रतन अमोलिक, काँच, कंचन क्यों सनै
ललिता विसाखा सों कह्यौ खिजि, अरी तुम सब कित गईं
सूर के प्रभु भवन बाहिर, जानि मति दीज्यो कहीं ।।४।।

चाल—दिन दस पाँच अटक जब कीनी
कुँवरि को कान्ह दिखाइ न दीनी
मुरछि परी, तन सुधि न सँभारे
प्यारी कुँ डस्यो भुजंगम कारो

छंद—कारे भुजंगम डसी प्यारी, गारुडू हारे सबै
नंदनंदन मंत्र बिनु, ये विष न काहू पै दबै
मनुहार करि मोहन बुलाए, सकल बिष देखत हरे
सूर के प्रभु जोरि अविचल, जियो जुग जुग दोउ जने ।।५।।

चाल—उठि बैठी जब बदन सँभारे
मोहन देखत अँचरा सँभारे
मुरि बैठी, मन कियो है हुलासा
कीरति गइ अपने पति पासा

छंद—अपने जु पति पै गई कीरति, प्रीति रीति बिचारियै
मंत्र बोल्यो व्याह को तब, सखिन मंगल गाइयौ
बृन्दा जु बन में रचि स्वयंबर, कुंज मंडप छाइयौ
सूर के प्रभु स्याम सुंदर, राधिका वर पाइयौ ।।६।।

चाल—विध ब्रत भरो विबुध हरषायौ
मंडप बिविध कुसुम बरखायौ
भरे भाँवरें भवरिन्ह (नायो)
ब्रज जुवतिन आनँद भरि गायौ

छंद—आनंद भरि ब्रज जुवति गायो, हरषि कंकन छोरहीं
ये नाहिं गिरवर उचै लेबो, स्याम, हँसि मुख मोरहीं
छोड़्यो न छूटै डोरना जहँ, रीति प्रीति जु अति बढ़ी
सूर के प्रभु ब्रज जुवति मिलि, गारि मन भावति दई ।।७।।

१०—बिसातिन लीला

सभा की विभिन्न खोजों में बिसातिन लीला की चार प्रतियाँ प्राप्त हुई हैं—

(१) रिपोर्ट १९२६/४७१ डी। लिपिकाल सं० १९३१। प्राप्तिस्थान—लाला राम नारायण, ग्राम नसीरपुर, डाकघर लखीमपुर, जिला खीरी। १६ पन्ने।

(२) खोज रिपोर्ट १९२६/३१९ जे। पन्ना १६। लिपिकाल सं० १८३१ वि०। प्राप्तिस्थान—ठाकुर हरि सिंह रघुवंशी, ग्राम—रामगढ़, डाक०—दतौली, जिला अलीगढ़।

(३) खोज रिपोर्ट १९२९/३१९ के। पन्ना १६। प्राप्तिस्थान—गणेशीलाल, ग्राम पोस्ट—जैतपुर कलाँ, जिला—आगरा।

(४) खोज रिपोर्ट सं० २००४/४२० ख। पन्ना ८। लिपिकाल-१८८४ वि०। प्राप्ति स्थान—पं० दूबनाथ चौबे, ग्राम—पीथापुर, डाक०—अमरगढ़, जिला—प्रताप गढ़। इस प्रति में छंद संख्या ९३ दी हुई है। दो दो चरणों के छंद गिने गए हैं।

कृष्ण ने बिसातिन का रूप धारण करके राधा से भेंट की है। यह छद्म लीला है। खोज रिपोर्ट के कवि विवरण में इसे सूरसागर का अंग कहा गया है, जिसे लोक-रुचि के कारण अलग पुस्तकाकार रूप में संकलित कर लिया गया है।

खोज रिपोर्ट में इस ग्रंथ के प्रारंभ के १-१० एवं अंत के ८३-९३ बंद दिए गए है। पूरी रचना मेरे देखने में नहीं आई।

डा० दीनदयाल गुप्त ने बिसातिन लीला का कोई उल्लेख नहीं किया है। डा० प्रभुदयाल मीतल ने इसका यह विवरण दिया है—

'सूरदास के नाम से प्रचलित यह लोक काव्य शैली की एक सरस रचना है। इसकी कई हस्तलिखित प्रतियाँ उपलब्ध हैं और इसका प्रकाशन भी कई स्थानों से किया जा चुका है। फिर भी यह सूरदास की प्रामाणिक रचना नहीं जान पड़ती है। इसकी अप्रामाणिकता के समर्थन में एक तथ्य यह है कि यह छप-

काव्य है। श्रीकृष्ण द्वारा विभिन्न वेश रूप कर (छद्मपूर्वक) राधा जी को छलने की मान्यता वल्लभ संप्रदाय में नहीं है— अन्य संप्रदायों में है। अतएव यह वल्लभ संप्रदायी सूरदास की प्रामाणिक रचना नहीं हो सकती।'

—सूरसर्वस्व पृष्ठ १८१

यह सूर नवीन की रचना है।

बिसातिन लीला

एक समैं व्रज चंद नंद सुत, मन में यही बिचारी
करके भेस बिसातिन जी को, छलिए राधा प्यारी १
कीनखाब को लहँगा पहिरे, अरुन जरकसी सारी
अँगिया खास लाल मंडन की, अति छवि देत किनारी २
मोतिन की पहिरे नकबेसर, झालरदार बनाई
मानो रतिपति गढ़ी आपकर, कहि न जात सुघराई ३
कानन करनफूल अति सोहै, माथे बीज जड़ाऊ
ता ऊपर अति लसत वंदनी, मोतिन माँग भराऊ ४
कंठ लसै दुलरी अरु तिलरी, गजमोतिन के हारा
गिरि सुमेरु को मनु विहाय करि, धँसी गंग की धारा ५
गरे हमेल माल मोतिन की, औ पहिरे लगवारे
मानहु काम आपने कर से, रुचि रुचि बीज सँवारे ६
बाजूबंद बरन भल सोहै, बहियाँ औ भुज माहीं
हरी चुरी बिच पटरा पहिरे, उपमा को कोउ नाहीं ७
हाथन में कंकन के चूड़ा, मोहरी अधिक बनी है
उपमा ताहि कौन अब दीजै, लागी कनी घनी है ८
दसौ अँगुरियन लसै मुद्रिका, हीरा जड़ित बनाई
को कहि सकै स्याम सुन्दर की, नैनन की सुघराई ९
चंपकली त्रिबली पर सोहै, रुचि रुचि नीबी बाँधी
सुन्दर नाम मनोहर रुच सों, तापर कोछी साधी १०

× × ×

अरस परस राधो सों करिके, फेर जौहरिन बोली
लीजे माल बिसाल राधिका, चीजें बहुत अमोली

× × ×

पान दीजिये मोहिं विदा को, मैं अपने घर जैहौं
तुम्हरी सील सुघरई राधे, मथुरा में मैं कहिहौं ८३

आनँद के कंदन जदुनंदन, नँदनँदन सुखरासी
ऐसे रूप न धरिये माधौ, मैं चरनन की दासी ८४

ये ब्रज की नारी चबाइनैं, नैंसुक सुघ जो पावैं
घर घर खबर करैं मनमोहन, बड़ो फसाद मचावैं ८५

ताते जाव भवन अपने को, सुनिए मदन गुपाला
हमैं तुमैं अब भेट होइहैं, नवलकुंज में लाला ८६

अरस परस राधे सों करके, नैन सों नैन मिलाए
नँदनंदन आनंद मान के, नंदगाँव चलि आए ८७

जसुदा कही सुनो हो लालन, सब दिन कहाँ गँवाए
बालन संग कलेवा करिके, तब से फिरि अब आए ८८

खेलत रहौं गुवालन के सँग, बंसीवट की छाँही
नई कुंज जहँ नंद लगाई, जमुना तट के माहीं ८९

भली करी तुम प्रान पियारे, अब चलि करिए ब्यारी
परसे महर तुम्हें है बैसी, परसि धरी है थारी ९०

नंद साथ हरि भोजन कीन्हो, बीरा मुख मैं दीन्हे
सोए आय पलँग के ऊपर, हरष मातु सुख दीन्हे ९१

जुग जुग जीवो कुँवरि राधिका, जुग जुग कुँवर कन्हाई
सूरदास भगतन के सेवक, जिन यह लीला गाई ९२

जो कोउ कृष्ण बिसातिन लीला, सुनै सुनावैं गावैं
तरि बैकुंठै जाय, सकल मनसा - फल पावैं ९३

इति बिसातिन लीला समाप्तम्

११. कबीर (राधा नखशिख)

चार पन्नों का यह हस्तलेख सभा की खोज रिपोर्ट १९२३/४१९सी में विवृत है। यह पंडित राधा कृष्ण जी, पुरा भोज तिवारी, पोस्ट—अलीपुर बाजार, जिला सुलतानपुर के पास है।

इस ग्रंथ में राधा जी के नखशिख का वर्णन कबीर सहित है। इसमें राधा जी की साड़ी, चोटी, माँग, भाल-तिलक, आड़, ताटंक, युग भौंह, नयन, दो तिलक, दृग, नासा, कपोल, अधर, ठोढ़ी का नील बुंद, कंठश्री, पहुँची, बाजूबंद का फूँदना, सीप, सीपज का हार, चौकी, लाल गुलाल, हारावलि, चोली में कुच, रोमावली, नाभि, नीबी, नितंब, जंघा और चरणों के पाँवटों पर मनोहर उत्प्रेक्षाएँ हैं। कुल छंद २३ हैं।

डा० दीनदयालु गुप्त ने इस ग्रंथ का उल्लेख नहीं किया है। डा० प्रभुदयाल मीतल ने लिखा है कि जवाहरलाल चतुर्वेदी ने इसकी बड़ी प्रशंसा की है और इसे सूर की प्रामाणिक रचना मानते हुए वे कहते हैं—

"नयी उत्प्रेक्षा, नयी उपमाओं में सजाकर श्री निकुंजेश्वरी के अंग-अंग का वर्णन किया गया है। कृति बहुत ही सुंदर सरस और मधुर है। हृदय कहता है कि उक्त कृति श्री सूर कृत अमोल ग्रंथ है। नयी निराली नयनाभिराम रचना है।"

—सूर सर्वस्व पृष्ठ १७७

स्वयं मीतल जी का अपना मत यह है—

"यह ग्रंथ कबीर नामक जिस लोकगीत शैली में रचा गया है, उसका प्रचलन ब्रज की अपेक्षा पूर्वी उत्तर प्रदेश में अधिक है। ऐसी स्थिति में इसकी प्रामाणिकता के सम्बन्ध में संदेह होता है। संभव है, किसी पूर्वी भक्तजन ने सूर के राधा नखशिख सम्बन्धी सरस पदों को होली की इस लोक-धुन में ढाल दिया हो। फिर भी इसकी प्रामाणिकता का परीक्षण आवश्यक है।"

—सूर सर्वस्व, पृष्ठ १७७

मेरा भी ख़याल है कि मूलत. यह रचना १६, १२ के विराम से २८ मात्राओं वाले सार या ललितपद या दोवै छंद में विरचित है। इसमें दो-दो चरणों के कुल २३ पद हैं। यह मूल कवि की रचना है। किसीने प्रत्येक पद-बंद के प्रारंभ में 'कबीर' और अंत में एक पुछल्ला 'निरखि छवि राधा नागरि प्यारी' जोड़ दिया है। इन्हें हटा दिया जाय, तो यह एक शुद्ध सरस साहित्यिक कृति हो जाय। प्रत्येक बंद के प्रारंभ में जो 'कबीर' जोड़ दिया गया है, उसी के आधार पर ग्रंथ का नाम

'कबीर' है। पर यह नाम विषय की सूचना नहीं देता। इसीलिए मीतल जी ने इसका नाम 'कबीर राधा नखशिख' रख दिया है, जो उपयुक्त है।

मैं इसे मूल रूप में सूर नवीन की कृति मानता हूँ। खोज रिपोर्ट में इसके १-११ और २१-२३ पद दिए गए हैं।

कबीर (राधा नखशिख)

कबीर—सारी नील मोल महँ छेकी, गोर गात छवि होति
मनहु नील मनि मंडप मध्ये, बरत निरंतर जोति
निरखि छवि राधा नागरि प्यारी ॥ १ ॥

कबीर—चोळी चारु तीनि सर राजित, कुहू केतु अरु राहु
मनु हिलि मिलि एक संग हेम गिरि, ससि मुख कीन्ह गराहु
निरखि छवि राधा नागरि प्यारी ॥ २ ॥

कबीर—मंजुल माँग मोति लर लटकत, भटकत उपमा देत
मनु उडुगन सब सिमिटि एक होइ, बीच करत ससि हेत
निरखि छवि राधा नागरि प्यारी ॥ ३ ॥

कबीर—भाल विसाल तिलक अति राजत, दिहे लाल रज विंद
मनु वंधुप के सुमन आनि कै, मनसिज पूजि मइंद
निरखि छवि राधा नागरि प्यारी ॥ ४ ॥

कबीर—जुआ आउ ताटंक चक्र जुग, भौं शृंगी, मृग नैन
मनु दौ तिलक बाग गहि बैठे, ससि रथ स्वारथ मैन
निरखि छवि राधा नागरि प्यारी ॥ ५ ॥

कबीर—भौंहैं विकट निकट श्रवनन्ह लगि, दृग खंजन अनुहारि
मनहु परस्पर करत लराई, कीर बचावत रारि
निरिखि छवि राधा नागरि प्यारी ॥ ६ ॥

कबीर—नासा सुभग मोति बेसरि को, बरणत होत सकोच
मानहु कीर फोरि दाड़िम फल, बीज रहे गहि चोंच
निरखि छवि राधा नागरि प्यारी ॥ ७ ॥

कबीर—पुष्ट कपोल चारु चिक्कन अति, बरणत मन सकुचात
मनु दो संख करत ससि तें मत, मानि अनुज को नात
निरखि छवि राधा नागरि प्यारी ॥ ८ ॥

कबीर— अधर बिंब रँग सानि सुधारस, यह उपमन्ह को अंत
मानहु उगिलत सीप रूप निधि, मोति दमकि द्युति दंत
निरिखि छवि राधा नागरि प्यारी ।।९।।

कबीर—ठोढ़ी ठकुराइन की नीकी, नीलो बुंद मझार
सालिग्राम मनु कनक संपुट, मारहिंगे तनक उछार
निरखि छवि राधा नागरि प्यारी ।।१०।।

कबीर—केकी कंठ, सुभग कंठसरी, या सरिको अवर न कांति
मानहु कनक मुरति गंगातट, निकट निपट दिपि प्रांति
निरखि छवि राधा नागरि प्यारी ।।११।।

कबीर—पहुँची पानि बाहु बाजू बँद···· ···· ···· ···· ···· ····

अंत—

कबीर—अंबुज चरण पावटो बुंदो, यह उपमा कहु अवर
मधुर नाद गुंजार करत मनु, उड़ि उड़ि बैठत भंवर
निरखि छवि राधा नागरि प्यारी ।।२१।।

कबीर—कह सहचरी वेगि लै आई, प्रभु तेरे हित लागि
अब रस विलस विमल वृंदावन, दंभ कपट छल त्याग
निरखि छवि राधा नागरि प्यारी ।।२२।।

कबीर—जोरी जुरी दीन सूरा प्रभु, बढ़े रीति रस रंग
ठकुराइन श्री राधा मेरी, ठाकुर नवल त्रिभंग
निरखि छवि राधा नागरि प्यारी ।।२३।।

—खोज रि० १९२३/४१६ सी

१२. गोपाल गारी

"सूरदास के नाम से प्रचलित यह एक सामान्य ग्रंथ है, जिसे लोक काव्य-शैली में रचा गया है। इसकी कोई हस्तलिखित प्रति उपलब्ध नहीं है और न किसी खोज रिपोर्ट में ही इसका उल्लेख मिलता है। सूर सम्बन्धी किसी ग्रंथ में अथवा हिन्दी साहित्य के किसी इतिहास में इस रचना का नामोल्लेख नहीं हुआ है। फिर भी मथुरा, दिल्ली, लखनऊ, कलकत्ता आदि स्थानों के अनेक प्रेसों ने इसे बार बार छापा है और सामान्य जनता में इसका पर्याप्त प्रचार रहा है। श्री जवाहर लाल चतुर्वेदी ने इसे सूरदास की रूपांतरित रचना होने की संभावना व्यक्त की है। किन्तु

भाषा और रचना-शैली की भिन्नता के कारण हमारे मतानुसार यह अष्टछापी सूरदास की रचना कदापि नहीं है। इसका प्रमाण इसके आरम्भ और अन्त के ये तुकहीन अवतरण हैं—

आरम्भ—

जबहिँ गुपाल चले मधुवन कों, घर अँगना न सुहाई जी
मुरली बजावत, धेनु चरावत, बसत जु जमुना तीरा जी

अन्त—

'सूरदास' प्रभु धनि धनि गोपी, जिन ये गारी गाई है
प्रेम प्रीति सों गारी गावत, परमानंद सुख पायो है।"

— सूर सर्वस्व, पृष्ठ १८०

खोज रिपोर्ट २००१/४६३ में सूरदास के नाम पर 'गोपाल गारी' की एक खंडित प्रति का विवरण दिया गया है। रचयिता सूर को प्रसिद्ध कवि सूरदास से नितांत भिन्न माना गया है, जो ठीक ही है। यह प्रति काशी नागरी प्रचारिणी सभा की है।

गोपाल गारी लोक-काव्य है। इसके रचयिता सूर नवीन हैं।

गोपाल गारी

सोने का खरिका लगाई जी
सोने के गेड़ुवा गंगाजल पानी, वृषभानही चरन पखारी जी
चरन पखारि चरनोदक लीन्हा, एती बड़ी भागि हमारी जी
सभ सखिअन मिलि देखन आईं, कैसे ललन बनि आए जी
साँवर रूप कमल दल लोचन, आँखि बनी रतनारी जी
अस सुकुमार देवकी के नंदन, रुकुमिनि चंवर डुलाए जी
जेवन बइसे किसुन कँधैया, देहिँ सखी सभ गारी जी

× × ×

एक राति पुत्ता गइल ससुरारी, सासु क कइल बड़ाई जी
तुमरी दोहाई माता नंद बबा की, अब न जाइब ससुरारी जी
हमके तोहके नंदबबा जी के, देहिँ सखी सभ गारी जी
गारी के अनखे जनि करी पुत्ता, गारी प्रेम पियारी जी
जुग जुग जीअ पुत्ता, अमर होइके, निति उठि जा ससुरारी जी
नेग चार सभ आपन करहीं, की एनके होए चौठारी जी

कंगन छोड़ि के मंगन करहीं, दिन दिन करहिँ अनंदा जी
सूरदास प्रभु तुमरे दरस के, जिन्ह एह गारी गाए जी

—खोज रि० २००१/४६१

१३. वंशीलीला

इस ग्रंथ के तीन हस्तलेख प्राप्त हुए हैं—

(क) खोज रि० १९२६/४७१ बी। दो पन्ना। लिपिकाल सं० १८०३ वि०। प्राप्तिस्थान—जगदेव सिंह, ग्राम सरैया भवानी टेरी, डाकघर—मिसिख, जिला सीतापुर। बाँसुरी लीला नाम से।

(ख) खोज रि० १९३२ २१२ जे। यह ४८ पन्ने का बड़ा ग्रंथ है और निश्चय ही १९२६/४७१ बी एवं सं० २००१/४६१ ज से भिन्न है। यद्यपि अंत में यह पद भी संकलित प्रतीत होता है। इसका प्राप्तिस्थान है—पूरणमल शर्मा, राजा, डा० माठ, मथुरा। यह रासलीला ढंग का ग्रंथ है, जिसमें गद्य भी प्रयुक्त है। विवरण बंसी लीला नाम से लिया गया है।

(ग) खोज रि० सं० २००१/४६१ ज। ग्रन्थ १ पन्ने का है। यह ग्रंथ सरस्वती भंडार विद्या विभाग काँकरोली का है—यह हिन्दी बंडल ३६, पुस्तक संख्या ७ है। ग्रंथ खंडित है।

वंशी लीला वस्तुतः एक पद मात्र है। इसमें गोपियों ने कृष्ण की मुरली चुरा ली है, और कहा-सुनी होने पर लौटा दी है—

यह पद सभा के सूरसागर में परिशिष्ट १ के अंतर्गत संख्या ३८ पर है। पं० सीताराम जी चतुर्वेदी ने सूरग्रंथावली में इसे सभा के सूरसागर से तो दिया ही है। पुनः रागरत्नाकर से इसे चतुर्थ खंड में परिशिष्ट ३ के अंतर्गत पृष्ठ १०६—७ पर दे दिया है। (पद संख्या ५३४९)

श्री प्रभुदयाल जी मीतल ने इस ग्रंथ का यह विवरण बाँसुरी लीला नाम से दिया है—

"सूरसागर में वंशी से संबंधित बहुसंख्यक पद हैं। उनके अनेक संकलन भी मिलते हैं, किन्तु यह रचना उनसे भिन्न है। इसकी भाषा और रचना शैली सूर-काव्य से मिलती हुई है; अतएव इसे सूरदास की एक नई रचना माना जा

कता है। फिर भी इसका भली भाँति परीक्षण करने की आवश्यकता है। इसकी हस्तलिखित प्रतियाँ विभिन्न स्थानों के पुस्तकालयों में मिलती हैं। मथुरा और लखनऊ से इसका मुद्रण भी किया जा चुका है।"

—सूर सर्वस्व, पृष्ठ १७६

डा० दीनदयाल गुप्त ने 'अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय में इस ग्रंथ का उल्लेख नहीं किया है।

वंशी लीला में कुल ३३ चरण हैं। पहल लघु चरण ध्रुवक का है—

बाँसुरी दीजिये ब्रज नारि।

इसके आगे चार-चार चरणों के ८ छंद हैं। प्रत्येक छंद के प्रथम दो चरण रोला के हैं, शेष तीसरे और चौथे चरण दोहा के दोनों दल हैं। छंद १, ३, ५, ७ में कृष्ण के वचन हैं और छंद २, ४, ६ में गोपियों के उत्तर। रचना संवादात्मक है। अंतिम छंद कवि की ओर से है, जिसमें वाद विवाद के बाद गोपियाँ गोपाल की वंशी लौटा देती हैं।

यह पद 'सूरज' छाप से युक्त है। अतः यह सूरजदास या सूर नवीन की रचना है; यह अष्टछापी महाकवि सूर कृत नहीं है।

वंशीलीला

राग सोरठ

बाँसुरी दीजिये ब्रजनारि
कान्हि सखी इहि ठौर, बाँसुरी भूलि बिसारी
तुम जु गई लै धाम, बात हम सुनी तिहारी
तुम्हरे काम न आवई, बंसी हमरी देहु
हम आतुर ह्वै माँगहीं, तुम नहिं नाहिं करेहु ॥१॥
बंसी कैसी होइ, नैन भरि कबहुँ न देखी
पिता तुम्हारे साधु, कान्ह तुम भए विद्वेषी
इत उत खेलत तुम फिरौ, कितहूँ भूलि गई सु
सौंह खाति हों बबा की, नाहिं जु नाहिं लई सु २
बंसी हमरी देहु, काहे को रारि बढ़ावौ
समुझि सूझि मन माहिं, काहे कौं लोग हँसावौ

लोग हंसै चरचा करैं, देखौ मनहिं बिचारि
यह बंसी ब्रजनाथ की, देति न काहैं गँवारि ३

हमसौं कहत गँवारि, आपनो करत बड़ाई
मारौं गुलचा गाल, तबै बाबा की जाई
तुम से केतिक ग्वाल हैं, हमसौं माँगत छाँछि
फेंट कमरिया काँध पै, काहे दिखावत आछि ४

या बंसी कौ सार, कहा तुम ग्वालिनि जानौ
तीन लोक पटरानि, मेरौ मन यासौं मानौ
या बंसी खोजत फिरैं, ब्रह्मा सिव मुनि-नाथ
धरे मटुकिया सीस पै, कहा नचावौ हाथ ५

नंद महर के कान्हर, तुमकों कौन पतीजै
भूले काहू ठौर, दोष हमकौं नहिं दीजै
लै लकरी मुख पर धरी, बँसुरी वाकौ नाउँ
जा घर ऐसे पूत हैं, उजरै ताकौ गाउं ६

बसौ कि ऊजर होउ, नहीं कछु चाह तुम्हारी
तुम ऐसी लख चारि, नंद घर गोबरहारी
इक लख मेरे सँग फिरैं, इक लख आवैं जाइँ
लख ठाढ़ी दरसन करैं, लख ठाढ़ी ललचाइँ ७

सुंदर सुघर सुभाउ, नारि बंसी लै दीन्ही
मोहन चतुर सुजान, साँवरै हँसि कर लीन्ही
लै बंसी ग्वालिनि मिली, घूँघट वदन छपाइ
'सूरज' हारी ग्वालिनी, जीते जादवराइ ८

१४. नागलीला

'नागलीला' नागनथैया संबंधी सूरसागर के पदों का कोई संकलन नहीं है। वह २६ चरणों का एक पद मात्र है। पहले हमारे लड़कपन में कचौड़ी गली बनारस सिटी से प्रकाशित और मेले-ठेले में बिकनेवाली लघु आकार की पुस्तिका 'दानलीला' के साथ यह नागलीला भी छपा करती थी।

यह नागलीला 'सूर्यपुराणादि २२५ रत्न' में पृष्ठ १६७-६८ पर संकलित है
नागलीला के चार हस्तलेख सभा की खोज में प्राप्त हुए हैं—
१. खोज रि० १९०६/२४१ ई।

२. खोज रि० १२६/४७१ एफ। एक पन्ना। लिपिकाल १९०३ वि०।
३. खोज रि० सं० २००४/४२० क। ४ पन्ना। लिपिकाल सं० १९३१ वि०।
४. खोज रि० १९३२/२१२ बी। इसे बारामासी कहा गया है, पर है यह नागलीला ही।

डा० दीनदयालु गुप्त इस ग्रंथ के संबंध में लिखते हैं—

"नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट में इस ग्रंथ से कोई उद्धरण नहीं दिया गया है, परंतु रिपोर्ट के वक्तव्य से ज्ञात होता है कि इस ग्रंथ में कृष्ण द्वारा काली नाग नाथने के प्रसंग से संबंध रखनेवाले सूरदास कृत पद हैं। इससे स्पष्ट है कि यह ग्रंथ कवि की कोई स्वतंत्र रचना नहीं कही जा सकती। ग्रंथ प्रकाशित है।"

—अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय, पृष्ठ २८२

जैसा कहा जा चुका है, यह सूरसागर के नागनथैया संबंधी पदों का संग्रह नहीं है। यह एक विशिष्ट पद है, जो सूरसागर में नहीं संकलित है।

डा० प्रभुदयाल मीतल भी नागलीला को सूरसागर से संकलित नागनथैया संबंधी पदों का संग्रह मात्र मानते हैं, जो ठीक नहीं।

यह नागलीला महाकवि सूर की रचना न होकर, सूर नवीन की रचना है। इसमें लोकगीत का तत्व अधिक है, साहित्यिकता कम है।

नागलीला

सुभ घरी सुभ दिन मुहूरत, नंद के लाला भयो
लाइए ब्रजराज पंडित, सुर नरन के दुख गयो
धनि धनि जसोदा भाग्य तेरे, गोकुला को सुख भयो
कंस आज्ञा, फूल कारण, कृष्ण बनमाली भयो

मारो गेंद गिरी जमुना में, कूदि कालीदह गयो
जहँ नाग सोवै, नगिन जागै, कृष्ण पहुँचे जाइके
कर जोरि बिनती करत नागिनि, जाहु लालन भागिकै
नहिँ नाग तुमरो सब्द पैहैं, जागि उठिहि रिसाइ कै

नाग जागै हनै लागै, अब तो भागे ना बनै
होनि होइ सो होइ नागिनि, नाग अब नाथे बनै
कर जोरि बिनती करति नागिनि, ऐसो लालन मति कहो
जाके सहस फन, दो सहस जिभ्या, ताते सरबरि मत लहो

कंस के सँग पंस खेलैं, नाग को संहारि कै
नाग नाथब फूल लादब, गोकुला को जाब रे

पीठि ठोंकि जगाइ नागिनि, नाग उठो है रिसाइ कै
अब सहस फन फुफुकार छाँड़े, कृष्ण काले हो गए
कृष्ण उठि जब गरुड़ टेरा, गरुड़ पहुँचेन धाइकै
गरुड़ आवत नाग देखा, नाग के मूर्च्छा भयो
नाग के मूर्च्छा भयो, तब कृष्ण पहुँचे धाइकै
लाद लीना कमल डंडी, नाग नाथेउ जाइके
कर जोरि बिनती करत नागिनि, माँगि पीतम पाइहौ
अहिवात दे यशुदा के नंदन, बंदिछोर कहाइहौ

तब तो नागिन से यों बोले, अब तु बिनती क्यों करै
तेरो नाग छी नहिँ सकै केऊ, चरण चिन्ह लखात रे
कंस मारि निज जस कीन्ह, संत सब सुख पावहीं
अब सूर के प्रभु नागलीला, रहस मंडल गावहीं

---

१५. पांडव यज्ञ

मीतल जी ने पांडव यज्ञ को सूरदास के अप्रामाणिक ग्रंथों में रखा है और इसकी रचना किसी अन्य सूरदास द्वारा किया जाना स्वीकार किया है। मैं मीतल जी से सहमत हूँ और इसे सूर नवीन की रचना मानता हूँ।

मीतल जी ने पांडव यज्ञ के संबंध में यह विवरण दिया है —

"सूरदास के नाम से उपलब्ध इस ग्रंथ को गुजराती मासिक पत्र 'बैश्वानर' के संपादक श्री प्रेमलाल गोठ मेवचा 'भक्ति प्रिय' ने देखा था। इसकी सूचना उन्होंने मुझे सं० १०६ दिनांक १५-१-५३ के पत्र द्वारा दी थी। उसी पत्र में उन्होंने इस ग्रंथ की ३ हस्त प्रतियाँ गुजरात के विभिन्न स्थानों में होने का उल्लेख किया था। इस ग्रंथ के आदि और अंत के जो अवतरण उन्होंने मुझे भेजे थे, वे इस प्रकार हैं—

आदि—

पांडव कीनो यज्ञ, विप्र लख कोटि जिमाए
बज्यो न संख पंचान, कृष्ण कों बूझन आए

हाथ जोरि बिनती करी, सुनिए कृपा निधान
वेद विचारि किय यज्ञ को, बज्यो न क्यौं पंचान
कहो गोपाल हरि ।। १ ।।

अंत—

भक्त बछल भगवान, भक्त की महिमा राखी
जो न होय परतीत, पूछो जाय सास्त्रन साखी
'पांडव यज्ञ' पूरन भयो, कथा सुनाई व्यास
संतन के पद-कमल पर, सीस नवै सूरदास
कहत गोपाल हरि ।।२३।।

'पांडव यज्ञ' का यह प्रसंग श्रीकृष्ण की द्वारका लीला से संबंधित है। यह सर्व मान्य तथ्य है कि सूरदास को श्रीकृष्ण की व्रजलीला प्रिय थी, द्वारका लीला के प्रति उनकी कोई खास रुचि नहीं थी। अतएव उन्होंने द्रौपदी एवं सुदामा पर कृपा किए जाने के प्रसंगों का संक्षिप्त कथन करने के अतिरिक्त अन्य विषयों की ओर ध्यान नहीं दिया था। फिर इस 'पांडव यज्ञ' ग्रंथ की शब्दावली भी सूरदास की प्रामाणिक शब्द-योजना से भिन्न है। अतः हम इसे अप्रामाणिक ग्रंथ मानते हैं।"

—सूर सर्वस्व, पृष्ठ १७८-१७६

'पांडव यज्ञ' निश्चय ही महाकवि सूर की रचना नहीं। यह सूर नवीन की रचना है।

---

१६. अर्जुन गीत

'अर्जुन गीत' का विवरण सभा की खोज रिपोर्ट १६२६/४३२ में 'अर्जुन गीता' नाम से दिया गया है। ग्रंथारंभ एवं ग्रंथांत में इसका नाम 'अरजुन गीत' ही दिया गया है। यह ९ पन्ने का लघु ग्रंथ है। इसका प्रतिलिपिकाल सं० १९३९ वि० है। इसका प्राप्ति स्थान श्री व्रजभूषण सिंह, ग्राम झुकवारा, डाकघर—परियावाँ, जिला प्रतापगढ़ है। इस ग्रंथ में विविध पापों के कारण तथा भक्ति संबंधी कुछ उपदेश कथित हैं। रचना अत्यंत शिथिल है। इसका श्रीमद्भगवद्गीता से कोई संबंध नहीं है। यह सूर के नाम से प्राप्त एक अन्य रचना 'सूर गीता' से भी भिन्न है। डा० दीनदयाल गुप्त ने इसकी चर्चा नहीं की है। प्रभुदयाल मीतल इसके संबंध में लिखते हैं—

"रिपोर्ट में इसके आदि और अंत के जो अवतरण दिए गए हैं, उनसे यह रचना सूरदास की प्रामाणिक कृति नहीं जान पड़ती।"

मीतल जी का कथन ठीक है। यह महाकवि सूर की रचना नहीं है। ऐसी हालत में यह सूर नवीन की रचना है।

अरजुन गीत

अरजुन पूछै, कृष्ण जु कहै। भक्ति हेत परमारथ लहै
कौन पाप ते बेटा मरि जाइ। सो कौन पाप बताउ मोहि
कृष्ण कहै अरजुन सुनि लेउ। तुमसौ कहौं बेटा को भेउ
ब्राह्मण की बेटी जो घर में देहि। बेटी जिबै बेटा मरि जाहिं

अंत—

अर्जुन पूछै कृष्ण जो कहै। भक्ति हेत परमारथ लहै
जैसी भगति हमारी करै। जातै संभव-सागर तरै
कृष्ण कहै अर्जुन सुनि लेउ। तुमसौं कहौं भक्ति को भेउ
छांड़ि पाप सांची जिय धरै। जी में कछू कपट नहि रखै
भगती करै औ चिंता जाइ। सूरदास ताकी बलि जाइ

खोज रि० १९२६/४३२

---

१७ सहस्र-नामावली

सहस्र नामावली का निम्नलिखित विवरण प्रभु दयाल जी मीतल ने दिया है—

"सूर के नाम से उपलब्ध यह एक अल्पज्ञात एवं अल्पचर्चित रचना है। इसकी एक प्रति श्री गोपाल चंद्र सिनहा के संग्रह में है। श्री जवाहर लाल चतुर्वेदी ने इसे तब देखा था, जब श्री सिनहा मथुरा में जिला न्याय-अधिकारी के पद पर नियुक्त थे। श्री चतुर्वेदी का कथन है—

'यह श्री वल्लभाचार्य जी कृत संस्कृत ग्रंथ त्रिविध नामावली का ब्रजभाषा रूपांतर है, जो मूल से कहीं अच्छा बन पड़ा है।'

इस रचना का कोई अंश उदाहरणार्थ प्रस्तुत नहीं किया गया है, अतएव इनकी प्रामाणिकता के संबंध में निश्चय पूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता।"

—सूर सर्वस्व, पृष्ठ १६९

त्रिविध नामावली में श्री कृष्ण के बाललीला संबंधी १०८, प्रौढ़लीला संबंधी १२८ एवं राजलीला संबंधी १०९ नामों—कुल ३४५ नामों का संकलन है। भागवत दशम स्कंध से इनका संकलन महाप्रभु वल्लभाचार्य ने गोसाईं विट्ठलनाथ

के पठनार्थ किया था। बाललीला संबंधी नामों के पाठ से भक्ति की प्रेमावस्था, प्रौढ़ लीला संबंधी नामों के पाठ से भक्ति की आसक्त्यावस्था और राजलीला संबंधी नामों के पाठ से भक्ति की व्यसनावस्था की प्राप्ति होती है। इसके पाठ से समस्त दशम स्कंध का पाठ-फल होता है।

इस अनुवाद का प्रचार नहीं है।

केवल मीतल जी ने इसका यह सब विवरण दिया है और उनका कहना है—

'सूर की प्रामाणिक कृति के रूप में अभी इसका समुचित परीक्षण करने की आवश्यकता है।'

सहस्रनामावली के महाकवि सूर की रचना होने के कोई प्रमाण सुलभ नहीं। अतः भागवत भाषा या स्कंधात्मक सूरसागर के रचयिता सूर नवीन को इसका भी अनुवादक समझा जा सकता है।

१८ सूर गीता

प्रभु दयाल जी मीतल ने सूर गीता का यह विवरण दिया है—

"सूरदास के नाम से मिलनेवाला यह नया ग्रंथ है, जो श्रीमद्भगवतगीता का ब्रजभाषा पद्यानुवाद है। इसकी एक हस्तलिखित प्रति जयपुर (राजस्थान) के श्री मदन मोहन शर्मा वकील के पास है। श्री जवाहर लाल चतुर्वेदी ने उक्त प्रति को देखकर उसका परिचय ब्रजभारती (वर्ष १०, संख्या २, सं० २०७३, आषाढ़-भाद्रपद) में प्रकाशित कराया था। उन्होंने बतलाया है, इस प्रति का आकार ९ इंच × ६ इंच अठपेजी है। इसकी पृष्ठ संख्या एक ओर लिखी हुई १६९ है। एक पृष्ठ में १२ पंक्तियाँ हैं और प्रत्येक पंक्ति में ९ अथवा १० अक्षर हैं। इसका कागज बादामी रंग का सांगानेरी है, और उस पर देशी काली स्याही से लिखा गया है। बीच बीच में लाल स्याही का प्रयोग भी हुआ है।

इसका प्रारंभिक अंश है—

धृतराष्ट्र उवाच—

अति धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र मध्य। सुत मेरे अरु पांडव प्रसिद्ध
जुध हेतु जुड़े जे सरब आय। सो करत कहा, संजय बताय

संजय उवाच—

देखी पांडव सेना उदार। करि व्यूह रचत सम्यक प्रकार
दुरजोधन आचारज समीप। ए वाकि कहे सुनिए पृथीप
पांडव सेना दीरध बिचारि। द्रोनाचारज लोचन निहारि
है धृष्टिदुमन तव सिष वलिष्ठ। तिंह करि विहु रचना अति प्रतिष्ठ

अति सूर धनुरधर बपु प्रचंड । अरजुन्न भीम जोधैं अखंड
जुजधान और भूपति विराट। संग्राम विदारथ सत्रु थाट

श्री जवाहर लाल चतुर्वेदी ने इसे सूरदास की प्रामाणिक रचना माना है; और इसके भाव एवं भाषादि की अत्यंत प्रशंसा की है। किन्तु हमें इसे सूर की प्रामाणिक कृति होने में पूरा संदेह है। यदि सूर की रचना माना ही जाय, तब यह उनके आरंभिक काल की कृति हो सकती है। इसका परीक्षण अत्यावश्यक है।"

—सूर सर्वस्व १७७-७८

मैं मीतल जी से सहमत हूँ कि सूर गीता महाकवि सूर की रचना नहीं है। मैं मानता हूँ कि सहस्र नामावली और सूर गीता दोनों ग्रंथों के अनुवादक सूर नवीन हैं।

१९ चरण चिह्न, २० दोहावली

इन दोनों ग्रंथों का अल्प परिचय सूर सर्वस्व में दिया गया है। वल्लभीय सुधा वर्ष २ अंक २ में 'सरस्वती भंडार, विद्या विभाग, कांकरोली में सूर साहित्य' नामक एक लेख प्रकाशित हुआ था। इस लेख के अनुसार 'चरण चिह्न' और 'दोहावली' ये दो ग्रंथ उक्त सरस्वती भंडार में पुस्तक संख्या २१/४ पर है। हिंदी संसार इनसे पूर्णतया अपरिचित रहा है। खोज रिपोर्टों में भी इनके संबंध में कुछ नहीं है। मीतल जी के अनुसार "इनकी भली भांति परीक्षा होने पर ही इनकी प्रामाणिकता का निश्चय किया जा सकता है।"

निश्चय ही ये दोनों ग्रंथ महाकवि सूर के नहीं हैं। ये सूर नवीन के ही हो सकते हैं।

२१. सूर साठी

सूर साठी चौपाई छंद में लिखित एक उपदेश प्रधान रचना है। इसमें चौपाई की ६० अर्द्धालियाँ हैं। पुरा काल में चौपाई के दो चरणों या अर्द्धाली को ही पूरा छंद माना जाता था। इसीलिए इस रचना को छंदों की संख्या एवं रचयिता कवि के नाम पर 'सूर साठी' कहा जाता है।

सूर साठी का केवल एक हस्तलेख काशी नागरी प्रचारिणी सभा की खोज में (सं० २००१-०३/४६१ क) मिला है। यह प्रति सरस्वती भंडार, विद्या विभाग कांकरोली की है, जो वहाँ हिंदी बंडल ४२ में संख्या १४ पर है। यह ग्रंथ वहाँ एक

बड़े हस्तलेख का अंग है और उसमें पत्र ३१-३५ पर अंकित है। आकार ५½×७ इंच है। प्रत्येक पृष्ठ पर २४ पंक्तियाँ हैं। अर्द्धाली १, २, २८, २६, ३०, ५६, ६० खोज रिपोर्ट में अवतरित हैं।

डा० दीनदयालु गुप्त ने सूर साठी को सूरसागर का अंश माना है। पर न तो किसी मुद्रित सूरसागर में, नहीं सूर के किसी विनय-पदावली-संग्रह में, यह संकलित है। मनसुख शिवलाल कंठीवाले, श्यामघाट मथुरा ने सं० १९८७ वि० में सूर पचीसी, सूर साठी और सूर सतक इन तीनों को एक पुस्तक रूप में छपाकर प्रकाशित किया था।

मीतल जी इस प्रकाशित प्रति के संबंध में लिखते हैं—

'उन्होंने (मनसूख शिवलाल कंठीवाले ने) इसकी हस्त प्रति कहाँ से प्राप्त की थी, यह ज्ञात नहीं होता है। इस पुस्तिका में इस पद का पाठ अत्यंत अशुद्ध रूप से छपा है। अन्य प्रतियों के अभाव में इसे शुद्ध रूप में प्रस्तुत किया जाना भी बड़ा कठिन है।''

मीतल जी सूर सर्वस्व में सूर साठी को अप्रामाणिक रचना मानते हैं। उनका कहना है—

'' 'सूरदास की वार्ता' की सं० १७५२ में लिपिबद्ध 'भावना वाली' प्रति (प्रसंग ८) के अनुसार सूरदास ने इसकी रचना गोपालपुर (जतीपुरा) के एक लोभी दूकानदार को भक्ति का उपदेश देने के लिए की थी। किंतु संवत १६६७ में लिपिबद्ध मूल-वार्ता की प्रति में यह प्रसंग नहीं है। जब वार्ता का यह प्रसंग ही प्रक्षिप्त है, तब उससे संबंधित इस पद को प्रामाणिक मानना उचित नहीं है। सूर निर्णय (पृष्ठ १७१) में हमने इसे सूर की स्वतंत्र रचना माना था, किंतु अब हम इसे अप्रामाणिक मानते हैं। काव्य की दृष्टि से यह शिथिल कृति है। इसकी हस्त-प्रतियाँ भी अधिक संख्या में उपलब्ध नहीं होती हैं। कांकरोली के सरस्वती भंडार में इसकी एक हस्त प्रति (पु० सं० ४२/१४) है।...... निष्कर्ष यह है कि इसे सूर की प्रामाणिक रचना नहीं माना जा सकता।''

इस संबंध में मैं मीतल जी से पूर्णतया सहमत हूँ कि 'सूर साठी' महाकवि सूर की रचना नहीं है। इसके आगे मुझे यह कहना है कि यह सूर नवीन की रचना है।

डा० धीरेन्द्र वर्मा ने जो 'अष्टछाप' संकलित संपादित किया है, उसमें प्रसंग-प्राप्त लोभी बनिये की वार्ता नहीं है, केवल ६ वार्ताएँ हैं। कांकरोली से प्रकाशित

प्राचीन वार्ता रहस्य भाग २ (अष्टछाप) के अंतर्गत यह वार्ता तो है, पर केवल प्रतीक 'कृष्ण सुमिरि तन पावन कीजै' दिया गया है, पूरा पद नहीं दिया गया है।

'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' का सं० १६५२ वाला जो भावना-सहित हस्तलेख है, उसका संपादन द्वारका दास परीख ने किया है। इसका दूसरा संस्करण सं० २०१० में बड़ोदा से प्रकाशित हुआ था। इसमें पृष्ठ ७७२-७३ पर यह समग्र पद दिया हुआ है। मैंने इसे वहीं से लिया है और खोज रिपोर्ट में अवतरित ६ अर्द्धालियों के आधार पर एतद्संख्यक अर्द्धालियों को किंचित संशोधित भी कर दिया है।

सूर साठी

राग विलावल

कृष्ण सुमिरि तन पावन कीजै। जौ लौं जग सुपना सों जीजै
अवधि उसास गिनैं सब तेरे। सो बीतत भय, आव न नेरे
जो यह सपनो नहीं बिचारे। कबहुँ न जनम विषय लगि हारे
गहै विवेक बीज लै बोवै। कबहुँ न जठर अग्नि में सोवै
बार-बार तोकों समुझावै। जो छिन जाय, सो बहुरि न आवै ५

ठगिनी विषय ठगौरी लाई। घटिका घटत छिनहि छिन जाई
गिनतहि गिनत अवधि नियरानी। छाँड़ि चल्यौ निधि भई बिरानी
होत कहा अब के पछताने। तरुवर पत्र न मिले पुराने
पवन उड़े सो बहुरि न आवे। कर्ता और अनेक बनावे
जल-थल पसु पंछी सु करे कृमि। मानुष तन पायो सब जुग भ्रमि १०

सो तन खोवे रति वित्त मनि। काँच गह्यो, बिसरी चिंतामनि
कबहूँ नीके नाथ न गायो। एकै मन दसहू दिसि धायौ
मन ही मन माया अवगाहत। नायक भयो तिहीं पुर चाहत
स्वर्ग रसातल भुवि रजधानी। तऊ तृपत न भयो अभिमानी
ऐसेहि करत अवधि सब बीती। गह्यौ न ज्ञान, रह्यौ यह रीती १५

कबहुँ सजन मिलि करत बड़ाई। कबहुँक ललना ललित लजाई
कबहुँक हय हाथी रथ आसन। कबहुँक पलका सुखद सुवासन
कबहुँक चँवर छत्र सिर ढारे। कबहुँक सुभट्ट पसुन चढ़ि मारे
कबहूँक तोरन छत्र बनावे। कबहूँ मद गज जूथ लरावे
जोबन द्वार दूति सब ठाढ़ी। त्यों-त्यों तृष्णा सतगुन बाढ़ी २०

दिव्य वसन फल फूल सुवासी । नव जोबन अबला सुखरासी
द्वार कपाट सहस एक लागे । सुभट पहरुवा चहुँ दिसि जागे
रमनी रमत न रजनी जानी । माया मदहि पियो अभिमानी
सुत वित बनिता हेत लगायो । तब चेत्यो जब काल चेतायो
झूठो नाटक, संग न साथी । नौबत द्वार रु हय गज हाथी २५
भूप छिनक में भयो भिखारी । क्यों हूद सूल न सहे विकारी
भयो अनाथ, सनाथ न बाँध्यो । त्रियक सूर सर सन्मुख साध्यो
मनुष देह धरि अधम कमायो । ते तिरछे दुख दारुन पायो
जिहिं तन काज जीव-बध कीने । रसना-रस अमरित-रस लीने
सो तन छुटत, प्रेत करि डारचौ । प्रेत प्रेत कहि नगर निकारचौ ३०
हिंसा करि पालन करि जाको । विष्टा करम भस्म भइ ताको
भोग अष्ट अरु बीस भयानक । हरि पद विमुख विषम रस पावक
जागि जागि रे ह्याँ को तेरो । माया सुपन कहत सब मेरो
कृष्न बिना तोहि कौन छुड़ावै । सो करुणामय बिरद बुलावै
आन देव को नहीं भरोसो । बातन षटरस लाख परोसो ३५
जींवन गयो तृषित की नाईं । मृग-तृष्णा कबहूँ न अघाईं
ऐसे आन देव सुखदायक । हरि बिनु कौन छुड़ावन लायक
धर्मराज कहि सुनि कृत हारी । तू विषयन-रत सुरति बिसारी
गर्भ आनि रक्षा जिहिं कीनी । संकट मेटि अभयता दीनी
हस्त चरन लोचन नासा मुख । रुचिर बूँद ते लह ऐसो सुख ४०
जो सुख तू सपने नहिं जान्यो । प्राननाथ कहि निकट न आन्यो
कित ये सूल सहे अपराधी । निगम सीख एकौ नहिं साधी
कोटिन बार मनुष तन पायौ । हरि-पथ छोड़ि अपथ को धायौ
समय गए असमय पछितैयै । मानुष जनम बहुरि नहिं पैयै
सूझत स्वामी पीठ दे आगे । पुनि पुरुषारथ काहे लागे ४५
पारस पाइ जलद में बोरे । पुनि गुन सुनत कपारहि फोरे
चिन्तामणि कौड़ी लगि दीनी । सुनि परिमित करुना अति कीनी
पाइ कल्पतरु मूल खनावे । सो तरु पुनि कैसे सो पावै
मधु भाजन पूरन विधि दीनो । सोहू छाँड़ि हलाहल कीनो
कामधेनु तजि अजहिं बिसाहे । गज-बल छाँड़ि स्याल-बल चाहे ५०

यह नर-देह स्याम बिनु खोई। कपि कौतुक लौं बाँधि बिगोई
काहे न करम कियो तू ऐसो। सुक सन सनक सनंदन जैसो
सुर नर मुनि रु असुर पुनि देवक। हरि-पद भजि सब तेरे सेवक
परदक्षिणा दे सीस नवावे। मनसिज तोइ न परसन पावे
जाकों भजत ऐसे सुख पैये। सुनि सठ सो कैसे बिसरैये ५५

अगवनि पतित नाम-निस्तारी। जनम करम संताप निवारी
निरभय होइ भक्ति निधि पाई। कबहू काल-ब्याल नहिं खाई
सर्वसु जीवन कृष्ण नाम पद। भव-जल ब्याधि उपाधि परम पद
श्री भगवान परम हितकारी। द्वारे रटत हरि 'सूर' भिखारी
परम पतित सरनाई लीजै। पद रज दान अभयता दीजै ६०

२२. अष्टपदी वनयात्रा

अष्टपदी वनयात्रा के संबंध में प्रभुदयाल मीतल लिखते हैं—

"सूरदास के नाम से उपलब्ध यह रचना हिंदी संसार के लिए अपरिचित है; जबकि गुजराती भक्तजनों में इसका अच्छा प्रचार है। गुजरात के वल्लभ संप्रदायी मंदिरों तथा आचार्यों की बैठकों में वहाँ के वैष्णवों द्वारा संध्या के समय इसका सामूहिक गायन किया जाता रहा है। इसमें व्रज के वन उपवनों तथा कुंड सरोवरों का कथन सरल सुगम व्रजभाषा में लोक काव्य शैली द्वारा किया गया है। गुजरात में इसकी अनेक प्रतियाँ मिलती हैं। काशी ना० प्र० सभा की खोज रिपोर्ट (१६२६-१२८ पृष्ठ ६८४) के अनुसार इसकी एक हस्तप्रति सं० १९३७ की लिखी हुई हरदोई (उ० प्र०) के पं० उमाशंकर दुबे के पास है।

× × ×

हमें लोक काव्य शैली की यह रचना सूरदास की प्रामाणिक कृति नहीं जान पड़ती। फिर भी इसका भली भाँति परीक्षण करने की आवश्यकता है।"

—सूर सर्वस्व १७५-७६

डॉ० दीनदयाल गुप्त ने इसकी चर्चा ही नहीं की है।

खोज में वर्णित हस्तलेख में ५ पत्र हैं, जिनका आकार ४$\frac{1}{3}$ × ३$\frac{1}{2}$ इंच हैं। प्रति पृष्ठ पंक्ति संख्या ६ है। अनुष्टुप श्लोकों में छंद परिमाण-संख्या १६ है। खोज रिपोर्ट १९२६ में इस ग्रंथ के प्रारंभ के १३ एवं अंत के ६ चरण अवतरित हैं। ग्रंथांत में यह पुष्पिका है—

"इति अष्टपदी वनयात्रा संपूर्णम् (सं० १९३९)"

यह रचना खोज रिपोर्ट में पूर्णतः अवतरित है, यद्यपि पूर्ण प्रतिलिपि होने का कोई संकेत नहीं दिया गया है।

सं० २०२१ वि० में पुस्तक प्रकाशक वैष्णव समिति, हरिपुरा, सूरत ने षष्ठ निधि स्वरूप श्री बालकृष्ण जी के सूरत के घर की 'कीर्तन प्रणालिका' नामक पद संग्रह का प्रकाशन किया था। इनमें कुल १६३४ पद हैं। इस कीर्तन प्रणालिका में संख्या २२८ पर यह पद अवतरित है। यहाँ से इसे पुनः आचार्य पं० सीताराम जी चतुर्वेदी ने अपनी सूर ग्रंथावली भाग ५ में संकलित किया है (पद संख्या ५९८६)।

यह समस्त पद १९ चरणों का है। हस्तलेख एवं कीर्तन प्रणालिका दोनों में १९ चरण हैं। क्या कोई एक चरण दोनों में छूट गया है ? ग्रंथ को अष्टपदी कहा गया है। अतः इसमें १६ चरण ही होना चाहिए। प्रथम चरण ध्रुवक है — 'यह ब्रज मेरे मन भाए जू' या 'यह ब्रज-रज मेरे मन भाई जू'। अंत के दो चरण उपसंहार हैं—

बारह बन चौबिस उपवन की, लीला गाय सुनाई जू
'सूरदास' भगवंत भरोसे, चित्त चरन में लाई जू

इनकी गणना न करने पर यह १६ चरणों की अष्टपदी हो जाती है।

मैं इस अष्टपदी वनयात्रा को महाकवि सूर की रचना नहीं मानता; इसे सूर नवीन की रचना मानता हूँ। निश्चय ही यह द्वादश स्कंधात्मक सूरसागर का अंश नहीं है। यह लघु काव्य है; पर स्वतंत्र रचना है।

ब्रज मंडल में कुल १२ वन और २४ उपवन माने जाते हैं। इनकी नामावली यूँ है—

द्वादश वन—१. मधुवन, २. ताल वन, ३. कुमुद वन, ४. बहुला वन, ५. काम वन, ६. खदिर वन, ७. वृंदावन, ८. भद्र वन, ९. भांडीर वन, १०. बेल बन, ११. लोह वन, १२. महावन

चौबीस उपवन—१. गोकुल, २. गोवर्धन, ३. बरसाना, ४. नंदगाँव, ५. संकेत, ६. परमाद्रि, ७. अडीग, ८. शेषसाई, ९. माट, १०. ऊँचागाँव, ११. खेलवन, १२. श्रीकुंड, १३. गंधर्ववन, १४. पारसोली, १५. बिलछू, १६. बच्छबन, १७. आदि बदरी,

१८. करहला, १९ अजनोख, २०. पिसला, २१. कोकिला बन, २२. दधिगांव, २३. कोटवन, २४. रावल

इन्हीं १२ वनों और चौबीस उपवनों का उल्लेख 'अष्टपदी' वन यात्रा में हुआ है।

अष्टपदी वनयात्रा

यह व्रज-रज मेरे मन भाए जू

श्री जमुना विश्रांत न्हाय कै, नीके नेम लिवाए जू
मथुरा देवी दर्सन करके, महाप्रभू दरसाए जू
मधुबन, ताल, कुमुद, बहुला बन, सांतन कुंड में न्हाए जू
राधा कुंड औ कृष्ण कुंड की, महिमा बरनि न जाए जू
गोबरधन की दै परिकरमा, मानसि गंगा न्हाए जू
परमदरा आदि बद्रीबन, सांकरी खोर में न्हाए जू
कामा काम कामना पूरन, यह बन अति सुखदाई जू
बरसाने बसि नंद गाम पै, कोकिला दहिने लाई जू
बट संकेत वृंदाबन बसि कै, लीने चरन पुजाई जू
शेषनाग छाया हरि दर्सन, जहँ पौढ़े जदुराई जू
खेलन बन औ चीरघाट पै,, नंद घाट दरसाई जू
बलभद्र भांडीर सकल बन, मानसरोवर न्हाई जू
करि विश्राम लोह बन बसि के, बलदाऊ परसाई जू
गोकुल और महाबन महिमा, सारद पार न पाई जू
यह व्रज धनि मथुरा वृंदाबन, धन्य जसोदा माई जू
जिनकी महिमा को कहि बरने, प्रगटे कुँवर कन्हाई जू
बारह बन चौबिस उपबन की, लीला गाइ सुनाई जू
सूरदास भगवंत भरोसे, नित चरनन में लाई जू

२३. सेवाफल

१ प्रकाशित प्रतियाँ

(क) राग कल्पद्रुम चतुर्थ खंड के अंतर्गत : १८६८ वि०।
(ख) प्रभुदयाल मीतल द्वारा संपादित सूर सारावली के अंतर्गत : सं० २०१४।
(ग) पं० सीताराम जी चतुर्वेदी द्वारा संपादित सूर ग्रंथावली चतुर्थ खंड के

अंतर्गत : २२ मई १९७८ ई० : सं० २०३५ वि० ।

(घ) 'सूर सौरभ' कला १ किरण २ माघ २०३६ में प्रकाशित उदय शंकर शास्त्री के लेख 'सेवाफल का रचयिता' के अंतर्गत ।

२ हस्तलेख

काशी नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट सं० २००१/४६१ ङ०, च में दो हस्तलेखों का विवरण है। दोनों प्रतियाँ सरस्वती भंडार, विद्या विभाग, कांकरोली की हैं। ये क्रमशः हिन्दी बंडल संख्या २३, पुस्तक संख्या ७ एवं हिंदी बंडल संख्या १४ पुस्तक संख्या ३ के रूप में संकलित हैं। दो अन्य हस्तलेख ये हैं—

१. प्राप्ति स्थान – जीवनेशाचार्य शुद्धाद्वैत पुस्तकालय पोर बंदर। पुस्तक संख्या २३ (घ) २४३ ।

२. जतीपुरा (मथुरा) स्थित मदनमोहन जी का मंदिर ।

३ ग्रंथ में प्रयुक्त छंद और छंद संख्या

सेवाफल में मुख्य रूप से १६ मात्राओं का चौपाई छंद प्रयुक्त है, जो यत्र तत्र १५ मात्राओं का चौपई छंद भी हो गया है।

दो-दो चरणों का एक छंद मानकर इसमें कुल ४८ छंद हैं।

खोज रिपोर्ट सं० २००१/४६१ में ङ हस्तलेख के छंद १-५, २२-२७ ४२-४३ अवतरित हैं।

यहाँ ५ अर्द्धालियों की छूट है और क्रम में भी उलट-पलट है—यथा— ३ = ४, २२ = २४, २३ = २५, २४ = २६, २५ = ३०, २६ = ४०, २७ = ४१, ४२ = ४७, ४३ = ४८ ।

रेखांकित अंश छूट गए हैं

२. गुरु सेवा करि भक्ति बनाई। कृपा भई, तब मन मैं आई

३. यही देह तैं सुमिरौं देवा। देह धारि करियौ यह सेवा

५. उठि कैं प्रात गुरुहिँ सिर नावै। प्रात समै श्री कृष्ण कौं ध्यावै

एकाध नए छंद भी हैं, यथा—

हरि मंदिर में करे बुहारि। कबहुँ न झाँके जम की द्वारि ५

प्रति ५ में चार-चार चरणों को छंद मानकर छंद संख्या १, १२-१३, २३-२४ अवतरित है।

समीक्षा

डा० कैलाशचंद्र भाटिया 'सूरकाव्य में सेवा का महत्व' शीर्षक लेख में इस ग्रंथ के संबंध में लिखते हैं—

"सूरदास ने प्रधान ग्रंथों के अतिरिक्त सेवाफल शीर्षक से एक छोटा-सा ग्रंथ भी लिखा था, जो कि उनके गुरु महाप्रभु श्री वल्लभाचार्य जी के सस्कृत ग्रंथ 'सेवा-फल' पर आधारित है, जिसमें सेवा के तीनों फलों का विस्तृत वर्णन है। सूरदास रचित इस सेवाफल में बैकुंठ आदि का विशेषतः स्पष्टीकरण किया गया है। सेवा-भाव के जितने भी रूप हो सकते हैं उनका सूर ने अपने काव्य में विवरण ही प्रस्तुत नहीं किया है, वरन् क्रियान्वयन भी किया है। यही कारण है कि उन्हें पुष्टिमार्ग का जहाज कहा गया है और अष्टछापी कवियों में उन्हें सर्वोच्च स्थान दिया गया है।"

—सूर सौरभ कला १. किरण १, कोजागरी पूर्णिमा २०३६, पृष्ठ १४

सेवाफल का रचयिता कौन

श्री उदयशंकर शास्त्री ने सूर सौरभ कला १, किरण २ में 'सेवाफल का रचयिता' एक लेख लिखा है, जिसमें उन्होंने कहा है—

"खोज रिपोर्ट के अनुसार सेवाफल महाप्रभु वल्लभाचार्य जी के सिद्धांत मुक्तावली नामक ग्रंथ का अनुवाद है। अनुवाद किसने किया? कब किया? इसका कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है। इतना अवश्य है कि यह अनुवाद गुसाईं विट्ठलनाथ जी के काल में हुआ है। ग्रंथ में छाप सूरदास की होने से ही लोगों को यह भ्रम हुआ है कि यह रचना सूरसागर के रचयिता सूरदास की ही है। परंतु इसकी भाषा इसकी पुष्टि नहीं करती।"

—पृष्ठ ३८

शास्त्री जी ने महाप्रभु वल्लभाचार्य जी के सेवाफल को समग्रतः उद्धृत कर दिया है। इसमें कुल सात ही श्लोक हैं। फिर मूल और तथाकथित अनुवाद का तुलनात्मक निष्कर्ष निकालते हुए कहते हैं—

"महाप्रभु जी के इस ग्रंथ पर उन्हींके वंशजों के द्वारा कई टीकाएँ संस्कृत में लिखी गई हैं। उन सबमें पुष्टिमार्गीय सिद्धांतों का प्रतिपादन करते हुए इसके एक-एक अक्षर की व्याख्या प्रस्तुत की गई है। परंतु भाषा में सेवाफल का जो अनुवाद प्राप्त है, उसमें उक्त सिद्धांतों की चर्चा न होकर केवल माहात्म्य अथवा फल की विशेष चर्चा की गई है। और उस फल की चर्चा में भी संप्रदाय के गूढ़ तत्वों की ओर इंगित भी नहीं किया गया है।"

—पृष्ठ ३९

× × ×

"इस सेवाफल का सूरदास जी के जीवन तथा उनके कृतित्व से कोई मेल नहीं खाता। इसमें कहा गया है—

सेवा की यह अदभुत रीती
श्री विठलेस सों राखे प्रीती

जब कि वार्ता में सूरदास जी से प्रश्न किया गया है कि आपने सहस्रावधि पद किए हैं, पर कुछ महाप्रभून को जस वर्णन नाहीं कियो। और यह प्रश्न असंगत भी नहीं है कारण कि सूरदास की रचनाओं में न तो महाप्रभु जी का और न गुसाईं जी का ही कहीं नाम आया है और न प्रकारांतर से ही उनका कोई प्रसंग।

दूसरे इस ग्रंथ की भाषा इतनी प्रसाद गुण रहित है कि इसे सूरदास (अष्टछापी ?) कृत मानने में बड़ी असुविधा होती है। ऐसा लगता है कि यह रचना गुसाईं विट्ठलनाथ जी के बाद किसी अन्य सूरदास की है।"—पृष्ठ ३९-४०

शास्त्री जी आगे एक अत्यंत महत्व की बात 'बड़े सूरदास' का उल्लेख करते हुए लिखते हैं—

"परंपरा से सुनने में आया है कि गुसाईं विट्ठलनाथ जी ने भी किसी नेत्रहीन व्यक्ति को दीक्षा दी थी—इसका पोषण गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के उस चित्र से भी होता है, जिसमें गुसाईं जी और सूरदास विद्यमान हैं। अवस्था में गुसाईं जी बड़े और सूरदास आयु में छोटे अर्थात् ३०-४० वर्ष की आयु के चित्रित किए गए हैं। शायद यही कारण रहा हो कि जिससे सूरसागर के रचयिता सूरदास जी को बड़े सूरदास की संज्ञा दी गई हो।" —पृष्ठ ४०

इसके आगे शास्त्री जी ने 'सेव्य स्वरूपन का वाता' नामक हस्तलेख की ५ पंक्तियों की फोटो दी है, जिसका हमारे काम का अंश यह है—

"श्री श्याममनोहर जी श्री महाप्रभु जी के सेव्य सो 'बड़े सूरदास' के ठाकुर जी॥ जो जिनने सूरसागर ग्रंथ कीयो हो ॥२२॥"

शास्त्री जी के कहने का अभिप्राय यह है कि सेवाफल प्रसिद्ध अष्टछापी महाकवि सूरदास की रचना नहीं, यह किसी उत्तरकालीय सूरदास की रचना है। इतना तो ठीक, पर जब वे कहते हैं कि यह सूरदास विट्ठलनाथ के शिष्य थे, तो यह बात ठीक नहीं।

अब आइए मूलग्रंथ की इन तीन अर्द्धालियों पर—

सेवा की यह अदभुत रीती । श्री विठलेस सों राखे प्रीती ४५
श्री अचार्य प्रभु प्रगट बनाई । कृपा भई तब मन में आई ४६
सेवा को फल कहलो न जाई । सुख सुमिरे श्री वल्लभराई ४७

छंद ४५ में स्पष्ट ही गोसाईं विट्ठनाथ हैं । छंद ४६ में महाप्रभु वल्लभाचार्य का उल्लेख है । क्रम उलट गया है, जो सकारण है । वल्लभाचार्य ने पुष्टि मार्ग की स्थापना की पर नवीन सेवा प्रणाली का विस्तार गोसाईं विट्ठलनाथ ने ही किया, जो बाद में चलती रही ।

छंद ४७ में आया 'श्री वल्लभराई' अत्यंत महत्वपूर्ण है । यह है कौन ? मेरी शोध के अनुसार यह गोसाईं गोकुलनाथ हैं, जिनका घरू नाम वल्लभ था । यह इस सूरदास के गुरु थे । उसने गो० गोकुलनाथ वल्लभ से सं० १६६७ में पुष्टि मार्ग में दीक्षा पाई थी । इस संबंध में 'मानस मयूख' सितंबर १९६६ में प्रकाशित मेरा लेख 'गोसाईं गोकुलनाथ वल्लभ और उनका पद साहित्य' अवलोकनीय है ।

शास्त्री जी ने गोसाईं विट्ठलनाथ के किसी नेत्रहीन व्यक्ति के दीक्षा देने की जो परंपरा सुनी है, वह गोसाईं गोकुलनाथ 'वल्लभ' द्वारा 'सूरदास नवीन' को दीक्षा देने की वास्तविकता है ।

जब महाप्रभु वल्लभाचार्य के सेव्य ठाकुर श्याम मनोहर के सेवक सूरसागर के रचयिता महाकवि सूरदास बड़े सूरदास हैं, तो कोई छोटा सूरदास भी अवश्य होना चाहिए । यह छोटा सूरदास और कोई नहीं साहित्य लहरी का प्रणेता सूर नवीन है ।

अस्तु, सेवाफल का रचयिता साहित्य लहरी एवं सूरसारावली का रचयिता सूर नवीन है, जिसका जीवनकाल सं० १५९०—१६९० के आसपास है, जो चंदवरदाई का वंशज था, ब्रह्मभट्ट था, ग्वालियर का रहने वाला था, अकबरी दरबार के गायक ग्वालेरी रामदास का पुत्र था, और स्वयं अकबरी दरबार का गायक रह चुका था ।

सेवाफल

राग विलावल

भजो गोपाल भूल जनि जाहु । मानुष जनम को येही लाहु
गुरु सेवा करि भक्ति बनाई । कृपा भई, तब मन मैं आई
यही देह सौं सुमिरो देवा । देह धारि करिये यह सेवा
सुनो संत, सेवा की रीति । करै कृपा, मन राखो प्रीति ४

उठिकैं प्रात गुरुन सिर नावै। प्रात समै श्रीकृष्ण को ध्यावै
जोइ फल माँगै, सोइ फल पावै। हरि-चरनन में जो चित लावै
जिन ठाकुर को दरसन कियौ। जीवन जन्म सुफल करि लियौ
जो ठाकुर की आरति करैं। तीन लोक वाके पाँयन परैं ८

जो ठाकुर को करै प्रनाम। वैकुंठ है तिनकौं निज धाम
जो कोइ हरि कौ सुमिरै नाम। ताके सकल पूर्ण हैं काम
जो ठाकुर को ध्यान लगावै। ध्रुव-प्रहलाद की पदवी पावै
जिन हरि को चरनामृत लियौ। वैकुंठ मैं अपनो घर कियौ १२

जो हरि आगे बाजित्र बजावै। तीन लोक रजधानी पावै
जो जन हरि को ध्यान करावै। गर्भ वास में कबहुं न आवै
जो हरि कौ नित करै सिंगार। ताकौ पूर्न है अंगीकार
जो ठाकुर को द्रपन दिखावैं। चंद सुरुज ताकौं सिर नावै १६

जो ठाकुर कौं तुलसी धरावै। ताकी महिमा कहत न आवै
ठाकुर कौ कीर्तन जु सुनावै। ताकौं ठाकुर निकट बुलावैं
हरि-मंदिर मैं दीपक करै। अंधकूप मैं कबहुँ न परै
जो ठाकुर की सेज बिछावै। निज पदवी लहि दास कहावै २०

जो ठाकुर को पलना झुलावै। बैकुंठ-सुख अपने घर ल्यावै
जो ठाकुर कौं झुलावै डोल। नित लीला मैं करै कलोल
उत्सव करि मन आरती करै। ताके अधीन रहैं श्री हरै
जो ठाकुर कौं भोग धरावै। वह तो नित परमानँद पावै २४

जो पद दीन्ह जसोदा मात। ता सुख की कछु कही न बात
ग्वालन सहित गोपाल जिमावै। सो ठाकुर को सखा कहावै
जो ठाकुर कौं स्वाद करावै। सो ताको फल तबही पावै
गोकुल गोवर्धन-लीला गावै। चरन-कमल कौं तब ही पावै २८

श्री जमुना जल करै जो पान। सो ठाकुर के रहै निधान
जहँ वैष्णव की मंडली होवै। ताकी संगति नित-प्रति जोवै
श्री भागवत सुनै आनँद करि। ताकै हिरदै बसैं नित्य हरि
जो ठाकुर कौ देह समरपै। उत्तम सृष्टि जानि कै अरपै ३२

जिन हरि को गागरि भरि आनी। तिन बैकुंठ अपनी थिति ठानी
जो ठाकुर को मंदिर लेपै। माया ताकौं कबहुँ न लेपै

जो ठाकुर कौं सीधो बीनै। जितने तीरथ, तितने कीनै
जो ठाकुर की माला पोवै। सोई परम भक्त नित होवै ३६
जो ठाकुर कौं चंदन लावै। त्रिविध ताप सताप मिटावै
जो ठाकुर के पाञन धोवै। सदा सर्वदा निर्मल होवै
जो हरि कीर्तन मुख सौं करै। मुक्ति चारि ताके पायँन परै
सेवा में जे आलस करै। कूकुर ह्वै कै, फिर फिर मरै ४०
मनसा जो सेवा आचरै। तब ही सेवा पूरी परै
सेवा कौ आसरौ करि रहै। दुख-सुख बचन सबहिं कौ सहैं
जो सेवा में आलस लावै। सो जड़ जनम प्रेत कौ पावै
वेद पुरानन में यों भाख्यौ। सेवा-रस ब्रज-बीथिन चाख्यौ ४४
सेवा की है अदभुत रीत। श्री विट्ठलनाथ सौं राखै प्रीत
श्री आचार्य प्रभु प्रगट बनाई। कृपा भई तब मन मैं आई
सेवा कौ फल कह्यौ न जाई। मुख सुमिरै श्री वल्लभ राई
सेवा को फल सेवा पावै। सूरदास प्रभु हृदै समावै ४८

२४. पहलाद की बारहखड़ी

खोज रिपोर्ट सं० २००१/४६२ में सूरदास के नाम पर 'बारहखड़ी' नामक एक लाधु रचना का विवरण दिया गया है। इसमें क से लेकर ह तक प्रत्येक अक्षर पर चौपाई रचकर प्रह्लाद चरित वर्णित है। इसका लिपिकाल सं० १८३६ वि० है। हस्तलेख हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग में हैं। खोज रिपोर्ट में इस रचना को महाकवि सूरदास की रचना नहीं स्वीकार किया गया है। इनके संबंध में केवल यह लेख है—

"सूरसागर के रचयिता-प्रसिद्ध सूरदास से ये भिन्न हैं।"

यह सूर नवीन से अभिन्न जान पड़ते हैं। सूर सर्वस्व में इस ग्रंथ का उल्लेख नहीं हुआ है।

प्रारंभिक अंश

पहलाद की बाराखरी

क के कहु पहलाद किन्ही बहकाए। हमरे बैरी कंठ लगाए
छाड़ो हरि, मुख भजो न राम। इतनी कही हमारी मान
ख मे खलक उपाई किसकी। हिरदै भगति करूँ मैं उसकी
रा रा मंम्मा पढ़ूँ बिचारा। हरि बिनु कौन उतारै पारा

ग गे गुरू हमकूँ बहकावै। हिरनाकुस का नाम लिवावैं
हिरनाकुस का नाम न प्यारा। मारो संठी घोह पिटारा
× × ×

अंतिम अंश

पहलाद उतरि गए पारा। बहुरि न आवै यह संसारा
राडे राड मीरी बहुतै सुख पावा। विप्र सुदामा हरि गुन गावा
बारहखरी पढ़ै चित लाई। कहै सूर बैकुंठै जाई

खोज रिपोर्ट १००१/४६२

२५. (कृष्ण की) बारहखड़ी

खोज रिपोर्ट १६३२/२ २ए में 'बारहखड़ी' नाम से एक ग्रंथ का विवरण है। यह ४ पन्ने की पोथी है। लिपिकाल जेठ बदी १५ सूर्यवार सं० १८८१ वि० है। प्राप्ति स्थान है—पं० प्रभुदयाल, स्थान - अकबरा, डा० रुनकता, जि० —आगरा। रिपोर्ट के अनुसार इसमें दो बारहखड़ियाँ हैं। पहली बारहखड़ी दोहों में है। इसमें कृष्ण के गुणों का बखान है। रिपोर्ट में इसके प्रारम्भिक अंश—३ दोहे अवतरित हैं। इसके अन्त का अंश नही अवतरित है।

सूर सर्वस्व में इस ग्रंथ का कोई उल्लेख नहीं है।

(कृष्ण की) बारहखड़ी (प्रारंभिक अंश)

क का कृष्ण गोपाल को, करि सुमिरन दिन रैन
टेरे तासु कै हेतु हैं, पावैगो सुख चैन १
ख खा खेत न छाड़िये, सूरवीर को काम
सायर ह्वै सन्मुख रहै, पन राखैगो राम २
ग गा गुरु की सीख सुनि, छाड़ो सकल जँजाल
भवसागर के तरन को, कीजै कछू उपाव ३

—खोज रि० १६३२/११२ए

२६. (सुदामा की) बारहखड़ी

खोज रिपोर्ट १६३२/२१२ए में जो हस्तलेख 'बारहखड़ी' विवृत है, उसमें दो बारहखड़ियाँ हैं। पहली बारहखड़ी कृष्ण की है और दोहों में लिखित है। इसमें कोई कथा नहीं है। केवल कृष्ण के गुणों का बखान है।

दूसरी बारहखड़ी चौपाई-छंदों में लिखी है। इसके अंतिम अंश खोज रिपोर्ट में अवतरित हैं। इसकी पुष्पिका यह है—

"इति श्री सुदामा बाराखरी सम्पूर्ण
संवत १८८७ वार सूर्य्यो, सवाई राम ने लिखी मिति जेठ बदी १५"

सुदामा की बाराखरी (अंतिम अंश)

ह हा हरि की सेवा कीनी । अठ सिधि नव निधि ताकूँ दीनी
धू पहलाद उतरि गए पारा । बहुरि न आए यह संसारा
र रा रांडि मांडि बहुत सुख पायो । विप्र सुदामा हरि गुण गायो
बाराखरी पढ़ो मन धारे । सूरदास वैकुंठ सिधारे

—खोज रि० १६३२/२१२ए

२७. बेनीमाधव जी की बारहमासी

बेनीमाधौ जी की बारहमासी की दो प्रतियाँ खोज में मिली हैं ।

१. खोज रिपोर्ट २००१/४६४क, बारहमासी । प्राप्ति स्थान—सरस्वती भंडार, विद्या-विभाग काँकरोली, हिंदी बंडल ७०, पुस्तक संख्या २/६ ।
२. खोज रिपोर्ट २००१/४६४ख, बेनीमाधौ जी के बारहमासा ।—लिपिकाल सं० १६४१ वि० । प्राप्ति स्थान - श्रीमती चौराता देवी, धर्मपत्नी स्व० रामशंकर पांड़े, ग्राम—चौंडीहार (सुरसुतीपुर), पोस्ट—अटरामपुर; जिला इलाहाबाद ।

इस रचना में कृष्ण वियोग में राधा और गोपियों का विरह वर्णित है । खोज रिपोर्ट के अनुसार—

"इसकी भाषा व्रज और खड़ी बोली का मिश्रण है । इस दृष्टि से रचयिता प्रसिद्ध कवि सूरदास से भिन्न १९वीं शताब्दी का विदित होता है ।"

संभवतः यह रचना भी सूर नवीन की है ।

यह वेंकटेश्वर प्रेस से १६१० ई० में प्रकाशित 'सूर्यपुराणादि २२५ रत्न' में भी प्रकाशित है । खोज रिपोर्टों में इसके आदि और अंत के ही कुछ अंश दिए गए हैं ।

खोज रिपोर्ट २००१/४६४ख के अंत में एक अतिरिक्त दोहा यह है, जो मूल ग्रंथ का अंश नहीं है, लिखक की ओर से है । मनोरंजक होने से यहाँ दे दिया जा रहा है—

लिखा कायथ को मिटि सकै, विधना लिखा न जाइ
जैसे कोंहार के आवाँ, करिया लाल बनि जाइ

'अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय' में डा० दीनदयालु गुप्त ने इस ग्रंथ पर कोई विचार नहीं किया है ।

इस ग्रंथ के संबंध में डा० प्रभुदयाल मीतल लिखते हैं —

"इस ग्रंथ की एक हस्तलिखित प्रति लछमनपुर, पोस्ट मिसरिक (जिला सीतापुर) के श्री गंगादीन मुराउ के पास बतलाई गई है। मथुरा आगरा के प्रेसों ने सन् १८६७ में इसका मुद्रण भी किया था। श्री जवाहरलाल चतुर्वेदी के मतानुसार यह बहुत ही उत्कृष्ट सूर-रचना है। किंतु हमें इसके सूरदास कृत होने में संदेह है। फिर भी इसका परीक्षण किया जाना चाहिए।"

— सूर सर्वस्व, पृष्ठ १७६

मैं इस लोक-काव्य को सूर नवीन की रचना मानता हूँ और इसे महाकवि सूर की रचना नहीं मानता।

बेनीमाधवजी की बारहमासी

कार्तिक किलोल करैं सब सखियाँ, राधा विचार करैं मन में रे
माधौ पिया को आनि मिलावौ, नाहीं तो प्रान तजौं छिन में रे
हमकौं छाँड़ि चले बेनीमाधौ, राधा सोच करै मन में रे ॥ १ ॥
अगहन गेंद बनाय साँवरे, जाय खेलैं तट यमुना के रे
खेलत गेंद गिरो यमुना में, काली नाग नाथ्यो छिन में रे
हमकौं० .... ॥ २ ॥
पूस मास हमसे छल कीनो, आप चले सैंया मधुवन कूँ
तुम नँदलाल जनम के कपटी, हमसौं कपट कियो मन में
हमकौं० .... ॥ ३ ॥
माह मास पिया जाड़ो लगत है, नींद न आवै मेरे नयनन कूँ
हमको योगिनि कीनी माधौ जी, घर घर अलख जगावन कूँ
हमकौं० .... ॥ ४ ॥
फागुन रंग बनाय साँवरे, जाय खेले सँग कुबिजा के
फेंट गुलाल हाथ पिचकारी, मारत हैं तकि तकि घूँघट में
हमकौं० .... ॥ ५ ॥
चैत मास फूल वन टेसू, ऊधो आए समुझावन को
सुमिरनी हाथ, गले मृगछाला, अंग विभूति लगावन को
हमकौं० .... ॥ ६ ॥
मास बैसाख ऐस मेरी बारी, आप न आए सइयाँ मधुबन को
ऋतु ग्रीषम अरु बिरह सतावै, बिरह की हूक लगी तन में
हमकौं० .... ॥ ७ ॥

जेष्ठ में ज्वाला फुकै तन मेरे, ऊधो कहिये घर आवन की
एक तो अकेली, दूजे बिरह सतावत, आय गई ऋतु बरखा की
हमकौं०...॥ ८ ॥
लगो अषाढ़, घुमड़ि आए बदरा, बिजली चमके मेरे आँगन में
चौंकि चौंकि चहुँ ओर निहारौं, जैसे मीन फिरै जल में
हमकौं०...॥ ९ ॥
सावन स्वामी हमसे छल कीन्हो, प्रीति करी जाय कुबिजा से
अहो नँदलाल, प्राण कैसे राखूँ, नहीं आए स्याम वृंदावन में
हमकौं०...॥१०॥
भादौं भवन नींद नहिं आवै, मोरवा बोले व्याही मधुवन में
कोयल ह्वै मैं वन वन ढूँढ़ूँ, सूखे ताल वृंदावन के
हमकौं०...॥११॥
क्वार मास निर्मल भए चंदा, गोरी सोवै अपने आंगन में
सूरदास तब आनि मिले हरि, सुखी भई राधा मन में
हमकौं०...॥१२॥

२८. बारह मासा

''सूरदास के नाम से प्रचलित यह भी लोक काव्य शैली की एक सामान्य रचना है। इसकी कई हस्तलिखित प्रतियाँ विभिन्न स्थानों में उपलब्ध हैं। और मथुरा, आगरा, दिल्ली, कानपुर के प्रेसों द्वारा इसे अनेक बार छापा जा चुका है। फिर भी भाषा और रचना शैली की दृष्टि से अष्टछापी सूरदास की कृति कदापि नहीं कहा जा सकता। इसे किसी सामान्य लोक कवि ने सूरदास के नाम से रच दिया है। अतएव यह एक प्रक्षिप्त रचना है। इसका प्रमाण इसके आरंभ का यह अवतरण है—

आरंभ—तकत रही री मधुबन की डगरिया
अंत—जेठवा में इक रथ हम देखे री, पवन के साथ में जात बही री
सूरदास बलि जाउँ चरन की, गावत मंगल मृगनैनी री''
—सूर सर्वस्व १८०—८१

यह बारहू मासा सभा की खोज (१९३६/४७१ सी) में प्राप्त हो चुका है और उक्त खोज रिपोर्ट में समग्रत: अवतरित है।

बारहमासा (१)

तकति रही मधुबन की डगरिया, अब नहिं सूझि परै सजनी री
लागत मास असाढ़ सखी री, जल में भरि गई ताल नदी री

बैठी सोच करै ब्रजबाला, कुबरी सवतिया से नेह लगी री
सावन सब सखि चीर सँवारै, चुनि-चुनि मोतिया माँग भरी री
अब तौ कहै हरि ऐबे ब्रज में, बीत गई छठ मास घड़ी री
भादौं मेह झमाझम बरसै, उमगि चली मथुरा की गली री
ठाढ़ि विलोकै राधा कुंजभवन में, अजहूँ न आए श्रीकृष्ण धनी री
क्वार कुसल नहिँ पावौं सखी री, अब जिया सोच वियोग भरी री
अब हरि आए नहीं मिलने की, ना कोइ आइ कहै परतनी री
कातिक निरमल उगत चंद्रमा, निरखि रहै संसार धनी री
छिटिकि रहै जैसे तारा गगन में, चंद चकोर से मौज लगी री
अगहन सब सखि चीर सँवारे, अपने बलमुआ की सेज चली री
सोवैं बलमुआ के गर धर बहियाँ, या सुख नाहिन जात कही री
पुसवा गहैं नहिँ भावै सखी री, जाके बलम परदेस गए री
नित उठि कंत के कौन मनावै, बरु मरि जैहौं खाय कनी री
मघवा उन्हैं अब भावै सखी री, जिनका बलम चित घरही रहे री
सखी बंसत के कौन मनावै, दुख दे गए, लै कंत नई री
फागुन के फरखै बाईं अंखिया, अब कछु ममता जानि परी री
चलहु सखी सब सगुन बिचारैं, अपने बलमुआ के आवन सुनी री
चैत सकल वन तजति राधिका, चंद्र सखी लै लाइ लही री
मज्जन करि सब देव मनावै, पहिरि पटोर भूषण अपनी री
बैसाखवैं सबै सखि झारि बिछाहिँ, छिरकत गंध सुगंध भरी री
आवैंगे कंत सोवैं ब्रजबाला, तब यह तन की अगिन बुती री
जेठवा में एक रथ हम देखो री, पवन के साथ में जात बही री
सूरदास बलि जाउँ चरण की, गावत मंगल मृगनैनी री

—खोज रिपोर्ट १९४६/४७१ सी

२९. बारहमासा (२)

खोज रिपोर्ट १९२६ / ४७१सी में १४ पन्ने के 'बारहमासा' नामक एक हस्तलेख का विवरण है, जो सूरतसिंह, ग्राम—सिवरा, डाकघर—महमूदाबाद, जिला—सीतापुर के पास था। पृष्ठ ६० पर इसे 'बारहमासा संग्रह' कहा गया है। लगता है इसमें कई बारहमासे थे, जो विभिन्न कवियों के थे। इसके आदि अंत के रूप में जो अंश अवतरित हैं, वे दो पूर्ण बारहमासे हैं और दोनों ही सूर कृत हैं। ये निश्चय ही महाकवि अष्टछापी सूर की रचना नहीं हैं। ये लोक-काव्य हैं और सूर नवीन की रचना हैं।

कौन उपाव करौं मोरी आली, स्याम भए कुबरी बस जाई।
चैत मास मोहि मदन सतावै, वैसाख मास बहुत दुख पावै।
जेठ मास तन तपत घाम जो, अंग चीर मोहिं एकौ न सुहाई।।
अषाढ़ मास घन घेरि आए बदरा, सावन मास बहे पुरवाई।
भादौं अगम पंथ नहिं सूझैं, जल से भरि गईं ताल तलाई।
क्वार मास स्याम नहिं आए, कातिक दियना अकास बराई।
अगहन अग्र सनेह स्याम बस, को पतियाँ हमरी ले जाई।
पूस मास मोहिं सीत सतावत, माघ बिना पिय जाड़ न जाई।
फागुन फगुवा खेलब केकरे सँग, सूर स्याम अरु बिनु जदुराई।

---

३०. रामजी का बारामहा

'रामजी का बारामहा'' पंजाबी भाषा का रंग-ढंग लिए हुए है। इसमें पंजाबी भाषा का पुट तो यत्र-तत्र ही है; शैली बिलकुल पंजाबी है। यह बारामासा है। इसमें राम के वनवास से लेकर राजगद्दी तक की कथा है। कथारंभ चैत से होता है। फाल्गुन के साथ बारामहा की समाप्ति होती है। 'बारामहा' नाम ही पंजाबी है। ग्रंथ 'दोहरा' (दोहा) और चौबड़ी (चौपाई) छंदों में है। चौपाई के पाँच-पाँच चरणों के अनंतर पंजाबी गीतों जैसा पुछिल्ला है।
पंजाबी भाषा की छौंक देखें—

१. बारामहा (= बारहमासा)
२. चैतर (= चैत्र, चैत)
३. चड़ी बहार (= चढ़ी बहार)
४. पूजा करदे (= पूजा करते)
५. संतां रिदे (= संत हृदय)
६. भरथ उड़ीके (= भरत प्रतीक्षा कर रहे हैं।
७. कदे प्रभु आवदा (= प्रभु कब आते हैं)
८. संत बुलाइया (= संत बुलाया)
९. कहि समझाइया (= कह समझाया)
१०. लिआइआ = लाया
११. चढ़ाइया = चढ़ाया
१२. नाल = साथ

सभा की खोज रिपोर्ट १९२६/४७१ आई, जे, के में इसकी तीन प्रतियों के विवरण हैं। यह २८ पन्ने की बड़ी पोथी है। ४७१ आई का लिपिकाल सं० १७८४ और ४७१ जे का सं० १८४७ वि० है।

डॉ० प्रभुदयाल मीतल के अनुसार इसकी भाषा अवधी है। रचना शैली और भाषा के कारण यह अष्टछापी सूरदास की कृति कदापि नहीं है।''—

सूर सर्वस्व पृष्ठ १८१.

निश्चय ही यह रचना अष्टछापी सूर की नहीं है, सूर नवीन की है। यह लोक-काव्य-शैली की रचना है। चैत और फागुन वाले वर्णन खोज रिपोर्ट में अवतरित हैं।

राम जी का बारामाह

दोहरा—ओं चैतर चिता चित वनें, फूल रही बनराई
दसरथ का मन मोह लिया, राम सिंहासन पाई
पौउड़ी—चैतर चंचल चड़ी बहार। राम की महिमा अपरंपार
धर दसरथ के लिया औतार। कंचन मुकुट बिराजत बाल
कुंडल छक रहे कानो नाल। कि महिमा राम की ॥१॥
प्रभु के कमलों जैसे नैन। मुख से बोले अमृत बैन
राम वियोगी साजन सैन। प्रभु की भगत करे दिन रैन
मन तन अंत रहो बेचैन। कि राम जब सुमरोई ॥२॥
तिलक दे विंदो जोत सवाई। घन विच बिजली चमकाई
पुरु अजोध्या राम सहाई। दरसन करदे नित लरकई
कहदे धन्य कुसल्या माई। जिने प्रभु जाया ॥३॥
घर दसरथ के नंदन राया। तैंतीस करोड़ी मंगल गाया
ब्रह्मा महेश्वर दर्शन पाया। भेद अजुध्या नगरी आया
पूजा करके हित चित लाया। गोविंद जान के
तन मन भई अनंद ॥४॥
संतां रिदे हुलास उपज्या, उतर गई सब चंद
जिउकर चंद अनेड़ बरहा, दरसन देज्या गोविंदा
जो कहु रामनाम तुमारा जस गावो, राखहु सदा अनंदा
दोहरा—लीनो राम प्रतिग्य, सीता चषा चराई।
सुर नर मुनि जै जै करें, धन्न सिया रघुराई ॥

पौउड़ी—कैसी रितु फागन की आई। त्रिभुवन फूल रहे [illegible]राई
संतनि हृदे हुलास बढ़ाई। भरथ उडीके रघुराई
भारग ऊपर बैठा आई। कदे प्रभु आवदा
राम विभीषन संत बुलाइया। उसनू सब विधि कहि समझाइया
पुषप विमान विभीषन लिआइया। सीता लछिमन संग चढ़ाइया
देवतेया जैकार बोलाइया। प्रभु जी लंका जीति सिधाइया
असुर सिंघारणे ज्यों कर फूली बाग वसंत
प्रभु जी सेना चढ़ी विअंत। हीरे मोती लाल जड़ंत
अचरज देखै कमला कंत। नाल विभीषन होइयाँ संत
सु प्रसन्न होइके धन मुहूरत धन बहार
प्रभु जी दधि थी उतरै पार। पवर होइयां भरथ दुआर
सुनि करि कीने दान अपार। पर की वास सभ भई तयार
आणे मिलने को ॥
सुणि सुणि दरसन को सभ आवहिँ। कंचन मोति मनो लिआवहिँ
प्रभु तो देख महा सुख पावहिँ। उथे जाचक नजर न आवहिँ
जो लेवहिँ दान जूं ॥
कौसल्या पुर बिच मंगल गावहिँ। ब्रह्मादिक सगले मन मांहिहि
अधियारे ते चान न होई। दुसमन दून रहे ना कोई
चौदा बरस में मेला भइया। राम अजुध्या बासा लइया
माता द्रिग भर अंक रोइया। प्रेम मन में बधी ॥
मेला राम भरथ दा भइया। संसा रोग सगल मिटि गइया
राम केकई दी पैरो पइया। देख सुमित्रा मन बिगसइया
प्रभु बिन कउन करसो दइया। उधारे पतित को ॥
राम कुसल्या मंदिर अइया। माता आगे मथा निवाइया
काहि निछावन मुनि विगसाइया। लिया सिंहासन राम बैठाइया
माथे तिलक बसिष्ठ लगाइया। राजे राम दे ॥
गई तपीश्वर अपने घर को, प्रभु की अज्ञा पाई
हीरे मोती लाल जवाहर, दे कुसल्या माई
पुर बिच जाचक कर नजर न आवै। दान ले जो पाई
दोहरा—जाचक भए सुमेर सी, रंक न रह्यौ कोई
सूरदास की बीनती, प्रभु, दरस तिहारो होई
॥ इति श्रीराम जी की बारामहा संपूर्णम् ॥
संवत १७८४ वि०